नाट्यम् 105-106

भवभूति विशेषांक

नाट्यम्

105–106

भवभूति विशेषांक

ISSN : 2229-5550, UGC Care Listed Journal

संरक्षक

नीलिमा गुप्ता

कुलपति

संस्थापक संपादक

राधावल्लभ त्रिपाठी

संपादक

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

प्रबन्ध संपादक

सञ्जय कुमार

संपादक मण्डल

नौनिहाल गौतम, रामहेत गौतम

शशिकुमार सिंह, किरण आर्या

प्रकाशक

नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग

डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) सागर, (म.प्र.)

नाट्यम् **105-106, अप्रैल 2023-सितम्बर 2023**
रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की पूर्वसमीक्षित त्रैमासिक शोधपत्रिका

ISSN : 2229-5550
UGC Care Listed Journal, S.N.17
नाट्य परिषद् **(पंजीकरण क्र. 100066)**
संस्कृत-विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.)
दूरभाष-फैक्स (कार्यालय) 07582-264366 पिन-470 003

Natyam : A Quarterly Journal of theatre and aesthetics
published by Natya Parisad. Deptt. of Sanskrit,
Doctor Harisingh Gour University, Sagar,
Madhya Pradesh-Pin-470 003. India.
Phone-Fax (off.) : 07582-297149

सदस्यता शुल्क :
विशेषांक - 200/- रु.
प्रत्येक अंक - 100/- रु., वार्षिक - 400/- रु.
वार्षिक सदस्यता व्यक्तिगत - 2000/- रु.
पांच वर्षीय सदस्यता (संस्थागत) - 5000/- रु.
इस अंक का मूल्य - 200/- रु.

यह शुल्क मनीआर्डर, चेक या नगद दिया जा सकता है
जो नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के नाम देय होगा।

पत्रव्यवहार :
प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.) 470003
e-mail : sanskritsagar1946@gmail.com
natyamsagar@gmail.com
07582297149 Mob : +919425656284

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रण : अजय जैन, **अमन प्रकाशन** नमक मंडी,
कटरा, सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

नाट्यम् में प्रकाशित नाटकों के अनुवादों/रूपान्तरों या किसी भी अन्य सामग्री की किसी भी रूप में प्रस्तुति के लिए *नाट्य परिषद्* से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति अथवा विचारों से *नाट्य परिषद्*, संपादक या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय

राष्ट्रीय स्तर की महत्त्वपूर्ण शोध-पत्रिका 'नाट्यम्' (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित) चारदशक की अपनी सतत् यात्रा पूर्ण कर चुकी है। पत्रिका से शताधिक महत्त्वपूर्ण अंकों का प्रकाशन इस यात्रा की ऐतिहासिक उपलब्धि है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा 1982 में रंगमंच एवं सौंदर्यशास्त्र को दृष्टि में रखकर स्थापित नाट्यम् शोध-पत्रिका का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। विशेषांकों की शृंखला में पिछले वर्षों में प्रकाशित विशाखदत्त, रामजी उपाध्याय, शूद्रक, भट्टनारायण विशेषांक विद्वानों के मध्य प्रभूत प्रशंसा को प्राप्त हुए हैं। नाट्यम् पत्रिका के विशेषांकों की समृद्ध परंपरा पर भवभूति विशेषांक संस्कृत विभाग की महान् उपलब्धियों में से एक है ।

कवि और नाटककार भवभूति संस्कृत जगत् की महान् विभूति हैं। रामकथा के पारखी होने के साथ ही वे ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों के भी ज्ञाता हैं। अपने देशकाल की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों पर उनकी दृष्टि सदा सकारात्मक रही है। अपनी अनमोल नाट्यकृतियों महावीरचरितम् उत्तररामचरितम् और मालतीमाधवम् द्वारा भवभूति ने अपने नाट्यकौशल, सौन्दर्य और चिन्तन का जो वैभव रचा है, वह अद्वितीय है । वीररस, करुणरस और शृंगाररस का सुंदर परिपाक भवभूति की अलग-अलग कृतियों में प्राप्त होता है। रामकथा के विभिन्न संदर्भों और चरित्रों की नवीन उद्भावनाएं भवभूति की मौलिक दृष्टि और उनकी नाट्य प्रतिभा की विलक्षणता का प्रमाण है। एक गंभीर अध्येता के रूप में भवभूति का नाट्य- अवदान शताब्दियों पार अद्यावधि भी संस्कृत साहित्य में आकाशदीपवत् बना हुआ है। वे आधुनिक नाटककारों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। राम के उत्तरवर्ती चरित्र और उनकी जीवनकथा की पुनर्रचना भवभूति के रचनात्मक कौशल का चमत्कार है। रामायणकालीन समाज और संस्कृति पर कवि का नवीन चिंतन अत्यन्त स्पृहणीय है। उत्तररामचरितम् में करूणा की प्रतिष्ठा उनकी महनीय देन है।

संस्कृत विद्वानों और शोधार्थियों ने नाट्यम् के विशेषांकों का हृदय से स्वागत किया है और मुक्त कण्ठ से सराहना की है। यह हमारे लिए उत्साहवर्धक है। नाट्यम् के इस अंक में भवभूति के समग्र साहित्य को केंद्र में रखकर उनके जीवन और साहित्य के विभिन्न पक्षों - वैदिक आत्मदृष्टि, वैदिक संस्कृति का प्रभाव, लोकपरम्परा का प्रभाव, धर्मशास्त्रीय चिंतन, आश्रम व्यवस्था, दार्शनिक चिंतन, पात्र विषयक वर्णन, नाट्यशास्त्रीय समीक्षा, व्यकरण केन्द्रित मूल्यांकन, काव्यशास्त्रीय विवेचन, मनोवैज्ञानिकता, मानवमूल्य, शिक्षा, शिष्टाचार, सूक्ति सौन्दर्य, शकुन-अपशकुन विचार आदि का मूल्यांकन किया गया है। इन विवेच्य बिन्दुओं पर केंद्रित शोध सामग्री स्तरीय और प्रामाणिक है।

इस विशेषांक में भवभूति के साहित्य का देशभर के अध्यापकों, शोधछात्रों द्वारा अपने आलेखों में किया गया विभिन्न दृष्टियों से विवेचन अत्यंत सार्थक और शोधोपयोगी है।

वस्तुतः नाट्यम् का यह अंक भवभूति के व्यक्तित्व, कृतित्व का समग्र मूल्यांकन है। एतदर्थ सभी लेखकों को रचनात्मक सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद। प्रबंध संपादक डॉ. संजय कुमार के अथक प्रयास से सामग्री संकलन तथा विभागीय शिक्षकों को संपादन सहयोग के लिए आभार।

आशा है कि यह अंक भी पूर्व प्रकाशित अंकों की तरह विद्वानों द्वारा प्रशंसित होगा। पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

अनुक्रम

1. **भवभूति का जीवन सन्दर्भ और रामकथा विषयक नवीन उद्भावनाएँ** 07
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
2. **वाणी आत्मा की एक कला : भवभूति की वैदिकी आत्मदृष्टि** 12
अच्युतानन्द दाश
3. **महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् पर वैदिक संस्कृति का प्रभाव** 19
रेनू कोछड़ शर्मा
4. **भवभूति पर लोकनाट्यपरम्परा का प्रभाव** 25
राधावल्लभ त्रिपाठी
5. **संस्कृत वाङ्मय में महाकवि भवभूति का अवदान** 33
चन्द्रकिशोर शास्त्री
6. **भवभूति के रूपकों में धर्मशास्त्रीय चिन्तन** 38
अमित सिंह
7. **भवभूति की कृतियों में वर्णित धर्मशास्त्रीय समाज** 45
मुकेश कुमार
8. **भवभूति के रूपकों में आश्रम व्यवस्था** 50
अंकिता यादव
9. **महाकवि भवभूति का राजधर्म** 53
सञ्जय कुमार
10. **भवभूति के रूपकों में दार्शनिक चिन्तन** 61
अंकित सिंह यादव
11. **भवभूति के रूपकों में दार्शनिक तत्त्व-विमर्श** 68
चन्दनलाल गुप्ता
12. **उत्तररामचरित- एक अध्ययन** 74
रामजी उपाध्याय
13. **आचार्य भवभूति के राम** 91
सुकदेव वाजपेयी
14. **महाकवि भवभूति के रूपकों में स्त्री : एक विमर्श** 99
रश्मि यादव
15. **भवभूति के रूपकों में नायिका विवेचन** 105
कृष्णा जैन
16. **भवभूति के रूपकद्वय में प्रतिबिम्बित सीताचरित** 109
आशीष कुमार
17. **आधुनिक स्त्री विमर्श के आलोक में भवभूति की सीता** 117
अरविन्द कुमार
18. **महावीरचरितम् का नाट्यशिल्प विमर्श** 121
शशिकुमार सिंह

19. उत्तररामचरितम् का नाट्य वैशिष्ट्य 133
अमरेश यादव
20. भवभूतिकृत मालतीमाधवम् की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा 137
नन्दिता आर्या, योगेश शर्मा
21. उत्तररामचरितम् आलोक में महाकवि भवभूति का शब्द शास्त्रीय पाण्डित्य 147
अनुश्रुति दुबे
22. भवभूति का वागर्थ विमर्श 151
राघवेन्द्र शर्मा
23. पदवाक्यप्रमाणज्ञ भवभूति 156
किरण आर्या
24. भवभूति के रूपकों में अद्भुत रस समीक्षण 162
आशा सिंह रावत
25. महाकवि भवभूति की अलंकार-योजना 173
पवन कुमार पाण्डेय
26. भवभूति के नाटकों में रीति तत्त्व 179
आशुतोष द्विवेदी
27. भवभूति के रूपकों में ध्वनि तत्व 186
शैलेन्द्र कुमार साहू
28. उत्तररामचरितम् में वक्रोक्ति 193
सन्दीप कुमार यादव
29. भवभूति के रूपकों में औचित्यक संदर्भों की प्रासंगिकता 198
नीरज कुमार
30. उत्तररामचरित में मनौवैज्ञानिकता 204
आनन्द कुमार
31. महाकवि भवभूति का राष्ट्र प्रेम 210
बाबूलाल मीना
32. भवभूति के रूपकों में मानवीय मूल्यों की अवधारणा 218
दिनेश शर्मा भारद्वाज
33. शिष्टाचार पद्धति के प्रणेता 224
रामहेत गौतम
34. प्राचीन भारतीय शिक्षा : भवभूति के विशेष सन्दर्भ में 230
पूनम यादव
35. भवभूति के रूपकों का सूक्तिसौन्दर्य 235
नौनिहाल गौतम
36. भवभूति के रूपकों में शकुन-अपशकुन विचार 238
जहाँआरा
लेखक परिचय 241

1

भवभूति का जीवन सन्दर्भ और रामकथा विषयक नवीन उद्भावनाएँ

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

संस्कृत नाट्यसाहित्य के गौरवमय इतिहास में भवभूति की उपस्थिति अत्यंत उल्लेखनीय है। कालिदास, भास आदि की नाट्यपरंपरा में भवभूति का व्यक्तित्व विशेष महत्त्व रखता है। वे संस्कृत की रामकथा - परंपरा के सिरमौर रचनाकार हैं। उनका विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्व और सृजनशीलता प्रेरणादायक है। अपने जीवन की जटिल परिस्थितियों के बीच भवभूति ने करुणरस संवलित भावनाओं को रामकथा के माध्यम से लोकार्पित किया। भवभूति का संपूर्ण चिंतन आस्था - अभिषिक्त रेखाओं से आवृत्त था। भवभूति के जीवनवृत्त के विषय में विद्वानों में प्रायः मत वैभिन्नय है । शोधकर्ताओं ने जिन महत्त्वपूर्ण तथ्यों और साक्ष्यों के आलोक में भवभूति के जन्म, उनके वंशज, परिवार, शिक्षा - दीक्षा आदि का जो निष्कर्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया है, वह सर्वमान्य है। फिर भी, मतभेद की गुंजाइश बनी हुई है। भवभूति दक्षिण भारत के रहने वाले हैं। उन्हें बाणभट्ट का परवर्ती माना गया है। बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध मानने पर भवभूति को 650 ई. के बाद का मानना विद्वानों ने तय किया है। इसका आधार काव्यालंकार सूत्रवृत्ति (वामन), काव्यमीमांसा व बालरामायण (राजशेखर), औचित्यविचारचर्चा, और सुवृत्ततिलक आदि (क्षेमेन्द्र) आदि ग्रंथ हैं।

भवभूति के पूर्वज पद्मपुर नामक नगर में रहते थे। यह पद्मपुर नगर विदर्भ अर्थात् बरार प्रदेश में है। भवभूति ने पद्मपुर को नगर कहा है, ग्राम नहीं। यदि हम भवभूति के पूर्वजों पर दृष्टिपात करते हैं तो भवभूति काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। वे चरणगुरु थे। यानी वेद की शाखाओं को पढ़ने वाले वेदज्ञ, उन्हें पंक्तिपावन ब्राम्हण कहा गया है। भवभूति के पूर्वज उच्चकुलोद्भव ब्राह्मण थे, जो यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पारंगत थे। ये उच्चकोटि के विद्वान थे। वे सोम यज्ञ करते थे और सोमरस का पान भी करते थे। वे ब्रह्मवादी थे अर्थात् वेदज्ञ, वेद प्रवचनकर्ता और ब्रह्मवेत्ता थे। वे श्रोत्रिय अर्थात् वेदाध्यायी ब्राह्मण थे। उनका जीवन तपोमय था। ये वंश-परम्परा के लिए वैवाहिक - जीवन स्वीकार किया करते थे। भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। पितामह भट्टगोपाल थे। पिता उच्चकोटि के विद्वान थे। भवभूति के लिए 'श्रीकण्ठपदलांछन' कहा गया है। कतिपय विद्वानों ने श्रीकण्ठ को भवभूति की उपाधि माना है। भवभूति नाम को भी अनेक विद्वान उपाधि मानते हैं। नामकरण को लेकर विद्वानों के मतभेद का आधार जनश्रुतियां है। जो भी हो, संस्कृत जगत् में भवभूति नाम ही प्रचलित है। जिसका प्रमाण सुभाषित ग्रंथ और टीकाएं हैं। भवभूति के साथ उम्बेक, मण्डन, विश्वरूप और सुरेश्वर आदि नामों की चर्चा होती रही है। अनेक उपलब्ध तथ्य और सत्य भवभूति को ही 'उत्तररामचरितम्' आदि ग्रंथों का रचयिता मानते हैं।

भवभूति पदवाक्यप्रमाणज्ञ कहे जाते हैं। अभिनय और नाट्यशास्त्र में उनकी गहरी अभिरुचि थी। इनके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। भवभूति शिवभक्त थे। यद्यपि उन्होंने 'मालतीमाधवम्' में शिव स्तुति के साथ गणेश की स्तुति, 'महावीरचरितम्' में ब्रह्म स्तुति तथा 'उत्तररामचरितम्' में वाग्ब्रह्म अर्थात् शब्दब्रह्म की स्तुति की है। भवभूति अध्ययनशील व्यक्ति थे। ज्ञानार्जन के प्रति उनमें पैतृक संस्कार प्रबल थे। वे रामकथा के मर्मज्ञ और मौलिक चिंतक थे। कवि और नाटककार के रूप में उनकी प्रसिद्धि है । वे रस सिद्धांत के ज्ञाता हैं। अपनी कृतियों में उन्होंने शृंगाररस (मालतीमाधवम्), वीररस (महावीरचरितम्) और करुणरस (उत्तररामचरितम्) की प्रतिष्ठा की है। मानव- मनोविज्ञान पर उनकी अच्छी पकड़ थी जिसका प्रमाण उनकी कृतियों में पात्रों की मनोरचना में दृष्टिगत होता है ।

भवभूति को अपने समय और समाज तथा संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान था। उन्हें रामायणकालीन समाज और संस्कृति की गहरी समझ थी। उनकी कृतियों के अध्ययन से भी पता चलता है कि उनका शास्त्रीय और कला विषयक ज्ञान अगाध था। उन्होंने वेद, उपनिषद, दर्शन, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति, मीमांसादर्शन धनुर्वेद, साहित्य, कामशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, नृत्यकला, चित्रकला, मनोविज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि का गंभीर अध्ययन किया था। इस तथ्य का प्रमाण 'मालतीमाधवम्' के अतिरिक्त अन्य दोनों नाटकों में चित्रित कथाप्रसंगों और सूक्तियों में मिलता है। उन्होंने स्वयं को पदवाक्यप्रमाणज्ञ : कहा ही है।

भवभूति का संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। नाटकों में इन दोनों भाषाओं का बहुत ही परिष्कृत प्रयोग किया गया है। भवभूति ने अपने पांडित्य और वैदग्ध्य का प्रभाव जमाने के लिए नाट्य-कृतियों में क्लिष्ट और दुरूह शब्दावलियों का प्रयोग किया है। भवभूति ने तीन रूपकों की रचना की है - महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम्। ऐसा माना जाता है कि भवभूति ने सुभाषितों की भी रचना की है जिन्हें शार्ङ्गधरपद्धति, श्रीधरदासकृत 'सदुक्तिकर्णामृत', जल्हणकृत 'सूक्तिमुक्तावली', गदाधरकृत 'रसिकजीवन', 'सुभाषितावली', 'कवीन्द्र वचनसमुच्चय' आदि में संकलित किया गया है। इन सुभाषितों में अनेक श्लोक उनके नाटकों में नहीं मिलते हैं।

रामकथा विषयक नवीन उद्भावनाएँ

यहाँ भवभूति के रामकथाश्रित नाटकद्वय 'महावीरचरितम्' और 'उत्तररामचरितम्' में वर्णित रामकथा की नवीन व मौलिक कल्पनाओं और उद्भावनाओं की खोज हमारा ध्येय है। 'उत्तर रामचरितम्' में वर्णित कथा का मूल आधार 'वाल्मीकि रामायण' का उत्तरकांड है जिसमें राम के राज्याभिषेक तथा सीता के परित्याग के बाद की घटनाओं का वर्णन है। भवभूति ने अपने नाटकीय कौशल और प्रतिभा का परिचय देते हुए मूल कथा में अनेक परिवर्तन किए हैं। उनकी मौलिक उद्भावनाएँ हमें चमत्कृत करती हैं। वाल्मीकि रामायण की दुखान्त कथा को भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' में सुखान्त बना दिया है। यह काव्य - रचना की भारतीय पद्धति है। 'पद्म पुराण' के पातालखंड की कथा से 'उत्तररामचरितम्' की कथा का बहुत अधिक साम्य है। किंतु, भवभूति की स्वतंत्र मौलिक नाट्य प्रतिभा और निजी कल्पना भी अद्भुत है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण की कथा में निम्नलिखित परिवर्तन किए हैं - शत्रुघ्न लवणासुर के वध के लिए जाते समय वाल्मीकि आश्रम में नहीं रुकते हैं (अंक 1), लव कुश के दूध छोड़ने के बाद सीता गंगा की संरक्षता में पाताल में रहती हैं और दोनों बालक 12 वर्ष तक वाल्मीकि के आश्रम में पलते हैं (अंक 2), राम और वासंती का मिलन (अंक 3), अवश्य सीता का तमसा से मिलन (अंक 3), अदृश्य सीता द्वारा राम की मूर्छा को दूर करना (अंक 3), वशिष्ठ, जनक,

कौशल्या आदि का वाल्मीकि आश्रम में रहना (अंक 4), लव और चंद्रकेतु का युद्ध (अंक 5), नाटक के अंत में राम सीता का मिलन (अंक 7)।

भवभूति ने पद्मपुराण में वर्णित कथा में निम्नलिखित परिवर्तन किए हैं - 'पद्मपुराण' में अश्वमेधीय अश्व का रक्षक भरत का पुत्र पुष्कल है जबकि 'उत्तररामचरितम्' में लक्ष्मण पुत्र चंद्रकेतु है। पद्मपुराण में वाल्मीकि ने कुश-लव को अस्त्र विद्या सिखाई है, जबकि उत्तररामचरितम् में जृम्भकादि दिव्यास्त्र उन्हें जन्मसिद्ध है। पद्म पुराण में लव पहले विजयी होते हैं, परंतु बाद में उन्हें बंदी बना लिया जाता है। कुश आकर राम की सेना पर विजय प्राप्त करते हैं और लव को मुक्त कराते हैं। सीता बंदी बने सेनापतियों को तथा अश्वमेधयज्ञ को मुक्त कराती हैं। अश्वमेध यज्ञ में राम ने वाल्मीकि से कुश-लव के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह दोनों बालक राम के पुत्र हैं। अश्वमेध यज्ञ में सीता को बुलवाया जाता है। वाल्मीकि वहाँ पर राम सीता को ग्रहण करते हैं। पद्म पुराण में राम युद्ध भूमि में नहीं आते हैं, उनका अयोध्या में कुश-लव से परिचय होता है। पद्म पुराण में पृथ्वी भी प्रकट नहीं होती है, वाल्मीकि के कथन पर ही राम सीता को ग्रहण करते हैं।

भवभूति ने रामायण की कथा में आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्तन किए हैं और विभिन्न प्रसंगों को नाटकोपयोगी बनाने के लिए आवश्यक समझा था। प्रत्येक घटना के मूल में करुणा भाव को स्थान दिया गया है। घटनाओं में यथास्थान परिवर्तन के साथ घटनाओं का क्रम भी परिवर्तित किया गया है। नवीन दृश्यों की अवतारणा की गई है। नवीन पात्रों की कल्पना की गई है और नाटक को सुखांत बनाया गया है। रामकथा में भवभूति को भास और महाकवि कालिदास की कृतियों में कुछ प्रसंग रोचक लगे और उन्होंने उत्तररामचरितम् में उनका समावेश किया है। उदाहरण के लिए उत्तररामचरितम् अंक तीन में मूर्छित राम सीता के हस्तस्पर्श से उसे पहचान लेते हैं। सीता जीवित हो गई हैं और वह पुनः राम को प्राप्त हो गई हैं। इस प्रसंग के लिए भवभूति भास के ऋणी हैं। भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' में यथावत् वर्णन किया है। चित्रवीथी के दृश्यांकन, सीता परित्याग और वाल्मीकि का मिलन आदि प्रसंगों के वर्णन में कालिदास का प्रभाव है। चित्रवीथी का दृश्य भवभूति की मौलिक उद्भावना है। इसमें राम और सीता का अगाध प्रेम प्रदर्शित हुआ है। सीता के दोनों बच्चों का जन्म गंगा प्रवाह में होता है। सीता गंगा की संरक्षकता में पाताल में रहती हैं। परिचित स्थानों को देखकर सीता के लिए राम का विलाप नयी कल्पना है। तृतीय अंक में छाया दृश्य भी मौलिक कल्पना है। चतुर्थ अंक में वशिष्ठ, अरुंधती, कौसल्या तथा जनक सभी का वाल्मीकि आश्रम में एकत्र होना, कौसल्या और जनक का संवाद आदि प्रसंग नवीन कल्पनाएं हैं। पंचम अंक में चंद्रकेतु और लव की बातचीत, चंद्रकेतु की सेना को जृम्भक अस्त्र से मूर्छित करना, लव द्वारा राम के पौरुष की निंदा, छठें अंक में लव और चंद्रकेतु के मध्य दिव्यास्त्रों से युद्ध, लव -कुश के प्रति राम का आकर्षित होना, किंतु उन दोनों की राम के प्रति उदासीनता, वशिष्ठ, वाल्मीकि और जनक का युद्ध स्थल पर पहुँचना जैसी घटनाएँ मौलिक हैं। सप्तम अंक में गर्भनाटक का दृश्य मौलिक कल्पना है। इस तरह भवभूति ने उत्तररामचरितम् में अपनी कल्पनाशक्ति से नाटक के अनुरूप रामकथा में अनेक नवीन संदर्भ सृजित किए हैं।

'महावीरचरितम्' रामकथा पर आधारित चर्चित नाट्यकृति है। इसकृति का आधार वाल्मीकि कृत रामायण की प्रसिद्ध कथा है, किंतु भवभूति ने रामायण की कथा से भिन्न स्वयं की अपनी कल्पना के द्वारा महावीरचरित को रचा है। उन्होंने रामायण की प्रसिद्ध कथा में अनेक परिवर्तन और परिवर्धन कर इस नाटक

की सृष्टि की है। यह परिवर्तन नाट्य विधा की दृष्टि से किया गया है। 'महावीरचरितम्' में राम- वनगमन प्रसंग को मिथिला में ही वर्णित किया गया है, जबकि रामायण में कुछ काल के अंतर पर। अयोध्या में रावण ने राम को मारने के लिए भेजा था। यह बात रामायण में नहीं लिखी गई है। यह पूरी तरह से भवभूति की अपनी नई कल्पना है। इसी तरह माल्यवान् की पूरी मंत्रणा भवभूति की अभिनव सृष्टि है और जिसे विद्वानों ने इस नाटक का प्राण तत्त्व माना है। परशुराम को विशेष महत्त्व देते हुए इस काव्य में उपस्थित किया गया है। विद्वानों का कहना है कि परशुराम का प्रसंग इतने विस्तार से करने के मूल में नाटककार भवभूति की चमत्कारप्रियता रही है। रामायण के कथाक्रम को महावीरचरितम् में अनुसरण नहीं किया गया है। जन्म आदि का प्रसंग उल्लिखित नहीं है । प्रथम अंक में महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ की रखवाली के लिए राम और लक्ष्मण की उपस्थित, निमंत्रण में कुशध्वज का सीता तथा उर्मिला के साथ वहाँ पधारना, राम व लक्ष्मण का परिचय प्राप्त कर प्रसन्न होना आदि प्रसंग कवि की मौलिक उद्‌भावनाएं हैं। इसी बीच राम का अहिल्या-उद्धार प्रसंग वर्णित है। कुशध्वज को राम की महिमा देखकर पछतावा होता है कि यदि धनुर्भंग की प्रतिज्ञा न होती तो सीता का विवाह राम के साथ अवश्य कर दिया होता। इसी समय रावण सीता को मंगनी के लिए एक दूत भेजता है और उसके प्रस्ताव पर टालमटोल होने लगता है। इधर राम ने ताड़का का वध किया। राक्षस को इससे बड़ा खेद हुआ और उसने फिर प्रस्ताव किया जिसे राजा तथा विश्वामित्र ने फिर टाल दिया। विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को दिव्यास्त्र दिए। राम की उत्कंठा को देखकर विश्वामित्र ने शिवधनुष मंगवाया। राम ने उसे भंग कर दिया। इस प्रकार चारों भाइयों का विवाह जनक तथा कुशध्वज की पुत्रियों से हुआ। यह पूरा कथा प्रसंग रामायण से बिल्कुल भिन्न कथाभूमि पर वर्णित है जिस पर विद्वानों की सहमति- असहमति की पूरी गुंजाइश है।

इस नाटक के द्वितीय अंक की रचना भी भवभूति ने अपने चिंतन और कल्पना के आधार पर की है। संक्षिप्त कथा इस बात की पुष्टि करती है कि यह कथा रामायण से बिल्कुल भिन्न भावभूमि पर रची गई है। मिथिला से लौटकर राक्षस ने सारा वृत्तांत लंकाधिपति के मंत्री को सुनाया। मंत्री ने सूर्पनखा की राय ली। उसी समय परशुराम का पत्र मिला कि दंडकवन में निशाचर वहां के ऋषियों को सता रहे हैं, उन्हें रोका जाए। निर्णय हुआ कि परशुराम को उकसाया जाए कि वह शिव धनुषभंजक राम का दमन करें। इधर राम कन्यान्तपुर में थे। दशरथ आदि मिथिलाधीश के यहाँ आतिथ्य सत्कार प्राप्त करते हैं। परशुराम का आगमन होता है और वे राम को देखने की इच्छा प्रकट करते हैं और राम को देखकर परशुराम के मन में प्रीति जगती है, परंतु अपनी प्रतिज्ञा से वे लाचार थे। क्षत्रिय कुलनाशक की प्रतिज्ञा को दोहराते हुए परशुराम ने राम को भी बद्धय माना है। जनक और शतानंद को बहुत तकलीफ होती है। सभी ने अपने-अपने ढंग से परशुराम को समझाया, किंतु परशुराम का क्रोध कम नहीं हुआ जनक को अस्त्र ग्रहण करने की नौबत आती है और शतानंद श्राप देने पर उतारू हो गए। इसके बावजूद भी परशुराम अपने प्रतिज्ञा पर अटल रहे। यह प्रसंग पूर्ववर्ती काव्य कृति में कहीं नहीं है।

तृतीय अंक भी परशुराम के क्रोध की कथा से जुड़ा हुआ है। परशुराम के कोप को शांत करने के लिए वशिष्ठ और विश्वामित्र की मदद ली जाती है। उन दोनों ने परशुराम को बहुत समझाने का प्रयास किया। उनकी विद्या, तपस्या, कुल - परंपरा की प्रशंसा की। विश्वामित्र और वशिष्ठ की बातों को स्वीकार करते हुए उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया। परशुराम ने कहा कि मैं इस क्षत्रिय कुमार का वध किए बिना नहीं रह सकता हूं; क्योंकि उसने हमारे गुरु का अपमान किया है। इसके बाद में शांत हो जाऊँगा । परशुराम का क्रोध उग्र होते देख दशरथ को भी क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने भी अस्त्र धारण कर लिया। इसी समय राम आते हैं और

परशुराम के दमन की अपनी प्रतिज्ञा करते हैं। चतुर्थ अंक में पराजित परशुराम को राम के विषय में जानकारी मिलती है और वह तप करने के लिए चले जाते हैं।

चतुर्थ अंक में परशुराम की पराजय होने पर रावण के मंत्री माल्यवान् को बड़ी चिंता हुई और वह राम को दबाने का उपाय सोचता है। राम के अभ्युदय से उन्हें भय होता है। परामर्श के अनुसार शूर्पणखा को मंथरा का रूप धारण करके मिथिला भेजा गया है। राम का अपनी स्वर्ण पादुका देना। यह सारे प्रसंग इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भवभूति ने अपनी ही दृष्टि से महावीरचरितम् में उपर्युक्त नवीन कथा प्रसंगों की रचना की है।

सीता के चरित्र में भी नूतन कल्पनाशीलता का परिचय मिलता है। राम के प्रथम दर्शन में ही सीता के मुँह से निकलता है - 'सौम्यदर्शनोऽयम्' सीता की कोमल भावनाएँ स्नेह में रूपांतरित हो जाती हैं । विश्वामित्र का राम को तड़का वध की आज्ञा देने पर सीता का कथन है - हा धिक्, एष एवान्न नियुक्तः'' । राम के प्रति आसन्न संकट को देखकर सीता का घबरा जाना, परशुराम की क्रूर प्रकृति देखकर सीता का राम को उनसे मिलने नहीं देना, सीता राम को यथाशक्ति रोकती हैं। सखियों के समक्ष सारा संकोच व मर्यादा - बंधन त्यागकर राम को पकड़ लेना आदि प्रसंग मौलिक उद्‌भावनाएँ हैं। इसी तरह रावण के चरित्र में भी भवभूति नई कल्पना करते हैं। रावण एक साधारण प्रतिनायक के रूप में चित्रित हुआ है। वह वीर अवश्य है, किंतु उसे सदा परावलंबी और आलसी रूप में वर्णित किया गया है। उसके व्यक्तित्व का वैसा प्रभाव इस नाटक में नहीं दिखाई पड़ता है जैसा रामायण में। राम लंका घेर लेते हैं, यह खबर पाकर भी रावण मंदोदरी के साथ मनोविनोद में लिप्त रहता है। इस खतरे को भांपकर मंदोदरी रावण को समझाती है तो वाल्मीकि लिखते हैं कि वह ठीक पियक्कड़ों की सी बातें करता है। अंगद के साथ बात करने में भी रावण का व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं दिखाई देता है। लोक में रावण का जो चरित्र विकसित हुआ है उसकी कोई झलक रावण के व्यक्तित्व में हमें नहीं दिखाई पड़ती है। वह एक सामान्य चरित्र की तरह वर्णित है। महावीरचरितम् में रावण की माता तथा मंत्री मालवाने की कथा विशिष्ट है। राम - रावण युद्ध के संभावित खतरे को भांपकर माल्यवान चिंतित हैं और सावधानी बरतने की अपेक्षा रावण से करते हैं। वे अपने सहकर्मियों को समझाते हैं। बाली और परशुराम उसके मित्र पक्ष हैं, यह बात भी बिल्कुल नयी है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकथा को हर युग में कवियों ने अपनी कल्पना और सोच के अनुसार रचा है। युगीन सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों के आलोक में रामकथा के पात्रों और कथा संदर्भों को गढ़ा गया है। अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि और सामाजिक चेतना के अनुरूप हर रचनाकार ने राम के चरित्र को निरूपित कर अपनी आस्था प्रदर्शित की है। भवभूति के राम भी अपनी पूर्ववर्ती काव्य - परंपरा से भिन्न और युगानुरुप हैं ।

2

वाणी आत्मा की एक कला : भवभूति की वैदिकी आत्मदृष्टि

अच्युतानन्द दाश

भवभूति वाणी के उपासक थे। वह वाणी पुराणप्रसिद्धा वीणावादिनी वाग्देवी सरस्वती नहीं थी, किन्तु वह उसका पूर्वरूप थी, वह थी वैदिक ऋतम्भरा, प्रज्ञा से अभिन्ना, आत्मा की एक कला, वह थी विश्वम्भरा, विश्वरूपा और अमृता वाणी। वही वाक् थी भवभूति की उपास्या। उत्तररामचरित के नान्दीश्लोक में ही वे कहते है -

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यः नमोवाकं प्रशास्महे।
वन्देमहि च तां वाचममृताम् आत्मनः कलाम्।।

यहाँ पर प्रथमतः पूर्वकविपरम्परा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास आदि को प्रणामांजलि निवेदन करते हुए कवि आत्मा की उस कला की वन्दना करते हैं जो कि अमृता है। उसी वाणी का उपासक थे भवभूति। यह वचन सामान्य सा लगता है। किन्तु इस वाक्य के अन्दर अर्थात् इस नान्दी श्लोक के उत्तरार्ध में मानों भवभूति ने समग्र वेदविज्ञान का संपिण्डित अर्थ रख दिया हो। सामान्यतः व्याख्याकारों ने इस मंगलाचरण के उत्तरार्ध में भगवती वाग्देवी अथवा वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती का प्रणाम निवेदन मात्र कवि का अभिप्राय है - ऐसी व्याख्या करके आगे बढ जाते हैं। किन्तु यह वाक्य मुझे चौंकाने वाला लगा। एक शब्दब्रह्मवेत्ता कवि का इस वचन का तात्पर्य इतना सरल या साधारण नहीं हो सकता। भवभूति शब्दब्रह्मवेत्ता हैं। स्वयं इसी उत्तररामचरित नाटक के उपसंहार (अर्थात् भरतवाक्य) में कहतें है - **''शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम्**[1]**''**। स्वयं अपने आप को शब्दब्रह्मतत्त्व का वेत्ता और परिणतप्रज्ञ विद्वान् घोषित करते हैं। तो यहाँ स्वाभाविक रूप से प्रश्न उपस्थित होता है कि - भवभूति की दृष्टि से शब्दब्रह्म का स्वरूप क्या हैं? शब्दब्रह्म के बारे में विचार करते समय भर्तृहरि प्रणीत वाक्यपदीय स्मरण में आना स्वाभाविक है। प्रश्न यह है कि क्या भर्तृहरि प्रणीत वाक्यपदीय में विवेचित शब्दब्रह्म का तत्त्व भवभूति को मान्य है अथवा भवभूति शब्दब्रह्मतत्त्व का कोई स्वतन्त्र स्वरूप का उपासक है? शब्दब्रह्म विचार को लेकर दो प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित है -

एक तो शब्दब्रह्म परब्रह्म स्वरूप है, उसका समानार्थक है, और वह उससे अभिन्न अथवा तदात्मक है। यह मत भर्तृहरि को मान्य है और दूसरा शब्दब्रह्म अवर है और परब्रह्म पर है, श्रेष्ठ है, और निरतिशय है। परब्रह्म की उपलब्धि के लिए शब्दब्रह्म माध्यम है, मार्ग है, अथवा साधनमात्र है। इस प्रकार विचार कतिपय उपनिषद् से लेकर श्रीमद्भगवद् गीता तक देखने को मिलता है। मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है -

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।।[2]

ब्रह्मविन्दूपनिषद् में भी यही मन्त्र इस तरह कहा गया है -

द्वे विद्ये वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।।[3]

यह मन्त्र स्पष्ट रूप से पर और अपर ब्रह्म का स्वरूप निर्देश करते हुए परं ब्रह्म का उपलब्धि साधन अपरब्रह्म अर्थात् शब्दब्रह्म है - यह प्रतिपादन करता है। यहाँ पर शब्दब्रह्म का अर्थ है वेद है। शब्दब्रह्म वेद रूप है और वेद का सारनिर्यास, सारतत्त्व ओंकार रूप है। वह प्रणवस्वरूप है। शब्द से अशब्दब्रह्म का आविष्कार करना चाहिए। उपनिषद् कहती है-

''शब्देनैवाऽशब्दमाविष्क्रियते। यः शब्दस्तदोमित्येतदक्षरं यदस्याग्रं तच्छान्तमशब्दमभयमशोकमानन्दं तृप्तं स्थिरम् अचलममृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरत्वाय तदेता उपासीत इत्येव ह्याह''।[4] यह शब्दब्रह्म उपास्य नहीं है। परब्रह्म का उपासना साधन मात्र है। **''प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते''।**[5] यह भी कहा गया है। अतः यह शब्दब्रह्म भर्तृहरि प्रस्तावित शब्दब्रह्म से भिन्न है। भर्तृहरि के लिए शब्दतत्त्व हि परं तत्त्व है। परब्रह्म से अनतिरिक्त सत्ता है शब्दब्रह्म। वह अनादिनिधन है। भर्तृहरि का प्रतिज्ञावचन सर्वविश्रुत है -

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[6]

भर्तृहरि के मत में सम्पूर्ण अर्थजगत् उसी शब्दतत्त्व का परिणाम है। यहाँ पर जो विवर्त शब्द है वह भी परिणामपरक है। क्योंकि भर्तृहरि स्वयं आगे चलकर कहते हैं - **शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।**[7] यह विश्व अथवा जगत् शब्द का परिणाम है - यह भर्तृहरि का सिद्धान्त डिण्डिम है। भर्तृहरि के लिए शब्दतत्त्व से परे और कोई तत्त्व नहीं है। वही परंतत्त्व है, परंब्रह्म का अपरपर्याय है। वही समस्त भेद संसर्ग से अतीत है। समस्त भावाभाव, सत्यासत्य, क्रमाक्रम, समस्त भावभेद का वही योनि है। ''सोऽत्यन्तमुक्तः मोक्षाय मुमुक्षुभिरूपास्यते''। वही अत्यन्तमुक्त है और मोक्ष के लिए मुमुक्षु उसी की उपासना करते हैं। अतएव भर्तृहरि उद्घोषणा करते हैं -

''ब्रह्मेदं शब्दनिर्माणं शब्दशक्तिनिबन्धनम्। विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते।।''[8]

यह समग्र जगत् शब्द से ही निर्मित है। शब्द स्वशक्ति समाविष्ट होकर स्वयं शब्दमात्राओं से अर्थ जगत् की सृष्टि की है और अन्त में उसी शब्दमात्राओं में जगत् प्रलीन हो जाएगा। यह भर्तृहरि का एक बोल्ड क्लेम (Bold claim) है। शब्द को हम लोग न्याय-वैशेषिक पद्धति से एक गुण (आकाश के गुण) के रूप में पहचानते हैं। अथवा आधुनिक विज्ञान में हम इसे एक Electromagnetic Vibration के रूप में जानते हैं। किन्तु भर्तृहरि इन सव से हटकर कुछ कहते हैं - शब्द Vibration मात्र नहीं है। शब्द सूक्ष्मतम परिनिष्ठित द्रव्य विशेष है। इस की सूक्ष्म मात्राओं से स्थूलरूप जगत् परिणत होता है। अतः यह ध्येय है, ज्ञेय है, मननीय है। यह अलग बात है कि भर्तृहरि की दृष्टि से उस शब्दब्रह्म रूपक परब्रह्म का उपलब्धि साधन व्याकरण ही है-

आसन्न ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः। प्रथमं छन्दसामङ्गम् आहुर्व्याकरणं बुधाः।। (वा.प.1.11)

भर्तृहरि और भी निसंदिग्ध शब्दों से कहते हैं -

इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धि-सोपान-पर्वणाम्। इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः।। (1.16)

किन्तु यहां प्रश्न होता है कि क्या भवभूति को भर्तृहरि का सिद्धान्त मान्य है ? अगर मान्य है तो क्या वह as it is स्वीकार करते है? मुझे लग रहा है कि भवभूति को भर्तृहरि का सिद्धान्त मान्य नहीं है। कारण, भवभूति इसी उत्तररामचरित के मंगल श्लोक में कहते हैं - ''वन्देमहि च तां वाचम् अमृतामात्मनः कलाम्''। यहाँ

ध्यान देने योग्य बात यह है कि भवभूति आत्मा की कला स्वरूप उस वाक् की वन्दना करते हैं। कला शब्द अंश अथवा खण्ड का वाचक है। कला शब्द का बोध चन्द्रकला से स्पष्ट रूप से हो जाता है। किन्तु वाणी आत्मा की एक कला है - यह बात कुछ अटपटी सी लगती है। क्योंकि हम आत्मा को निष्कल, निरवयव, अखण्ड, पूर्णघन, चिदानन्द रूप जानते हैं। सभी वेदान्ती यही कहते हैं। भवभूति जो कि स्वयं परिणतप्रज्ञ शब्दब्रह्म का यथार्थ तत्त्व का वेत्ता वह कैसे निष्कल अखण्ड शब्दब्रह्म जो कि परब्रह्म से अनतिरिक्त तत्त्व है, वह आत्मा की एक कला है - ऐसे कैसे कह सकते हैं? भर्तृहरि भी शब्दतत्त्व के सन्दर्भ में 'कला' शब्द का प्रयोग जरूर करते हैं। किन्तु उनके विचार में अखण्ड निष्कल शब्दतत्त्व की कला केवल अध्यस्तरूपा है; अध्याहिता है। भर्तृहरि के वचन में -

''अध्याहितकलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः। जन्मादयो विकाराः षड्भावभेदस्य योनयः''।।

वस्तुतत्त्व की विपरीत बुद्धि से ही अध्यास होता है। श्रीशंकराचार्य अध्यास का लक्षण करते हैं ''अतस्मिंस्तद्बुद्धिः''। अतएव मिथ्या अवभासन रूप है अध्यास। भर्तृहरि भी स्वोपज्ञ वृत्ति में ''स्वप्नविषयप्रतिभासवत्'' कहते हैं। अतः भर्तृहरि का शब्दतत्त्व आत्मा की कला मात्र नहीं है। वह पूर्णब्रह्म है, एक और अखण्ड है, अद्वितीय तत्त्व है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति जब आत्मा की एक कलामात्र को वाक् संज्ञा देते हैं तो यह आत्मकला रूपिणी वाक् पूर्ण परब्रह्म तत्त्व से भर्तृहरि के शब्दतत्त्व से भिन्न है और अध्यस्तरूपा नहीं हैं। भवभूति उत्तरचरित में एक अन्यप्रसङ्ग में भी 'शब्दब्रह्म' - शब्द का प्रयोग करते हैं। वह यह है कि - द्वितीय अङ्क में वनदेवता आत्रेयी से पूछती है कि अध्ययन प्रत्यूह का कारण क्या है। उस प्रश्न का उत्तर में आत्रेयी प्रथमतः कहती है - 'लवकुश भ्रातृद्वय के साथ अध्ययन करने का सामर्थ्य हमारा नहीं है।' आत्रेयी के शब्द में कहा जाय तो - ''न त्वेताभ्याम् अतिदीप्तिप्रज्ञाभ्याम् अस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति''। इसके बाद वह आगे बोलती है कि - 'एक दिन ब्रह्मर्षि वाल्मीकि माध्यन्दिन सवन के लिए स्नानादि नित्यकर्म सम्पादनार्थ तमसा नदी को गये। वहाँ पर उन्होंने कामक्रीडारत क्रौञ्च युगल से नर पक्षी को एक व्याध से मारा जाना और उससे अति करुण स्वर से रोदन करती हुई क्रौञ्ची को देखा। इस करुणावस्थाजनित शोक ऋषि की वाणी से श्लोक रूप से आविर्भूत हुआ -

''मा निषाद! प्रतिष्ठात्वमगमः शास्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।''

इस विचित्र अनुष्टुभ् छन्द की रचना से भूतभावन पद्मयोनि ब्रह्मा ऋषि के समक्ष आविर्भूत हुए और कहे - 'हे ऋषि। तुम वागूरूपक आत्मतत्त्व से प्रबुद्ध हो गये हो। अतः रामचरित का वर्णन करो। यह अप्रतिहत प्रकाश विशिष्ट आर्षज्योति तुममे सदैव प्रकाशित रहे। तुम आदि कवि हो' ऐसा कहते हुए भगवान प्रजापति ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये। इस के वाद आत्रेयी कहती है -**''अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणः तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय''।।** यहाँ पर भी भवभूति का वचन, शब्दावली ध्यान देने योग्य है। यहाँ पर भवभूति भर्तृहरि की भाँती 'शब्दब्रह्म का विवर्त' की बातें करते हैं। किन्तु दोनों का सिद्धान्त संपूर्ण रूप से भिन्न है। भर्तृहरि के लिये शब्दब्रह्म का विवर्त अर्थजगत् है, वस्तुजगत् है। किन्तु भवभूति के मत में शब्दब्रह्म का विवर्तरूप है इतिहास, रामायण। जो कि शब्दात्मक है। जिससे संसार मण्डित हुआ है, जो संसार का अलंकरण है। अतः इससे भी स्पष्ट हो रहा है कि भर्तृहरि सम्मत शब्दतत्त्व अथवा शब्दब्रह्म से भवभूति का शब्दब्रह्म भिन्न है। तब प्रश्न पूर्ववत् उपस्थित होना स्वाभाविक है कि - भवभूति की दृष्टि से शब्दब्रह्म का स्वरूप क्या है? और दूसरा आनुषङ्गिक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि - आत्मतत्त्व के एक कलारूप से जिस वाक् की उपासना, वन्दना भवभूति करते हैं क्या वही वाक् की उपासना, वन्दना भवभूति करते हैं क्या वही वाक् उस

शब्दब्रह्म से अनतिरिक्त से अनतिरिक्त तत्त्व है, अभिन्न है, तदात्मक है या भिन्न है? वह स्वतन्त्र कला है या शक्तिमात्रात्मिका है ?

यह प्रश्न अनुसन्धेय है। इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर पाने के लिए मेरे विचार से हमें उसी शब्दब्रह्म (वेद) का शरण में जाना होगा। उपनिषदों की पृष्ठों को पलटना होगा। क्यों कि भवभूति जैसे कवि, जो कि स्वयं एक श्रोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुए थे। जो तैत्तिरीय शाखाध्यायी, काश्यपवंशीय, पंक्तिपावन, पञ्चाग्निहोत्र अनुष्ठाता, धृतव्रत, सोमयज्ञानुष्ठाता, सोमपायी, सुप्रसिद्ध ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। जो स्वयं अपने आपको पदवाक्यप्रमाणज्ञ घोषित करते हैं। उनकी दृष्टि से आत्मा कि एक कला के रूप से वाकृतत्त्व का प्रख्यापन अवश्य श्रुति-स्मृति-शास्त्रानुमोदित होना चाहिए। अतएव प्रथमतः वाक् आत्मा की एक कला है या नहीं - यह विचार्य है। कला का स्वरूप अथवा कला का दर्शन भी अति व्यापक है। उस पर नहीं जाते हुए हमें आत्मकला पर अपना चिन्तन केन्द्रित करना है। उपनिषदों में 'ब्रह्म चतुष्कलम्' - यह बात कही गई है। ''षोडशकलोऽयं पुरुषः'' यह बात भी आई है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से पुरुष शब्द के दो अर्थ होते हैं - ऐसा श्री आदिशङ्कर भगवत्पाद का मानना है। ''पूर्णत्वात् पुरि शयनाद् वा पुरुषः'' (प्र.उ. भाष्य- 6.6.2)। पूर्णत्व की दृष्टि से पुरुषः पुरुषोत्तमः ब्रह्म कहलाता है। 'पुरि शयनात् पुरुषः' इस व्युपत्ति के आधार पर जीवात्मा ही पुरुष कहलाता है।

प्रथमतः प्राचीन उपनिषदों में 'चतुष्कल ब्रह्म' विचार प्रकरण से वाक् आत्मा की कला है या नहीं यह देखने के पश्चात् ''षोडशकलः पुरुषः'' प्रसङ्ग से अनुसन्धान करना उचित होगा। छान्दोग्यश्रुति के चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबाल कथा आती है। वहाँ पर गुरु के आवेश से चार सौ रुग्ण और गायओं का झुण्ड ले कर सत्यकाम वन में चला जाता है। 'जाते जाते गुरु' से वचन देकर जाता है कि जब ये गाय एकसहस्र सुस्थ गाय नहीं हो जाएगें तब तक वह आश्रम में नहीं आएगा। यह उसका व्रत है। सुदीर्घ काल वह गोसेवा व्रत में लगा रहता है। इस बीच गायओं का स्वास्थ्य में सुधार हुआ है। गो कुल की वंश वृद्धि हुई है। एक दिन, जब चार सौ गाय एक हजार सुस्थ गाय हो गये तब एक वृषभ मनुष्य वाणी में उसे सम्बोधन करते हुए कहा - हे सत्यकाम! हम एक सहस्र हो गये हैं, हमें गुरु के आश्रम की ओर प्रस्थान करना उचित होगा। सत्यकाम चौंक उठा। वह समझ गया था उसकी गो सेवा से प्रसन्न होकर उसे कोई देवता सम्बोधन कर रहे हैं। वह विनम्र भाव से प्रणिपात पूर्वक प्रार्थना किया - हे देव। अगर प्रसन्न हैं तो मुझे आप अपना परिचय दें और उपदेश प्रदान कर अनुग्रहित करें। वृषभरूप में उपस्थित वायुदेव कहे - वत्स ! मैं वायु देवता हूँ। तुम्हारी गोसेवा व्रत से सभी देवता प्रसन्न हैं। मैं तुम्हे चतुष्पाद् ब्रह्म का प्रथम पाद का चार कलाओं का उपदेश देता हूँ। और आगे अग्नि, आदित्य और वरुण उसी चतुष्पाद् ब्रह्म का प्रत्येक एक एक पाद की चार चार कलाओं का उपदेश देंगे।

1. प्रथमतः वृषभ रूपसे वायुदेवता ब्रह्म का प्रथम पाद के चार कलाओं का उपदेश देते हुए कहें - हे सत्यकाम! प्राची, प्रतीची, दक्षिणा और उदीची - इस प्रकार चारों दिशाएँ ब्रह्म की चार दिक्कला हैं।
2. उसके बाद दूसरे दिन अग्नि देवता सत्यकाम को ब्रह्म की लोककला का उपदेश देते हैं वह चार लोककला है - पृथिवी कला, अन्तरिक्ष कला, द्यौ कला, समुद्र कला।
3. आदित्य देव हंस के रूप में आकर तीसरे दिन सत्यकाम को ब्रह्म के तृतीय पाद का चार तेजो कलाओं का उपदेश देते हैं - वह चार तेजो कला है - अग्नि, सूर्य, चन्द्र और विद्युत्।
4. चौथे दिन प्राण देवता/ आपः देव मद्गु नामक पक्षी रूप में आकर ब्रह्म के चतुर्थ पाद के रूप में जिन चार कलाओं का उपदेश देते हैं। वह है - प्राणकला, चक्षुः कला, श्रोत्रकला और मनः कला। इन चार कलाओं को इन्द्रियकला भी कहा जाता है।

किन्तु यहाँ पर ब्रह्म के चार पाद में विभक्त इन षोडश कलाओं में कहीं भी 'वाक्' कला के रूप में आ नहीं रही है। अतः यह प्रसङ्ग आपाततः हमारे विचार से बाहार सा लगता है। इसके बाद प्रश्नोपनिषद् के अन्तिम प्रश्न में उपस्थापित षोडशकल-पुरुष प्रसङ्ग को विचार में ले सकते हैं। प्रश्नोपनिषद् में जैसा कि हम जानते हैं - भगवान् पैप्पलाद ऋषि के आश्रम में भारद्वार, सत्यकाम, गार्ग्य, आश्वलायन, भार्गव और कात्यायान ये छः ऋषि आते हैं और आत्मविद्या के सम्बन्ध में छः प्रश्न पूछते हैं उन प्रश्नों का उत्तर भगवान् पैप्पलाद देते हैं और इसी से प्रश्नोपनिषद् समाप्त हो जाता है।

षष्ठ प्रश्न में भारद्वाज गात्रोत्पन्न सुकेशा नामक ऋषि भगवान् पैप्पलाद से निवेदन करते हैं कि - भगवन्! एक बार हिरण्यनाभ नामक कोशलदेश का राजकुमार आकर उनसे पूछा था कि षोडशकला पुरुष होता है - ऐसा कहा जाता है। यह षोडशकालएँ क्या होती हैं ? इस का जबाव क्योंकि भारद्वाज को पता नहीं था अतः भगवान् पैप्पलाद से यह जानना चाहते हैं कि षोडशकला पुरुष क्या होता है?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान पैप्पलाद कहते हैं -

''तस्मै स होवाच। हहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मित्रेताः षोडशकलाः प्रभवन्ति इति।''[10]

इसके आगे वे कहते हैं -

स ईक्षां चक्रे। स प्राणमसृजत। प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः।
अन्नम् अन्नाद वीर्य तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च।

ये षोडश कलायें ऐसी हैं - 1. प्राण, 2. श्रद्धा, 3. आकाश, (ख) 4. वायु 5. ज्योति/तेज, 6. आपः, 7. पृथिवी, 8. इन्द्रिय, 9. मन, 10. अन्न, 11. वीर्य, 12. तपो, 13. मन्त्र, 14. कर्म, 15. लोक और 16. नाम।

देखने लायक यह है कि यहाँ पर भी 'वाक्' आत्मा के कला के रूप से स्वतन्त्रतया प्रतिपादित नहीं है। यद्यपि जहाँ मन्त्र और नाम है जो कि वागात्मक दो कलाएँ है - फिर भी वाक् इतना ही नहीं है - वाक् इस से व्यापक तत्त्व है। अतः सम्भवतः भवभूति अपने मंगल श्लोक में इसका भी जिक्र नही करते हैं - ऐसा लगता है। उस के बाद हम छान्दोग्यश्रुति के षष्ठ अध्याय में वर्णित षोडशकलः पुरुष प्रसङ्ग को विचार में ले सकते हैं। छान्दोग्यश्रुति के षष्ठ अध्याय में श्वेतकेतु और आचार्य आरुणि की कहानी है। स्तब्ध अनुचानमानी पुत्र श्वेतकेतु को पिता ब्रह्मज्ञ ऋषि आरूणि ब्रह्म स्वरूप के संबन्ध में उपदेश देते हुए कहते हैं कि -

सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति। तत्तेजोऽसृजत तदपोऽसृजत, ता अन्नमसृजन्त।।

यहाँ सत् से तीन देवताओं की उत्पत्ति बताई गयी है - तेज, आपः और अन्न। इसी प्रसङ्ग में इन तीन देवताओं की त्रिवृत्करण प्रक्रिया आती है। इन्ही तीन देवताओं की त्रिवृत्करण प्रक्रिया आती है। इन्ही तीन देवताओं की त्रिवृत्करण से नाम- रूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। उपनिषद् का वाक्य यहाँ ध्येय है कि - **''हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति'' (6.3.2)** इस के बाद अन्न, आपः और तेज इन तीन देवताओं से प्रत्येक अणिष्ठ, मध्यम और स्थविष्ठ रूप में तीन तीन धातुओं की उत्पत्ति का वर्णन है। वह इस प्रकार है - अन्न देवता के अणिष्ठ, मध्यम और स्थविष्ठ रूप में क्रमशः मन, मांस और पुरीष धातु उत्पन्न होते हैं। इसी तरह आपः देवता के अणिष्ठ, मध्यम और स्थविष्ठ रूप में क्रमशः प्राणः लोहित/रक्त, और मूत्र धातु उत्पन्न होते हैं। तेजः देवता के अणिष्ठ, मध्यम और स्थविष्ठ रूप में क्रमशः वाक् मज्जा और अस्थि धातु उत्पन्न होते हैं। इस के बाद उपनिषद् कहती है - **अन्नमयं हि सोम्य मनः, आपोमयः प्राणः; तेजोमयी वागिति। (6.5.4)** यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि - सद्रूप ब्रह्म से प्रथमोत्पन्न देवता

तेजः का अणिष्ठ अथवा सुक्ष्मतम रूप है वाक् - यह कहा गया है। यह वाक्, प्राण (जो कि आपः का सूक्ष्मतम रूप है) और मन (जो कि अन्न का सूक्ष्मतम रूप है) से भी श्रेष्ठ है - यह स्वतः प्रतिपादित हो जाता है। तेजोरूप प्रथमोत्पन्न द्रव्य का सूक्ष्मतम रूप होने से यह वाक् वैशेषिक परिभाषा के हिसाब से 'गुण' हो ही नहीं सकता। इसे सूक्ष्म तेजो मात्रा अथवा द्रव्यरूप ही मानना पडेगा। और इसी सूक्ष्म वाक् रूप तेजो मात्रा द्रव्य से संपूर्ण अर्थ जगत् का निर्माण हुआ है - यह स्पष्ट हो जाता है। छान्दोग्यश्रुति के प्रकृत प्रसङ्ग में आगे चलकर ऋषि आरुणि श्वेतकेतु को समझाते हुए कहते हैं - ''षोडशकलः सोम्य पुरुषः'' किन्तु यहाँ हमें ये षोडश कलाएँ क्या होती हैं - इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। श्री शङ्कराचार्य भाष्य में कहते हैं कि - अन्न से उपचित मन की शक्ति को षोडश प्रकार भेद से प्रविभक्त करते हुए पुरुष के कला के रूप से वर्णित किया गया है।'' किन्तु इस व्याख्या का प्रकृत प्रसङ्ग से उचित तालमेल बैठता हुआ नहीं दिखता। क्योंकि संभवतः मन की जिन शक्तियों की बातें वे करतें हैं ऐतरेय श्रुति में वर्णित निम्न मन्त्र से संबन्ध रखता है। वह मंत्र है -

''यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्। संज्ञानम् आज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृटिर्धृतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्प क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति।'' (ऐ. 3.1.2) यहाँ पर वर्णित मन का षोडश रूप अगर पुरुष की षोडशकला के रूप में वर्णना करना श्रुति श्रुति में वर्णित पुरूष का पंचदश कला से समन्वय स्थापित करना संभव नहीं होगा। अतः इस प्रसङ्ग में अधिक प्रकाश डालने के लिये मुण्डक उपनिषद का यह मन्त्र विचार्य है - **''तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राण तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि।। (मु. 2.2.2)** यहाँ पर छान्दोग्य वर्णित तीन देवताओं से उत्पन्न तीन अणिष्ठ तत्त्वों का निर्देश करते हुए तीनों का अर्थात् प्राण, वाक्, मनों का समन्वित रूप अक्षर ब्रह्म (जीवात्मा) है - यह कहा गया है जो कि सत्य है, अमृत है और बोधयोग्य है - यह भी बताया जाता है। इस के आगे मुण्डक श्रुति में कहा गया है कि -

''हिरण्मये परे कोशे विरज ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।।(2.2.9)

यहाँ पर उस विरज निष्कलब्रह्म के बारे में बताया गया है जो हिरण्मय कोश (ब्रह्माण्ड) से परे विद्यमान है, जो कि शुभ्र है, ज्योतियों की ज्योतिरूप है - वह पर आत्मा (अव्ययात्मा) है ऐसे आत्मज्ञविद्वान् जानते हैं यह आत्मा वह अव्यय आत्मा है, जो कि जीवात्मा अथवा अक्षर आत्मा से परे है, परमात्मा है। इसी मुण्डक श्रुति के तृतीय मुण्डक के अन्तिम खण्ड (द्वितीय खण्ड) के उपसंहार में कहा गया है -

''गताः कलाः पञ्चदशः प्रतिष्ठा, देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा, परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति।।''

यह मोक्ष दशा का वर्णनपरक मन्त्र है। मोक्ष दशा में बताया गया है कि जीवात्मा की पंचदश कला स्व स्व मूलतत्त्व में लीन हो जाती है। आगे कहा गया है कि 'देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु (प्रतिष्ठां गताः इत्यर्थः)' देवता अर्थात् उन तीन देवता तेजः, आपः, अन्न स्व स्व प्रकृति में लीन हो जातें हैं। उनका कर्म अर्थात् प्राण, वाक् और मन भी स्व स्व प्रकृति में अर्थात् पूर्वोक्त तीन देवता में लीन हो जातें हैं। तथा विज्ञानमय आत्मा पर आत्मा में अव्यय पुरुष में एकीभूत हो जाता है। यहाँ विचार्य है कि पञ्चदश कला क्या है? हमारे विचार में तीन देवताओं से उत्पन्न अणिष्ठ रूप मन, प्राण और वाक् प्रत्येक पांच पांच कलात्मक है। पंच मन और पंच प्राण तो प्रसिद्ध हैं। रही पंचवाक् की बात यह सन्देहास्पद है। क्यों कि ''चत्त्वारि वाक्'' यह श्रुतिसिद्ध है। पंचमी वाक् क्या हो सकती है? यह विद्वानों का अनुसन्धेय है। हमारे विचार में वाक् का द्विविध स्वरूप तन्त्र शास्त्र में देखने को मिलता है। तन्त्र शास्त्र में परम शिव तत्त्व को नाद-बिन्दु-कलातीत कहा गया है। अर्थात् परम शिव नादकला

ओर बिन्दुकला से परे है। नादकला स्फोटात्मिका वाक् है, वह शब्दब्रह्म अथवा नादब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है। स्फोटात्मिका वाक् - परा, पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी भेदसे चतुर्धा विभक्त है। किन्तु बिन्दुकला रूपिणी वाक् एक है। वह परमेश्वर है। वही नादात्मिका परा शक्ति से समन्वित हो कर समग्र अर्थ जगत् की उत्पत्ति का कारण बनता है। उस से चतुर्धा विभक्त स्फोटात्मिका वाक् का समायोजन से पंच वाक् हो जाती है। इसी तरह पांच मनःकला, पांच प्राणकला और पांच वाक्कला मिल कर पंचदश कला हो जाती है। उस के साथ शुद्धविज्ञानमय चैतन्यात्मा की एक कला मिलकर षोडशकलः पुरुष हो जाता है। इसी षोडशलः पुरुष का मूलतत्त्व मन, प्राण, और वाक् है। इसी से चेतन तत्त्वरूपक एक कला का समावेश करने पर चतुष्कला विशिष्ट पुरुष आत्मतत्त्व का परिचायक बनता है - अतएव यह जीवात्मा निष्कल या निरवयव नहीं है।यह आत्मा संघातरूप है। यही बात 'कार्य-कारण- संघातलक्षणो जीवविशिष्टः पुरूषः षोडशकल उच्यते'-श्रीशकराचार्य के इस वचन से भी प्रमाणित हो जाती है[11]। इस पुरुषतत्त्व में चैतन्यतत्त्व जो कि सत्, अमृत, अव्यय, परात्पर है उससे प्रथमोत्पन्न है सूक्ष्म वाक्तत्त्व है - वही वाणी भवभूति की उपास्या है, वन्दनीया है। अतः भवभूति कहते हैं। **''वन्देमहि च तां वाचम् अमृताम् आत्मनः कलाम्।''** सम्भवतः भवभूति का इस वाक्य का रहस्य और भवभूति का शब्दब्रह्म का रहस्य पूर्वोक्त श्रुतियों से इसी प्रकार निगूढ है - जिसके ज्ञाता भवभूति शब्दब्रह्मवेत्ता के रूप से, जो कि वागात्मविज्ञान से प्रबुद्ध है। वे स्वयं कहते हैं कि - ''शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमीमाम्।।'' ऐसे उपक्रमोपसंहार की एकवाक्यता से वाणी ही आत्मा की एक कला कहा है - यह प्रतिष्ठत होती है। इसी दृष्टि से भर्तृहरि का शब्दब्रह्म तत्त्व की भी व्याख्या की जा सकती है। अतएव चित्सुखाचार्य जैसे अद्वैत पारदृश्वा आचार्य भी भवभूति को आप्त कोटी में परिगणित करते हैं। इति शम्

सन्दर्भ -

1. *'शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमीमाम्' - यह पाठभेद भी मिलता है, किन्तु मुझे 'परिणतप्रज्ञस्य' (परिणता प्रज्ञा यस्य सः) यह पाठ ठीक् लगता है।*
2. *मैत्रायण्युपनिषद्, 6,22*
3. *ब्रह्मविन्दूपनिषद्, 17*
4. *मैत्रा; 6, 23*
5. *मैत्रा; 14 2.2.4*
6. *वा.प., 1.1.1*
7. *वा.प., 120*
8. *वा.प.,1. पृ. 10.*
9. *प्र., 6.2*
10. *सान्नोपचिता मनसः शक्ति षोडशधाप्रविभज्य पुरूषस्य कलात्वेन निर्दिदिक्षिता - भाष्य (6.7.1)*
11. *छा., 6.7.1. शां. भाष्य*

3

महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् पर वैदिक संस्कृति का प्रभाव

रेनू कोछड़ शर्मा

भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए वैदिक संस्कृति वस्तुतः आधारभूत अनिवार्य स्रोत के रूप में विद्यमान है। वैदिक वाङ्मय में नाटक के अङ्गों का परिचय समुपलब्ध होता है, जिनमें अभिनय, संगीत, नृत्य तथा संवाद प्रमुख हैं। अस्तु, रूपक के भेद नाटक की नींव वैदिक काल में ही रखी जा चुकी थी। सम्भवतः नाटकों में वैदिक वाङ्मय का प्रभाव पदे-पदे दृष्टिगत होता है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में क्रमशः चारों वेदों सेनाटक की उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए बताया है कि नाटक के पाठ्य (संवाद) ऋग्वेद से, गीत को सामवेद से, अभिनय को यजुर्वेद से तथा अथर्ववेद से रस का ग्रहण किया-

जग्राह पाट्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।[1]

तदनुसार प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य वाल्मीकि कृत रामायण पर आधारित महाकवि भवभूति प्रणीत नाटकद्वय महावीरचरितम् तथा उत्तरामचरितम् में परिलक्षित वैदिक संस्कृति के प्रभाव को प्रस्तुत करना है। महाकवि भवभूति प्रणीत वीर रस प्रधान महावीरचरितम् तथा करुण रस प्रधान नाटक उत्तरामचरितम् संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण नाटकद्वय के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ध्यातव्य है कि दोनों ही नाटक वाल्मीकि रामायण पर आधृत हैं तथा मूल रूप से रामकथा से सम्बन्धित हैं।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि प्रणीत रामायण आदिकाव्य[2] की संज्ञा से विख्यात है तथा अनेक परवर्ती कवियों के लिए काव्यसृजन के प्रबल प्रेरक स्वरूप रहा है। वस्तुतः संस्कृत साहित्य की विरल ही कोई विधा होगी, जिस पर रामायण का प्रभाव परिलक्षित न होता हो। साथ ही विविध भारतीय भाषाओं में रामायण का प्रणयन उसके वैशिष्ट्य का पुष्ट परिचायक है।[3] स्वयमेव वाल्मीकि द्वारा रचित श्लोक रामायण के माहात्म्य को उद्घाटित करता है-

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले। तावत् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[4]

अर्थात् इस पृथिवी पर जब तक नदियों तथा पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा। इसी क्रम में उल्लेखनीय है कि प्रत्येक देश की संस्कृति के कतिपय निश्चित तत्त्व होते हैं, जो काल तथा समाज विशेष से सम्बन्धित होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे सांस्कृतिक तत्त्व होते हैं, जो सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक दृष्टि से उपादेय होते हैं। भारतवर्ष के प्राणस्वरूप वैदिक साहित्य तथा संस्कृति

का प्रभाव परवर्ती साहित्य - काव्य तथा नाटकादि पर दिखाई देता है। महाकवि भवभूतिकृत नाटकद्वय महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् पर भी वैदिक संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। महर्षि वाल्मीकि के हृदय से स्वतःस्फूर्त प्रथम पद्य[5] वैदिक वाणी के पश्चात् प्रथम लौकिक छन्द के रूप में रचा गया, जैसा कि उत्तररामचरितम् के द्वितीय अङ्क में वनदेवता के वाक्य से स्पष्ट है - **आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः।**[6] उल्लेख्य है कि वाल्मीकि विरचित प्रथम पद्य उत्तररामचरितम् के द्वितीय अङ्क में वनदेवता तथा आत्रेयी के संवाद में भी तथैव दृष्टिगत होता है, जिसके अन्तर्गत शाश्वतीः समाः[7] सदृश प्रयोग वैदिक भाषा के प्रभाव की पुष्टि करते हैं-

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[8]

अर्थात् निषाद! तू चिरकाल तक आश्रय को नहीं प्राप्त करेगा क्योंकि तूने क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक कामासिक्तचित्त को मार डाला है। उक्त श्लोक में महर्षि वाल्मीकि के प्रस्फुटित भावों में भी वैदिक संस्कृति के दर्शन होते हैं। उक्त श्लोक के भाव में भी सम्भवतः वैदिक पृष्ठभूमि का प्रभाव कारणस्वरूप प्रतीत हो रहा है। तद्यथा -प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रति दया भावदृशं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे[9] साथ ही सहृदय का भाव भी प्रकट हो रहा है-सहृदयं सामनस्यर्विद्वेषं कृणोमि वः।[10] वैदिक संस्कृति यज्ञप्रधान रही है। कर्मकाण्ड की विशद व्याख्या करने वाले यजुर्वेद में यज्ञ को समस्त जगत् की नाभि अर्थात् केन्द्र के रूप में बताया गया है- **अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।**[11] कर्मकाण्ड के बृहद् प्रतिपादक शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म की संज्ञा प्रदान की गई है- यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।[12] इस क्रम में उल्लेखनीय है कि भवभूति प्रणीतमहावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् दोनों ही नाटकों में यज्ञ का महत्त्व तथा सम्पादन का अनेकशः उल्लेख वैदिक संस्कृति के प्रभाव के ही प्रतिफल स्वरूप प्रतीत होता है- महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में सूत्रधार के कथनानुसार विश्वामित्र यज्ञ करेंगे, वह इक्ष्वाकुवंशी तथा वशिष्ठ के यजमान दशरथ के घर गए और अपने तपोवन को लौट आए, उन्होंने अपने यज्ञ में जनक को निमन्त्रित किया, जो स्वयं यज्ञ कर रहे थे-स तु भगवान् दीक्षिष्यमाणः कौशिको विश्वामित्र।[13] ..... निमन्त्रितस्तेन विदेहनाथः स आत्तदीक्षः।[14]

- महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में विश्वामित्र का कथन – राजा जनक को यज्ञ का निमन्त्रण देना, यद्यपि वे स्वयं यज्ञ में प्रवृत्त हैं फिर भी आचारानुरोध से उनको निमन्त्रित करना तथा उनकी कुशलता पूछने के प्रसङ्ग में पुनः पुनः यज्ञ का उल्लेख प्राप्त होता है-अपि प्रवृत्तयज्ञोऽसौ विदेहाधिपतिः सुखी।[15]
- महावीरचरितम् के चतुर्थ अङ्क में वाजपेय यज्ञ, यज्ञीयपात्र तथा यज्ञाग्नि का उल्लेख यज्ञ सम्पादन का पुष्ट प्रमाण है-

स्कन्धारोपितयज्ञपात्रनिचयाः स्वैर्वाजपेयाजितै-
स्छत्रैवारयितुं तवार्ककिरणांस्ते ते महाब्राह्मणाः।[16]

- महावीरचरितम् के पञ्चम अङ्क में श्रमणा के वचन में मतङ्ग ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सोमपात्र तथा चमसादि का वर्णन भी यज्ञ-विधानों के द्योतक स्वरूप है-

यत्र चिरशून्येऽपि संनिहित सोमचमसादि विविध पात्र परिकर आस्तीर्ण बहिरि/मवानाज्य गन्धिरद्यापि भगवान्वैश्वानरः समिध्यते।[17]

- उत्तररामचरितम् के प्रथम अङ्क में आहिताग्नि के लिए (वेदविधान द्वारा जिसने -दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य आदि अग्नियाँ स्थापित की हों) अग्निहोत्र की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है-

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति। सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।[18]

यही भाव इसी रूप में महावीरचरितम् में भी उपलब्ध होता है।[19]

- उत्तररामचरितम् के तृतीय अङ्क में अश्वमेध यज्ञ के निमित्त बनवाई गई सीता की प्रतिमा के विषय में राम कहते हैं कि अश्वमेध यज्ञ के लिए यह मेरी सहधर्मिणी है- **अस्ति इदानीमश्वमेधसहधर्मचारिणी मे।**[20]
- उत्तररामचरितम् में प्रथम अङ्क में ही, जामातृयज्ञेन[21], देवयजने[22] इत्यादि अनेक स्थलों पर यज्ञविषयक वर्णन समुपलब्ध होते हैं, जो यज्ञाधृत वैदिक संस्कृति के अनुसरण के समान प्रतीत होते हैं।

वैदिक संस्कृति[23] आचार तथा नैतिकता की आधारस्वरूपा है। ध्यातव्य है कि समाज में रीतिबद्ध रूप से जीवन निर्वाह करने के लिए साधारण तथा विशेष धर्मों का नियमन तथा अनुपालन आवश्यक है। साधारण धर्मों में सत्य, दान, दया तथा आतिथ्य आदि सम्मिलित हैं। विशेष धर्मों के अन्तर्गत वर्णाश्रम व्यवस्था आदि समाहित हैं। तद्यथा-

- सत्य -वैदिक संस्कृति में सत्य की प्रतिष्ठा अनेकशः प्राप्त होती है।[24] समस्त साधारण धर्मों में सत्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान पर परिगणित हैं। वाल्मीकि रामायण के राम की भाँति महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् में भी राम सत्य की साक्षात् प्रतिमा हैं। महावीरचरितम् के पञ्चम अङ्क में बालि के द्वारा राम-लक्ष्मण के लिए सत्यस्वरूप[25] आदि पदों का प्रयोग प्राप्त होता है तथा ऋषि के सत्यपूत होने का भी प्रमाण मिलता है।[26]
- मैत्री-वैदिक संस्कृति में समस्त प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव की संकल्पना का उल्लेख मिलता है।[27] महावीरचरितम् के पञ्चम अङ्क में बालि के वचन में मैत्री की सुन्दर परिभाषा मिलती है-

प्राणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहोव्याजवर्जनम्। आत्मनीवप्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम्।।[28]

अर्थात् प्राण देकर भलाई करें, द्रोह तथा छल का कभी नाम न लें, अपनी तरह प्रिय करें - यही मैत्री धर्म है। माता-पिता, गुरु तथा अतिथि-वैदिक संस्कृति में माता-पिता[29], गुरु तथा अतिथि को देवता के समान पूज्य माना है।[30] महावीरचरितम् में भी आतिथ्य का महत्त्व स्पष्ट किया गया है।[31]

- भ्रातृप्रेम- वैदिक संस्कृति भ्रातृप्रेम की पक्षधर रही है।[32] महावीरचरितम् के पञ्चम अङ्क में सुग्रीव के कथन में भ्रातृत्व प्रेम के दर्शन होते हैं। उक्त विषयों के अतिरिक्त पातिव्रत्य[33], तप-स्वाध्याय[34] आदि महत्त्वपूर्ण कर्तव्याकर्तव्य का विवेचन मिलता है। ध्यातव्य है कि वैदिक संस्कृति उक्त धर्मों, सद्गुणों तथा कर्तव्याकर्तव्य की बोधिका रही है।

अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य -

भवभूति प्रणीत उक्त नाटकद्वय पर निःसन्देह वैदिक संस्कृति का प्रभूत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जो निम्नलिखित तथ्यों से पोषित होता है-

- वेद तथा वेदरक्षा से सबन्धित अनेक वाक्य प्राप्त होते हैं, जो न केवल वैदिक ज्ञाननिधि के माहात्म्य स्वरूप हैं तथा भवभूति के नाटकों पर वैदिक ज्ञान के प्रभाव का प्रतिफलवत् हैं-

i. राम वेदों के रक्षकस्वरूप हैं ।[35]

ii. श्रोत्रिय क्षत्रिय के साथ नम्र व्यवहार।[36]

iii. श्रोत्रिय के लिए मधुपर्क।[37]

iv. वेद के समान अप्रमेयमहिमावान् ऋषि वशिष्ठ।[38]

- महावीरचरितम्[39] में पुरोहित की प्रशंसा के प्रसङ्ग में ऐतरेय ब्राह्मण[40] का वचन उद्धृत किया है।
- ध्यातव्य है कि शुक्लयजुर्वेद के 34वें अध्याय के छह मन्त्र शिवसङ्कल्पसूक्त के रूप में ख्यात है, प्रत्येक मन्त्र की अन्तिम पङ्क्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु है, यही भाव महावीरचरितम् में भी प्राप्त होता है- शिवसंकल्पमन्तःकरणमस्तु ते।[41]
- ईशोपनिषद्[42] के मन्त्र का भावभवभूति के उत्तररामचरितम्[43] में द्रष्टव्य है।
- कठोपनिषद् में ओङ्कार के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के साधक कहते हैं, जिसकी इच्छा से (मुमुक्षुजन) ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उस पद को मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, ऊँ यही वह पद है।[44] महावीरचरितम् के प्रथम अङ्क में विश्वामित्र के कथन में ओङ्कार का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।[45]
- ऋषिका लोपामुद्रा[46], ऋषि मधुछन्दस्[47] का नामोल्लेख मिलता है।
- तैत्तिरीया अर्थात् तैत्तिरीय शाखा के अध्येतागण का उल्लेख प्राप्त होता है।[48]
- अनेक सन्दर्भों से भवभूतिकी श्रौतयाग विज्ञता तथा मीमांसाशास्त्र का ज्ञान भी स्पष्ट होता है, तद्यथा–
- पृषदाज्याभिघारघोरस्तनूनपातसमिध्यमानदारुणब्रह्मवर्चसज्योतिराङ्गिरसः।[49]
  समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहु मन्यमानाः श्रोत्रियाभ्यागताय वत्सतरीं
  महोक्षं या पचन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।[50]
- यजुर्वेद[51] में उपलब्ध राष्ट्रीय प्रार्थना की भाँति महावीरचरितम् के सप्तम अङ्क में भी राष्ट्रहित विषयक प्रार्थना समुपलब्ध होती है-

क्ष्मापालाः क्षीणतन्द्राः क्षितिवलयमिदं पान्तु ते कालवर्षा
वार्वाहाः सन्तु राष्ट्रं पुनरखिलमपास्तेति सम्पन्नसस्यम्।
लोके नित्यप्रमोदं विदधतु कवयः श्लोकमाप्तप्रसादं
संख्यावन्तोऽपि भूम्ना पर कृतिषु मुदं संप्रधार्य प्रयान्तु।।[52]

अर्थात् राजा आलस्य त्यागकर पृथिवी की रक्षा करें, मेघ समय पर बरसे, राष्ट्र में सत्य सम्पन्न रूप में हो, प्रसाद गुणयुक्त कविता की ओर कवियों की रुचि हो, विद्वज्जन दूसरों की कृतियों का मनन कर प्रमोद प्राप्त करें।

इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भवभूति प्रणीत नाटकों- महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् पर वैदिक संस्कृति का प्रभूत प्रभाव दृष्टिगत होता है, जो वैदिक संस्कृति के अप्रतिम ज्ञान भण्डार तथा उसमें निहित अद्वितीय आदर्शों के एकत्र समन्वय स्वरूप है।

सन्दर्भ

1. *भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र, 1/17*
2. *आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्। -वाल्मीकिकृत रामायण, उत्तरकाण्ड, 98.18*
3. *द्रष्टव्य - ACritical Inventory of Rāmāyaṇa Studies in the World, Vol.I, K. Krishnamoorthy (ed.), Sahitya Akademi, New Delhi, 1960] pp-59-127*
4. *वाल्मीकिकृत रामायण, बालकाण्ड, 2.36*

5. मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्-वाल्मीकि— कृत रामायण, बालकाण्ड, 2/15
6. उत्तररामचरितम्, 2/5 के पश्चात् वनदेवता का वचन
7. क. कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । -यजुर्वेद, 40.2
ख. कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्यथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः । -यजुर्वेद, 40.8
ग. यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः सभाभ्यः । -अथर्ववेद, 7.75.2
घ. शाश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि । -अथर्ववेद, 7.75.3
8. उत्तररामचरितम्, 2/5
9. ऋग्वेद,10.85.43
10. अथर्ववेद, 3.30.1
11. यजुर्वेद, 23/62
12. शतपथ ब्राह्मण, 1/7/1/5
13. भवभूतिकृतमहावीरचरितम्, 1/9 से पूर्व सूत्रधार का कथन
14. महावीरचरितम्, 1/9
15. महावीरचरितम्, 1/19
16. महावीरचरितम्, 4/57
17. महावीरचरितम्, पञ्चम अङ्क में श्लोक 39 के बाद श्रमणा का कथन
18. भवभूतिकृत उत्तररामचरितम्, 1/8
19. किं त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।। - महावीरचरितम्, 4/33
20. उत्तररामचरितम्, 3/45 के पश्चात् राम का कथन
21. उत्तररामचरितम्,1/11
22. उत्तररामचरितम्, 1/13
23. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा ।– यजुर्वेद, 7.14
24. सत्येनोत्तभिता भूमिः ।- ऋग्वेद, 10/85/1य अथर्ववेद, 20/91/11
25. सत्यमस्ति भवतः सत्यं मनुष्यो भवान् । -महावीरचरितम्, 5/51
26. क. सत्यशुद्धाहि ते गिरः । -महावीरचरितम्, 4/16
ख.विजितपरशुरामं सत्यधर्माभिराम् 3. । -महावीरचरितम्, 5/46 के पश्चात् बालि का वचन ।
ग. सत्यसन्धा हि रघवः । -महावीरचरितम्, 4/48
27. मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।। -यजुर्वेद, 36/18
28. महावीरचरितम्, 5/59
29. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनः ।- अथर्ववेद, 3/30/2
30. मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । - तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, 2
31. धर्मात्मन्यतिथौ... । - महावीरचरितम्, 5/46

32. *मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत् मा स्वसारमुत स्वसा । -अथर्ववेद, 3/30/3*
33. *पतिव्रतामयं ज्योतिः शान्तं दीपं च घुष्यते। -महावीरचरितम्, 6/6 सीता के पतिव्रत धर्म के विषय में माल्यवान् का वचन*
34. *स्थिरतपःस्वाध्यायसाक्षात्कृत् ब्रह्माणो निवसन्ति। -महावीरचरितम्, 7/13*
35. *त्रप्यास्त्राता यस्तवायं... । -महावीरचरितम्, 4/44*
36. *राजन्यश्रोत्रिये वत्साभ्यां प्रश्रयेण वर्तितव्ययम्। -महावीरचरितम्, 1/15 के पश्चात् विश्वामित्र का कथन*
37. *ऋषिरयमथिथिश्चेविष्तरः पाद्यमर्घ्यं*
    तदनु च मधुपर्कः कल्प्यतां श्रोत्रियाय। - महावीरचरितम्, 2/44
38. *येषां वेद इवाप्रमेयमहिमा धर्मे वशिष्ठो गुरुः। -महावीरचरितम्, 4/30*
39. *राष्ट्रगोपः पुरोहिताः।- महावीरचरितम्, 3/18*
40. *यस्येवं विद्वान्ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः इति। -ऐतरेय ब्राह्मण, 24/3*
41. *महावीरचरितम्, 4/36*
42. *ईशोपनिषद्, 3*
43. *अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाप्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते, य आत्मघातिन। - उत्तररामचरितम्, 4/3 के पश्चात् जनक का कथन*
44. *कठोपनिषद्, 1/2/15*
45. *ओङ्कारः सकलराक्षससंहारनिगमाध्ययनस्य।-भवभूतिकृत महावीरचरितम्, 1/41 से पूर्व विश्वामित्र का कथन*
46. *क. लोपामुद्रानसूयाहमिति तिस्रत्वया सह।*
    पतिव्रताश्चतस्रोऽत्र सन्तु जानकि साम्प्रतम्।। -महावीरचरितम्,7/36
    ख. भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि। -उत्तररामचरितम्, 3/3 के पश्चात् मुरला का कथन
47. *मधुछन्दसो मातुः सत्कार्यो भविष्यामि। -महावीरचरितम्, 4/34 से पूर्व विश्वामित्र का कथन।*
48. *तत्र केचित् तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिनः उदुम्बराः ब्रह्मवादिनः। -महावीरचरितम् की प्रस्तावना में पूर्वपुरुषों का परिचय प्रदान करने के सन्दर्भ में।-महावीरचरितम्, प्रस्तावना, पृ.४*
49. *महावीरचरितम्, 3/20 के पश्चात् नेपथ्य में उच्चरित वाक्य*
50. *उत्तररामचरितम्, दाण्डायन सौधातकि संवाद, 4/1 के पश्चात्*
51. *ओम् आब्रह्मन्ब्राह्मणोब्रह्मवर्चसीजायतामाराष्ट्रे*
    राजन्यःशूरऽइषव्योऽतिव्याधीमहारथोजायताम्।
    दोग्ध्रीधेनुर्वोढाऽनड्वानाशुःसप्तिःपुरन्धिर्योषाजिष्णूरथेष्ठाः
    सभेयोयुवास्ययजमानस्यवीरोजायताम्।
    निकामेनिकामेनःपर्जन्योवर्षतुफलवत्योनऽओषधयःपच्यन्तां
    योगक्षेमोनःकल्पताम।। - यजुर्वेद, 22/22
52. *महावीरचरितम्, 7/42*

4

भवभूति पर लोकनाट्यपरम्परा का प्रभाव

राधावल्लभ त्रिपाठी

भवभूति का अवतरण भारतीय नाट्यपरम्परा के एक विशिष्ट संक्रान्तिकाल में हुआ। श्रोत्रिय ब्राह्मणों के प्रतिष्ठित परिवार में रहकर भवभूति शास्त्रपरम्परा में तो निष्पात हैं, नाट्यशास्त्र का भी उनका विशद अध्ययन उनकी कृतियों में प्रतिफलित है। फिर भी भवभूति नाट्यशास्त्र के विधानों की सीमा रेखाओं का उल्लंघन करते हैं। भास को छोड़कर संस्कृत के श्रेष्ठ नाटककारों में किसी ने नाट्यशास्त्र के विधि-विधानों का ऐसा उल्लंघन नहीं किया। भास के सम्मुख नाट्यशास्त्र का अद्यतन रूप संभवतः था ही नहीं, अतः उनके संदर्भ में भरत की सचेत अवज्ञा की बात लागू नहीं होती। भवभूति तो करुण रस की सर्वातिशयिता का दर्शन खड़ा करके नाट्यशास्त्रीय व्यवस्था को चुनौती देने लगते हैं। वे शयन, आलिंगन, दूरदेशगमन, आदि न दिखाने के विषय में नाट्यशास्त्रीय निर्देशों का पालन न कर अपने नाटकों में इस प्रकार की स्थितियों का विशिष्ट संयोजन करते हैं। उत्तम पात्र के प्रवेश के विषय में वे संस्कृत नाटक की पारंपरिक औपचारिकता का निर्वाह नहीं करते।

नाट्यशास्त्र के बड़े परिप्रेक्ष्य में तो यह कहा जा सकता है कि भवभूति ने नाट्यशास्त्र के निर्देशों की कहीं कोई अवेहलना नहीं की है, न उसकी व्यवस्था को ही तोड़ा है। क्योंकि नाट्यशास्त्र में ही भरत मुनि स्वयं उन नटों को अपनी समझ अनुसार नाट्यप्रयोग करने की छूट देते हैं, जिन्होंने शास्त्र का गुरु से अध्ययन नहीं किया।[1] शास्त्र के अपने सम्बन्ध के आधार पर प्रयोग तीन प्रकार का ठहरता है- आभ्यंतर प्रयोग, बाह्य प्रयोग और अपप्रयोग। आभ्यन्तर प्रयोग तो सर्वथा शास्त्र-सम्मत प्रयोग है। बाह्य प्रयोग शास्त्र की सीमाओं और निर्देशों के बाहर आकर, उनसे लेकर किया हुआ प्रयोग है।[2] अपप्रयोग शास्त्र की व्यवस्था को विकृत करके औचित्य के साथ किया जाने वाला प्रयोग है। अपप्रयोग करना आग से खेलना है।[3] भरत के दृष्टिकोण में अपप्रयोगकर्ता क्षन्तव्य नहीं है, पर बाह्य प्रयोग करने वालों के साथ भरत सहानुभूति दिखाते हैं। जिन अभिनेताओं, सूत्रधारों ने नाट्यशास्त्र के किसी आचार्य के पास रहकर विधिवत् शास्त्र का अनुशीलन नहीं किया और जो शास्त्रीय विधान से अपरिचित रहे हैं या शास्त्र बहिष्कृत हैं, वे आचार्य निर्दिष्ट प्रक्रिया के बिना बाह्य प्रयोग करते हैं। भरत यह भी कहते हैं कि बाह्य प्रयोग में शास्त्रीय व्यवस्था टूटे, तो कोई हानि नहीं। भवभूति के विषय में यह तो कदापि नहीं कहा जा सकता कि वे आचार्य की क्रिया के परिचय के बिना नाटक लिख रहे हैं, पर यह कहा जा सकता है कि शास्त्रबाह्य किसी नाट्यपरम्परा से उनका गहरा परिचय है। यह शास्त्रबाह्य परम्परा लोक-परम्परा है, लोक नाट्य की परम्परा है। उपरूपकों के वर्गीकरण और लक्षण के द्वारा

आगे चलकर इस परम्परा का एकांश में मानकीकरण और शास्त्र में व्यवस्थापन हुआ, पर नाट्यशास्त्र के पहले, नाट्यशास्त्र के रचनाकाल में और उसके पश्चात् प्रयोग में तो यह परम्परा बराबर बनी रही है।

भवभूति के संदर्भ में बाह्य प्रयोग या शास्त्रातिवर्ती प्रयोग की बात विशेषतः इसलिए उठती है कि वे ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने बाह्य प्रयोग का प्रत्यक्ष उदाहरण ही नमूने के रूप में नाटक में प्रस्तुत कर दिया है। उत्तररामचरित के अन्तिम अङ्क में प्रयुक्त होने वाला गर्भाङ्क बाह्य प्रयोग है, क्योंकि यह किसी शास्त्रसम्मत नाट्यमण्डप में न किया जाकर वाल्मीकि के आश्रम में खुले परिसर में हो रहा है, और भरत की परिभाषा में प्रेक्षागृह विवर्जित प्रयोग भी बाह्य प्रयोग ही है। अपने नाटक के भीतर होने वाले इस नाटक का प्रयोक्ता भवभूति ने स्वयं भरतमुनि को ही बना दिया है और प्रयोग का उपस्थापन अप्सराओं का दल कर रहा है। यहाँ भवभूति का कटाक्ष और नाट्यप्रयोग को लेकर उनकी स्वयं की दृष्टि भी स्पष्ट ही है। नाटक देखने के लिए कोई □अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्□ यहाँ नहीं है, अपितु ब्रह्मक्षत्र-पौर जनपद प्रजाएँ उपस्थित हैं और वाल्मीकि के आर्ष प्रभाव से तो □सदेवासुरतिर्यङ्निकाय सचराचर भूतग्राम□ ही सन्निधापित कर दिया गया है। इस नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है- भगवान् भूतार्थवादी प्राचेतस स्थावरजंगमात्मक जगत् को आज्ञा देते हैं - 'हमने....यह करुण और अद्भुत रस वाला कुछ (काव्य) रचा है जिसे (देखने के लिए) आप लोग सावधान हो जायें।'

गर्भाङ्क का प्रयोग तो श्रीहर्ष ने भी प्रियदर्शिका में किया है, पर वह बाह्य प्रयोग कदापि नहीं है। भवभूति ने बड़ी कुशल योजना के साथ भरत के प्रस्थान की अपनी समझ और उससे अपनी असहमति दोनों को यहाँ प्रकट कर दिया है। भरत के नाट्यशास्त्र से उसका प्रस्थान भेद है। भरत का ग्रन्थ सूक्ष्म अभिव्यञ्जना प्रधान अभिनय पद्धति का सर्वागीण और परिष्कृत रूप सामने रखता हुआ रंगमञ्च के उस प्रस्थान की समग्र शास्त्रीय प्रविधि को उपस्थापित करता है जिसे हम राजसभा का रंगमञ्च या अभिजात रंगमञ्च कह सकते हैं। इस सारी शास्त्रीय प्रविधि में भरत के रंगदर्शन द्वारा अभिजात रंगपरम्परा का सर्वोत्तम और सबसे समुज्ज्वल उदाहरण कालिदास प्रस्तुत करते हैं। वे भरत के शास्त्र को आत्मसात् करके अपनी प्रतिभा से उसे सर्जनात्मक अभिव्यक्ति देते हैं। भरत के शास्त्र को आत्मसात् भवभूति ने भी किया है, पर उनके घेरे से बाहर आने के लिए किया है। उनकी असहमति अपप्रयोग के लिए नहीं है। वे नाट्यशास्त्र की प्रविधियों के बाहर सक्रिय एक भिन्न प्रकार के रंगमञ्च को अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का माध्यम बनाते हैं।

नाट्यशास्त्र के प्रस्थान के बाहर रहकर दो प्रकार के रंगमञ्च की परम्परा हमारे यहाँ सक्रिय रही हैं, यद्यपि दोनों पर भरत के शास्त्र का प्रभाव और प्रतिफलन भी एक सीमा तक है। एक उपरूपकों की परम्परा है, जिसके प्रवक्ता कोहल है। उपरूपकों का रंगमञ्च, उनकी अभिनय प्रविधि और आस्वाद या भावबोध ही रूपकों ही परम्परा से भिन्न है, दूसरी रंग-परम्परा मन्दिर या देवालय के नाट्यमण्डप में विकसित हुई है। राजशेखर विद्यापति, ज्योतिरीश्वर ठाकुर, शंकरदेव जैसे परवर्ती संस्कृत नाटककारों में तो अत्यन्त सुस्पष्ट रूप से लोकनाट्य या कोहल की नाट्यपरम्परा का गहरा संस्कार और उनका स्वरूप प्रतिफलित है, भवभूति अपने संस्कारों में कोहल या लोकनाट्य परम्परा से साक्षात् उस रूप में नहीं जुड़े, उनका संस्कार मन्दिर या देवालय की रंगशाला का है।

भरत के नाट्यशास्त्र में मन्दिर से जुड़ी रंगशाला उसकी प्रयोग विधियों का न तो पृथक् से विवेचन है और न कोई संकेत ही। जबकि राजा के अन्तःपुर से सम्बद्ध तथा अन्तःपुर में होने वाले नाटक या नाटिकाओं

की उसमें चर्चा विस्तार से है। मन्दिर की रंगशाला का प्रस्थान भेद बहुत साफ है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में नाट्यमण्डप का वर्गीकरण ही भरत के शास्त्र से इसलिए भिन्न है। प्रेक्षागार विष्णुधर्मोत्तरकार की दृष्टि में देवालय का अनिवार्य अंग है। जिसे मन्दिर-परिसर में उत्तर की ओर बनाया जाना चाहिए। देवालय में प्रति संवत्सर देवता की तिथि अथवा पौर्णमासी पर यात्रा महोत्सव का आरम्भ किया जाता था। यात्रा के दूसरे दिन नट, नर्तक, मल्ल, एन्द्रजालिक आदि की प्रेक्षायें खेल आयोजित किए जाते थे। विष्णुधर्मोत्तर ने यात्रा का आयोजन राजा का कर्त्तव्य माना है। यात्रा के उत्सव को देखने के लिए दूर दराज के इलाकों से लोग पहुँचते थे। यात्रा में होने वाले नाटकों का मञ्चन अपार जनसमुदाय के आगे होता था ग्यारहवीं शती में रची गई प्राकृत कथा नम्मयासुन्दरी में ऐसी ही एक यात्रा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसमें इतनी भीड़ हो गई थी मञ्च के सामने के मैदान में तिल धरने की जगह नहीं थी और लोग आसपास के मकानों की छतों पर चढ़कर नाटक देख रहे थे। इस यात्रा में नटों और नर्तकों की कलाओं के प्रदर्शन, रास और चर्चरियों के आयोजन के साथ और भी अनेक प्रकार के खेल दिखाए जाने की चर्चा कथा के लेखक ने की है। भवभूति के नाटक कालप्रियनाथ की यात्रा में खेले गए थे। भवभूति ने उन्हें राज्य सभा में चुनिन्दा पण्डितों या रसिकों की सीमित मण्डली के आगे दिखाने के लिए नहीं लिखा था, यात्रा में समागत असंख्य लोग उन्हें देखेंगे इस बात को ध्यान में रखते हुए मन्दिर की रंगशाला के लिए उन्होंने नाटक लिखे थे। इन नाटकों की रचना प्रक्रिया और संविधान पर मन्दिर की रंग शाला और प्रेक्षकों के विशाल समाज की अभिरुचि की छाप संरचना के स्तर पर गुंथी हुई हैं।

यात्रा महोत्सव के आयोजनों में भवभूति, मुरारि जैसे नाटककारों के रूपकों का भी अभिनय होता था और लोकनाट्यकोटि के रासक, हल्लीसक, चर्चरी आदि का भी। अतएव यात्रा के रंगमञ्च से जुड़े नाटककारों में लोकनाट्य से सम्पर्क उसके साथ अन्तःक्रिया और उससे प्रभावित होने की सम्भावना देखी जा सकती है। इसीलिए मन्दिर की रंगशाला के लिए लिखे गए नाटक राज्य सभा के प्रेक्षागार के लिए लिखे गए नाटकों से अपनी बनावट में अलग है, इस अर्थ में भवभूति के तीनों नाटकों का स्तर कालिदास के तीनों नाटकों से भिन्न है। क्योंकि दोनों महान् नाटककार अलग-अलग प्रकार की रंगशाला को दृष्टि में रखकर नाट्यरचना कर रहे हैं। भवभूति ने कुछ अनोखे प्रयोग अपने रूपकों में किए हैं, जो उनके पहले के उपलब्ध संस्कृत नाटकों में सम्भाव्य नहीं थे। भवभूति के इन विशिष्ट प्रयोगों को लोकनाट्य या यात्रा के रंगमञ्च के आलोक में ही समझा और परिभाषित किया जा सकता है। उत्तररामचरित के प्रस्तावना में सूत्रधार के मुख से एक चौंका देने वाला वाक्य कहलाता गया है - **एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीन्तनश्च संवृतः।** प्रस्तावना में सूत्रधार अभिनेता (अनुकर्ता) के रूप में रहता है। प्रस्तावना की संरचना के भीतर वह नाटक के पात्र (अनुकार्य) में अपना रूपान्तरण प्रेक्षकों को इस तरह सीधे सम्बोधित करके सूचित कर दे यह स्थिति भवभूति के पहले के उपलब्ध नाटकों में दुर्लभ है। अनुकर्ता और अनुकार्य का सहावस्थान अभिजात रंगमञ्च के लिए विजातीय तत्त्व है। जब कि अनुकर्ता और अनुकार्य की मञ्च पर एक साथ उपस्थिति लोकनाट्य परम्परा में एक जानी पहचानी सहज स्थिति रहती हैं। उपरूपकों के अभिनय में भी नट या नर्तक पात्र साक्षात्कार-कल्प अनुभव नहीं देता, वह पात्र से पृथक् अपनी पहचान को प्रस्तुति काल में भी बनाए रखता है। डोम्बिका या डोम्बी (नामक उपरूपक) का उदाहरण देते हुए अभिनवगुप्त ने विस्तार से इस पर चर्चा की है। कुल मिलाकर यही स्थिति भवभूति की इस प्रस्तावना में भी है, वहाँ सूत्रधार और मारिष इदानीन्तन (इस समय का) अभिनेता भी है और उसी समय तदानीन्तन (उस समय का) आयोध्यक या अयोध्यावासी भी। कार्यवशात् पद का प्रयोग भी सूत्रधार के मुख से

साभिप्राय ही कराया गया है। भवभूति इस तथ्य को प्रति सचेत हैं कि उपरूपकों की सहज सम्भाव्य स्थिति को रूपक नाटक के कलेवर के भीतर कदाचित् वे ही पहली बार ला रहे हैं।

□एषोस्मि□ यह वाक्य सूत्रधार ने दर्शकों के प्रति कहा है। वह इस समय और उस समय के बीच अपनी लुकाछिपी के खेल में दर्शकों को भी शामिल करता है। खेल में दर्शको को शामिल किया जाना लोक नाट्य की विधाओं की खास पहचान रही है, जबकि संस्कृत की क्लासिकी नाट्य परम्परा तो रसास्वाद के लिए □उभयदेशकाल त्याग□ की अपेक्षा रखती है। भवभूति उसकी लीक से हट कर लोकनाट्य का भावबोध लेकर संस्कृत नाटक की आस्वादभूमि बदल देते हैं।

लोकनाट्य प्रभाव से आस्वाद की भिन्न दिशा ग्रहण करने के कारण भवभूति के नाटकों की संरचना में भी कुछ विभेद और वैशिष्ट्य आ जुड़ा है। संस्कृत नाट्य परम्परा में एकालाप (सालिलाकी) का ऐसा सघन प्रयोग और किसी नाटककार ने कदाचित् नहीं किया। भवभूति के एकालाप ग्रीक त्रासदी या शेक्सपियर की त्रासदियों के एकालापों के जोड़ हैं। एक अर्थ में वे दर्शकों को सम्बोधित भी प्रतीत होते हैं। लोकनाट्य में जिस प्रकार पात्र भावोद्रेक के क्षणों में गीत गाने लगते हैं अथवा अपने बारे में किसी अन्य पात्र के द्वारा गाए जाए गीत में अपने ही अनुकार्य को अन्य पुरुष बनाकर स्वयं शामिल हो जाते हैं, उसी प्रकार भवभूति के राम, माधव आदि के एकालापों में पात्र इतर पात्रों से बेखबर हो कर अपने में डूब कर अपने को व्यक्त करते-करते, अपने से भी अलग होकर अनुकर्ता और अनुकार्य दोनों को साथ-साथ दर्शकों के आगे उपस्थित करने लगता है। गद्य या पद्य में निबद्ध होते हुए भी एकालाप लोकनाट्य में भावसंकुल स्थिति में उपक्रान्त गीतों की लय और बन्ध लेकर चलते है और उनमें लोकनाट्य के गीतों में ही तरह पात्र अपने ही अनुकार्य का उल्लेख तृतीय या अन्य पुरुष के रूप में करने लगते है, जैसे कि उत्तररामचरित के पहले अंक में राम लम्बे एकालाप के अन्त में- **हन्त, हन्त सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य।**

अथवा-

दुःखसंवदेनायैव रामे चैतन्यमागतम्। मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायित हृदि।

हा अम्ब अरुन्धति परिमुषिताः स्थ, परिभूताः स्थ रामहतकेन।

उत्तररामचरित की अपेक्षा कुछ और अधिक चौंकाने वाले ढंग से मालतीमाधव में सूत्रधार कहता है कि यह मैं कामन्दकी बन गया और पारिपार्श्विक तुरन्त कहता है कि मैं भी अवलोकिता बन गया हूँ। दोनों के इन संवादों के साथ प्रस्तावना समाप्त हो जाती है और उसके यह रंगनिर्देश हैं- **ततः परिवर्त्य रक्तपट्टिकानेपथ्ये कामन्दक्यवलोकिते प्रविशतः।** सूत्रधार और नट के प्रस्तावना के अन्त में निर्गमन और फिर कामन्दकी और अवलोकिता के रूप में उनके पुनः प्रवेश के बीच कोई व्यवधान नहीं है। सूत्रधार और पारिपार्श्विक मंच पर ही परिक्रमा करते हैं और भगवा चोगे ओढ़ कर तत्काल नाटक के पात्र बन जाते हैं। लोकनाट्य के मञ्च पर रंगमंचीय दिक्काल की जिस तरह रचना होती है, उसमें नट के द्वारा पात्र का वेष धारण कर लेना या वेष उतार कर फिर अभिनेता के रूप में मंच पर प्रस्तुत हो जाना बिना किसी व्यवधान के किया जा सकता है। भवभूति ने भी इसे सहजता से अपना लिया है।

यह प्रक्रिया केवल प्रस्तावना तक ही सीमित नहीं है। प्रकरण के कलेवर के भीतर भी भवभूति की कामन्दकी अपने सूत्र्धार रूप के प्रति सचेत है। नाटक में कामन्दकी द्विविध अर्थ में सूत्रधार है - कथानक में अपनी प्रवर्तक भूमिका के कारण भी यह सूत्रधार है और नाट्यदल का सूत्रधार कामन्दकी की भूमिका कर रहा है - इस दृष्टि से भी वह सूत्रधार है। कामन्दकी के अनेक संवाद अनुकर्ता सूत्रधार की दृष्टि से भी बोले गए हैं।

जानबूझकर भवभूति कामन्दकी की दो सहवर्ती भूमिकाओं को ध्यान में रखकर ऐसे संवादों को द्व्यर्थक बना कर प्रस्तुत करते हैं। विशेषतः दसवें अंक में लवंगिका, कामन्दकी, सौदामिनी आदि के संवाद इसी दृष्टि से उपनिबद्ध लगते हैं-

लव. - को वास्मिन् सम्पूरितसर्वप्रकारमहोत्सवे न परिहासपूर्णो भवति?

काम. - एवमेतत्, अस्ति वा कुतश्चिदेवम्भूतमद्भुतं विचित्ररमणीयोज्ज्वलं प्रकरणम्?

सौदा. - इदमत्र रमणीयतरं, यदमात्ययोर्भूरिवसुदेवरातयोश्चिरात् पूर्णोऽयमितरेतरापत्यसम्बन्धात्मा मनोरथः।

लवं. - सब प्रकार से सम्पूर्ण इस महोत्सव में भला कौन परिहासपूर्ण न होगा?

काम. - ऐसा ही है। क्या इससे अधिक विचित्र, रमणीय और उज्ज्वल प्करण और कोई होगा?

सौदा. - इसमें यह और भी रमणीय है कि अमात्य भूरिवसु और देवराज इन दों की एक दूसरे का सम्बन्धी बनने की बहुत पुरानी साध पूरी हुई।)

उत्तररामचरित में राम के अनेक संवादों की भी अन्तरिक संरचना इसी प्रकार की लगती है। छठे अंक में कुश लव के द्वारा राम के सम्मुख रामायण के पात्रों का प्रस्तुतीकरण लोकनाट्यविधा से भवभूति के नैकट्य और उसके अभिप्रायों के ग्रहण के द्वारा नाटक में भावबोधसंकुल पर्यावरण निर्माण कर सकने की अनकी प्रतिभा को उजागर करता है। इसके साथ ही सूत्रधार और मारिष के द्वारा कामन्दकी तथा अवलोकिता भूमिका में अवतरण विरूपा भूमिका का उदाहरण प्रस्तुत करता है। अभिजात रंगमञ्च में अनुरूप भूमिकाओं का प्रयोग अधिक रहा है। विरूपा भूमिकाएं लोक रंगमञ्च पर फबती है। लोकनाट्य की इस विशेषता की पहचान के कारण ही भवभूति अपने प्रकरण के भीतर भी मकरन्द को स्त्रीवेश में-मालती की भूमिका में उतार देते हैं।

उपर्युक्त एकालापों, दर्शकों को सीधे संबोध्य द्व्यर्थक संवादों आदि के अतिरिक्त भवभूति की संवादयोजना में अनेक ऐसी दुर्लभ विशेषताएँ हैं, जो लोकनाट्य परम्परा से संग्रहीत प्रतीत होती है। अपने नाटकों में कई स्थलों पर दो अलग-अलग पात्रों के मुख से एक ही संवाद विशेषतः पूरा का पूरा पद्य में एक समय में एक साथ प्रस्तुत करते हैं, जबकि दोनों पात्रों के सम्बोध्य विषय अलग-अलग हैं। उत्तररामचरित में वासन्ती राम के लिए और तमसा सीता के लिए निम्नलिखित पद्य साथ-साथ बोलती है --

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता,
स च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ- स्तव वितरतु भद्रं भूयसे मङ्गलाय।। उत्तररामचरित, 3/48

तमसा और वासन्ती -(सीता और राम के प्रति) -

यह धरती, गंगा, साथ हमारे जैसों के
वे कुलपति, प्रथम छन्द को रचने वाले
वे मुनि वसिष्ठ, जिनके पीछे अरुधन्ती रहती है
करें कल्याणो की वर्षा तुम पर
प्रचुर मंगल के लिये ।

यह लोकनाट्य में प्रयुक्त सहगायन की स्थिति को निर्मित करता है। इस प्रकार के प्रयोग भवभूति ने बार-बार किए हैं जो अन्य संस्कृत नाटकों में नहीं मिलते। मालतीमाधव के पाचवें के अंक में माधव और अघोरघण्ट क्रमशः मालती और कपालकुण्डला को सम्बोधित एक ही पद्य को एक साथ बोलते हैं और आगे चलकर तो परस्पर एक दूसरे के सम्बोधित एक ही पद्य वे एक साथ एक से दूसरे कह देते हैं (5/32, 34)।

महावीरचरित में तीसरे अंक का पहला संवाद वसिष्ठ और विश्वामित्र दोनों एक साथ जामदग्न्य से बोलते हैं, आगे चलकर (3/39) जनक, दशरथ और विश्वामित्र तीनों मिलकर एक साथ एक पद्य जामदग्न्य के प्रति कहते हैं। संवाद की यह शैली लोकनाट्य के समूहगायन के सन्देश स्थिति को ही निर्मित करती है।

भवभूति के इस प्रकार के संवादों की तुलना शाकुन्तल आदि में अनुसूया और प्रियवंदा दोनों के द्वारा एक साथ कहे गऐ- **'अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः'** जैसे वाक्यों से नहीं की जा सकती। वहाँ रंगमञ्च के यथार्थ ने वस्तु जगत् के यथार्थ का उस प्रकार लोप नहीं किया है जैसा यहाँ। एक पूरा का पूरा संवाद दो परस्पर विरोधी दृष्टि वाले पात्रों के मुख से अलग-अलग लक्ष्य के प्रति एक साथ कहलाया जाये वह संयोग नाटक या मञ्च का यथार्थ हो सकता है और लोकनाट्य के मञ्च का संस्कार जिन्हें प्राप्त है वे ही ऐसा प्रयोग कर और समझ सकते हैं। उस संस्कार से वंचित समीक्षकों ने भवभूति को आड़े हाथों से भी ऐसे प्रयोगों के कारण लिया है।

वस्तुतः भवभूति के नाटक का अभिनेता कहीं पात्र से एकाकार होता है, कहीं पात्र से अलग होकर नाटककार की दृष्टि या उसी पात्र की स्थिति की व्याख्या करने लगता है, जिसका अभिनय वह कर रहा है। उत्तररामचरित के तीसरे अंक में तमसा के संवाद **'अहो संविधानकम्'** और उसके पश्चात् आए पद्य- **'एको रसः करुण एव'** में संवाद की अदायगी इसी प्रकार है। आंकिया नाट या हरिकथा के मञ्च के लिए लिखे गए बाद में संस्कृत नाटकों में तो सूत्रधार, सूत्रधार के रूप में ही मञ्च पर लगातार उपस्थित रहकर नाटक के अभिनीयमान प्रसंग की दर्शकों के आगे व्याख्या करता चलता है। भवभूति सूत्रधार को प्रत्यक्ष नाटक के भीतर न लाकर प्रकारान्तर से लाते हैं। पर पात्र के अनुकर्ता और अनुकार्य इन दो रूपों के बीच पार्थक्य का संकेत वे देते चलते हैं जो लोकनाट्य की विशेष पहचान है।

संवादों की संप्रेषणीयता की दृष्टि से ही नहीं, रंगसंकेतों की दृष्टि से भी भवभूति के रूपक अपने रंगमञ्च के लिए एक भिन्न प्रविधि की मांग करते हैं। कालिदास अपने रंगसंकेतों में आंगिक अभिनय की एक परिष्कृत अभिव्यंजना प्रधानरीति का सुस्पष्ट निर्देश करते हैं। कहीं-कहीं तो नाट्यशास्त्र सम्मत हस्त या करण का स्वयं निर्देश भी वे दे देते हैं। जहाँ आंगिक अभिनय की विशेष मुद्रा का नामतः संकेत नहीं है, वहाँ भी रूपयति, अभिनयति या अभिनीय, नाटयति जैसे रंगसंकेतों के द्वारा आंगिक अभिनय की शैलीबद्धता निर्दिष्ट है। कालिदास में इस प्रकार के रंगसंकेतों की भरमार है। जबकि भवभूति नाटयति, अभिनयति जैसे रंगसंकेतों का बहुत ही कम प्रयोग करते है। उनका रंगमञ्च आंगिक शैलीबद्धता पर इतना निर्भर नहीं है, आंगिक व्यापार का वहाँ प्राचुर्य है, पर यह व्यापार शास्त्रीय मुद्राओं की अपेक्षा वस्तुपरक लौकिक चेष्टाओं या प्राकृत शारीरिक क्रियाओं पर अधिक निर्भर है। इस अर्थ में भी भवभूति लोकधर्मी रंगमञ्च या लोकनाट्य के रंगमञ्च का अनुवर्तन करते हैं। कालिदास जिस तरह आंगिक की संकेतात्मक मुद्राओं का एक सम्पन्न रंगमञ्च खड़ा करते हैं, भवभूति उसी तरह वाचिक और सात्त्विक, अभिनय की सूक्ष्म प्रविधि के प्रचुर संकेत देते चलते हैं। उनके एक टीकाकार जगद्धर ने मालतीमाधव में वाचिक रस को सर्वातिशायी बताया है।

भवभूति आंगिक की शास्त्रीय शैलीबद्धता से सुपरिचित हैं, पर लोकमञ्च से जुड़कर जानबूझ कर ही वे इस शैलीबद्धता को तोड़ते हैं। कालिदास के सुसबद्ध और शास्त्रसम्मत रंगसंकेतों की तुलना में इनके रंग संकेत अटपटे भी लग सकते हैं, पर अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से शैलीबद्धता को तोड़कर भवभूति अप्रतिम रंगसृष्टि करते हैं, उसे उनके समय के वे सूत्रधार और अभिनेता ही निभा सकते थे, जो मन्दिर या यात्रा के

रंगमञ्च की सहज पर सात्विक अभिनय को निकष बनाकर चलने वाली प्रयोग पद्धति में दीक्षित रहे होंगे।

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में अतिशय ग्लानि, अनुताप और अन्तर्द्वन्द्व के दुर्वार आवेग में राम पलंग पर सोयी सीता को प्रणाम करने के लिए झुकते हैं, जब उनके लिए रंगसंकेत है-

सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा

पलंग पर सोई सीता के दोनों चरण ही उठाकर राम अपने मस्तक के ऊपर रख लेते हैं। प्रणाम की यह कोई शास्त्रीय पद्धति नहीं है, न ही यह वह नाट्यधर्मी रीति है, जिसके द्वारा कालिदास के तीनों रूपकों में नायक नायिकाओं को प्रणाम करते हैं। पर करुणा और आत्मप्रतारणा की जो उद्दाम स्रोतस्विनी राम के इस अशास्त्रीय प्रणाम से उत्तररामचरित के प्रसंग में बह उठी है, उसकी स्वल्प भी ऊर्मि और ऊर्जा अभिजात रंगमञ्च के अभिजात नायक के प्रणति निवेदन में नहीं है। भवभूति की दुर्वार भावाकुलता अभिजात और भरतसम्मत रंगविधि में अँट भी नहीं सकती थी, इसलिए उन्होंने ठीक ही लोकनाट्य से जुड़े मन्दिर की यात्रा के मञ्च का आश्रय लिया और उसकी प्रयोगविधि को भी अपने नाटक की सर्जनाप्रक्रिया में दृष्टि में रखा।

अपने रूपकों के अभिनय में नृत्यात्मक आंगिक विन्यास, अंगलास्य तथा आंगिक अभिनय के हस्त, वक्षस् कटि अंगों की लयबद्ध गतियों के उपयोग का निषेध भवभूति स्वयं अपने रंगसकेतों में करते हैं। महावीरचरित में परशुराम से मुठभेड़ के लिए प्रस्थित होते राम को रोकने के लिए सीता उनका धनुष ही छुड़ाने लगती हैं और फिर कहती हैं कि (नहीं रुकते तो) बलपूर्वक रोक लूंगी। बलपूर्वक रोके गए राम वीरभसोत्फाल और वैदेहीपरिरम्भ दोनों का एक साथ अनुभव करते हैं। नाट्यधर्मी आंगिक विन्यास के साथ इस दृश्य को दिखाने का कदाचित् उस उत्फाल ओर आवेग की प्रतीति नहीं हो सकेगी जिसे भवभूति प्रदर्शित करना चाहते हैं।

अभिनय पद्धति की दृष्टि से भवभूति के अनेक प्रवर्तक प्रयोग जो आज अटपटे समझे जाते हैं, और जिनके कारण मञ्चन की भरपूर सम्भावनाओं से युक्त होते हुए भी उनके नाटक अनाटकीय कह दिए जाते हैं, लोकनाट्य और उपरूपकों की परम्परा के संदर्भ में समझने पर कदाचित् बोधगम्य और सहज प्रतीत हो सकते हैं। भवभूति अपने नाटकों में कई बार कुछ विशेष वाक्यांशों, पद्यांशों या पद्यों की पुनरावृत्ति अलग-अलग स्थलों पर करते हैं। जिनके कारण उनके मत्थे दोहराव का दोष मढ़ा जाता है। डे जैसे आलोचक तो यह भी कहते हैं कि भवभूति के पास पहले रच लिया काव्यात्मक पद्यों का एक तैयार स्टाक था, जिसमें वे पद्य उठाकर वे अपने रूपकों में आवश्यकतानुसार जहाँ तहाँ चस्पा कर देते थे। पद्यों या पद्याशों का स्थल-स्थल पर दोहराव रामलीला या रासलीला जैसे लोकपरम्परा के नाट्य की संरचनागत आवश्यकता रही है और भवभूति **'ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा'** जैसे पद्यों को महावीरचरित और उत्तररामचरित में दोहराते हैं, तो यह लीला-कोटि के रूपक की संरचनागत आवश्यकता की पूर्ति के लिए है।

अभिनय पद्धति के दृष्टि से आचार्यों के द्वारा वाक्यार्थाभिनय को रूपकपरम्परा की और पदार्थाभिनय को उपरूपक परम्परा की विशेषता बताया जाता है। पदार्थाभिनय एक व्याख्यात्मक अभिनयपद्धति है, जिसमें संवाद या वाचिक के पाठ के पश्चात् उसके अलग-अलग पदों पर अभिनय किया जाता है। उसमें एक ही संवाद में वाचिक और आंगिक पृथक्-पृथक् अभिनीत होते हैं। लोकनाट्य परम्परा में पदार्थाभिनय की पद्धति का उपयोग होता रहता है, अभिजात नाट्य परम्परा में नहीं। कूडियाट्टम् के रंगमञ्च पर लम्बे और दुरूह संवादों का भी अभिनय में निर्वाह इसके द्वारा संभव हो जाता है। क्या भवभूति अपने नाटकों में वाक्यार्थाभिनय के स्थान पर पदार्थाभिनय की पद्धति पर बल देते है? क्या लोकनाट्य या लीलानाटकों से नैकट्यके कारण ही उनके

नाटकों को वाचिक रस का नाटक कहा गया हैं? ये विचारणीय प्रश्न हैं। एक स्थान पर तो भवभूति सुस्पष्ट रूप में पदार्थाभिनय की पद्धति के अपनाने का संकेत प्रस्तुत करते हैं। मालतीमाधव के पंचम अंक में कापालिकद्वय चामुण्डा की स्तुति करते हैं स्तुति पाठ के पश्चात् वहाँ इत्यभिनयतः यह रंगसंकेत दिया गया है। अतएव पाठ के पश्चात् कापलिकद्वय चामुण्डा की स्तुति का पदार्थाभिनय करते हैं -- यही नाटककार का आशय समझा जाना चाहिए। शार्दूलविक्रीडित और दण्डक छन्दों में कराला की जो स्तुति है, वह भी पदार्थाभिनय की अपेक्षा रखती है। जगद्धर ने तो पहले पद्य (5,22) की टीका में निशुम्भ करण की प्रस्तुति सूचित की ही है, 23 वें पद्य में दण्डक छन्द की जो रचना है, उसकी प्रस्तुति भी करणों और अङ्गहारों की अपेक्षा करती है और करण और अगहारों का निर्वाह पाठ में समवेत करके नहीं, पाठ के पश्चात् पदार्थाभिनय के साथ ही हो सकता है।

भवभूति के नाट्यशास्त्र के अभिजात रंगमञ्च की परम्परा को तोड़कर दूसरी परम्परा से जुड़ेते हैं, पर इस परम्परा के प्रभाव से भी आक्रांत नहीं होते हैं, न ही उसके अभिप्रायों को अपने रूपकों में थोपते हैं। प्रतिभा की सामर्थ्य से, एक अर्थ में, वे दोनों परम्पराओं को अतिक्रान्त कर जाते हैं।

सन्दर्भ -

1. नाट्यशास्त्र, 20/80 - *अनाचार्योषितायेचयेचशास्त्रबहिष्कृताः।*
बाह्यंप्रयुञ्जतेतेतुअज्ञात्वाचार्यकींक्रियाम्।।

2. नाट्यशास्त्र, 22/75-78 *अनुद्धतमसंभ्रान्तमनाविद्धाङ्गचेष्टितम्।*
लयतालकलापातप्रमाणनियतात्मकम्।।
सुविभक्तपदालापमनिष्ठुरमकाहलम्।
यदी–शंभवेन्नाट्यंज्ञेयमाभ्यन्तरंतुतत्।।।
एतदेवविपर्यस्तंस्वच्छन्दगतिचेष्टितम्।
अनिबद्धगीतवाद्यंनाट्यंबाह्यमितिस्मृतम्।।
लक्षणाभ्यन्तरत्वाद्धितदाभ्यन्तरमिष्यते।
शास्त्रबाह्यंभवेद्यत्तुतद्बाह्यमितिभण्यते।।

3. नाट्यशास्त्र, 3/99 *नतथाप्रदहत्यग्निःप्रभञ्जनसमीरितः।*
यथाह्यपप्रयोगस्तुप्रयुक्तोदहतिक्षणात।।नाशा., 3.99।।

5

संस्कृत वाङ्मय में महाकवि भवभूति का अवदान

चन्द्रकिशोर शास्त्री

भवभूति संस्कृत के महान् कवि एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उनके नाटक, कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। संस्कृत साहित्य में महान दार्शनिक और नाटककार होने के नाते ये अद्वितीय हैं। पांडित्य और विदग्धता का यह अनुपम योग संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है। शंकरदिखिजय से ज्ञात होता है कि उम्बेक मंडन, सुरेश्वर एक ही व्यक्ति के नाम थे। भवभूति का एक नाम उम्बेक प्राप्त होता है अतः नाटककार भवभूति, मीमांसक उम्बेक और अद्वैतमत में दीक्षित सुरेश्वराचार्य एक ही है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। राजतरंगिणी के उल्लेख से इनका समय एक प्रकार से निश्चित सा है। ये कान्य-कुब्ज के नरेश यशोवर्मन के सभापण्डित थे, जिन्हें ललितादित्य ने पराजित किया था। 'गउडवहो' के रचनाकार वाक्यपतिराज भी उसी दरबार में थे। अतः इनका समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। भवभूति पद्मपुर में एक देशस्य ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। पद्मपुर महाराष्ट्र के गोंदिया जिले में महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित है। अपने बारे में संस्कृत कवियों का मौन एक परम्परा बन चुका है, पर भवभूति ने इस परम्परागत मौन को तोड़ा है और अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में अपना परिचय प्रस्तुत किया है। 'महावीरचरित' का यह उल्लेख-

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुर नाम नगरम्। तत्र केचितैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पंचाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पंचमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलांछनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्रः।[1]

इस उल्लेख के अनुसार दक्षिणापथ में पद्मपुर नाम का नगर है। वहाँ कुछ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण रहते हैं, जो तैत्तिरीय शाखा से जुड़े हैं और जो काश्यप गोत्रीय हैं। अपनी शाखा में श्रेष्ठ, पंक्तिवान, पंचारिन के उपासक, व्रती, सोमयाज्ञिक हैं। सर्व उडुम्बर उपाधि धारण करते हैं। इसी वंश में वाजपेय यज्ञ करने वाले प्रसिद्ध महाकवि हुए। उसी परम्परा में पाँचवे भवभूति हैं, जो स्वनाम धन्य भट्टगोपाल के पौत्र और पवित्र कीर्ति वाले नीलकण्ठ के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम जातुकर्णी है और ये श्रीकण्ठ पदवी प्राप्त, पद, वाक्य और प्रमाण के ज्ञाता हैं।

'श्रीकण्ठ पदलांछनः भवभूतिर्नाम'इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि श्रीकण्ठ कवि की उपाधि थी और भवभूति नाम था। किन्तु कुछ टीकाकारों का यह विश्वास है कि कवि का नाम नीलकण्ठ था और भवभूति उपाधि थी, जो उन्हें कुछ विशेष पदों की रचना की प्रशंसा में मिली थी। भवभूति द्वारा रचित तीन नाटक प्राप्त होते हैं- 1. महावीरचरितम् 2. मालतीमाधव 3. उत्तररामचरितम्

भवभूति कृत ग्रन्थों में तीन ही रूपक पाये जाते हैं- महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित। इनमें क्रमशः वीर, शृङ्गार तथा करुण रस की प्रधानता है। इन तीन नाटकों के अतिरिक्त भी भवभूति का बनाया कोई ग्रन्थ अवश्य होगा, क्योंकि शार्ङ्गधर पद्धति आदि संग्रह ग्रन्थों में कई श्लोक भवभूति के नाम से उद्धृत हैं। परन्तु वे श्लोक इन तीनों रूपकों में नहीं पाये जाते हैं, यथाः-

'निरवद्यानि पद्यानि यदि नाट्यस्य का क्षतिः। भिक्षुकक्षाविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत्' ।।[2]

यह श्लोक उक्त नाटकों में नहीं पाया जाता है और शार्ङ्गधर पद्धति में भवभूति के नाम से 'उद्धृत है।

रसपुष्टि तथा वर्णन-चातुर्य के तारतम्य से विद्वानों का अनुमान है कि महावीरचरित भवभूति की प्रथम कृति है। तदनन्तर मालतीमाधव, फिर उत्तररामचरित लिखा गया है। यह बात निःसन्देह मानने योग्य तथा युक्तिसंगत है। यथार्थ में इन रूपकों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता बढ़ती गई है, इनमें अभ्यासदार्ढ्य देखा जाता है। मालतीमाधव का श्मशान वर्णन तथा कपालकुण्डला के द्वारा मालती का हरण आदि बातें ऐसी हैं जो नाटक की दृष्टि से आंखों में खटकती हैं। परन्तु वर्णन तथा विप्रलम्भ रस का पाक इतना उत्कृष्ट हो गया है कि उनसे हृदय में आनंद की धारा प्रवाहित हो उठती है। ''काव्येषु नाटकं रम्यम्'', अर्थात् सभी काव्यों में नाटक सर्वाधिक रमणीय है, जैसे कि नाट्यशास्त्र में कहा गया है- **न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला। नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।।**

किसी भी नाटक को वास्तविक स्वरूप में समझने के लिए आवश्यक है कि मूल तत्त्व को ठीक से समझ लिया जाए। नाट्यशास्त्र के मूल तत्त्वों का विस्तृत वर्णन धनंजय कृत ''दशरूपक'' और विश्वनाथ कृत ''साहित्य दर्पण'' में मिलता है।

महावीरचरित

महावीर चरित नाटक का कथानक सात अंकों में विभाजित है। इसमें राम के जीवन के पूर्वभाग की कथा है। राम इस नाटक के नायक हैं और रावण प्रतिनायक है। राम यहाँ धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत हैं। अतः नाटक में राम सर्वत्र दोषमुक्त हैं। यहाँ रावण सीता स्वयंवर से ही राम का प्रतिद्वन्द्वी है, परशुराम भी रावण द्वारा ही राम के लिए क्रोधित किए गए हैं, माल्यवान् द्वारा उत्तेजित किया गया बाली स्वयं राम से लड़ने आता है, इस प्रकार राम की मर्यादा भी बनी रहती है और कथा की स्वाभाविकता भी। रामायण के कथानक पर भवभूति की कल्पना अपना पूरा दबाव बनाए हुए है। कथा परिवर्तित होते हुए भी स्वाभाविक, रोचक तथा रसदोष आदि से युक्त है। इसमें रामविवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा निबद्ध की गयी है। कवि ने कथा में कई काल्पनिक परिवर्तन किए हैं, जिनसे चिरपरिचित रामकथा में रोचकता आ गई है। यह वीर रस प्रधान नाटक है। महर्षियों में अंगिरा की तरह परमहंसों में प्रधान यथार्थनामा ज्ञाननिधि जिस कवि के गुरु थे। उन्होंने वीर तथा अद्भुत रस प्रिय होने के कारण धर्मद्वेषियों के शत्रु रघुनन्दन का यह चरित्र लिखा है, जिसमें जगत्त्रय के दुःख का उद्धार वर्णित है और जो वीरता, साहस आदि के वर्णनों से पूर्ण तथा अद्भुत है -

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथाङ्गिराः। यार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः।।
तेनेदमुदधृत्य जगत्त्रयमन्युमूलमस्तोकवीरगुरुसाहसमद्भुतं च।
वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरितं निबद्धम्।।[3]

मालतीमाधव

मालतीमाधव 10 अंकों का प्रकरण है, जिसमें मालती और माधव की कल्पना प्रसूत प्रेमकथा है। युवावस्था के उन्मादक प्रेम का इसमें उत्कृष्ट वर्णन है। इसमें स्थान स्थान पर प्रकृति का विशेष वर्णन चित्र

प्राप्त होता है। मालती माधव में विदर्भ के राजमन्त्री देवरात के पुत्रमाधव और पद्मावती के राजमन्त्री भूरिवसु की कन्या मालती के विवाह की कथा है। कथा काल्पनिक, मनोरंजक और कौतूहलवर्धक है। कथा में श्रृंगाररस की प्रधानता है, अतएव मालतीमाधव साहित्यशास्त्र की दृष्टि से प्रकरण श्रेणी में आता है। मालतीमाधव का कथानक वृहत्कथा मंजरी तथा कथा सरित्सागर से पूर्णतया प्रभावित दिखाई देता है, किन्तु भवभूति की प्रतिभा इसे विशेष नाट्य कला कौशल से भरपूर करने में सक्षम रही है। महाकुलीन ऐश्वर्य सम्पन्न ब्राह्मणों ने जिन गुणों को बतलाया है,उनका निर्देशन करते हैं कि- शृंगारादि रसों की प्रचुरता से गम्भीर अभिनय,सौहार्द से नायक और उनके मित्रादिकों की मनोहर चेष्टाएं, काम प्रयोग के विधान से नायक का वीर, बीभत्स, अद्भुत और रौद्र रस का अवलम्बत्व, अद्भुत रस को उत्पन्न करने वाली कलाएं और वचन में चतुरता ये इतने गुण हैं-

भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि।
औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं चित्रः कथा वाचि विदग्धता च।।[4]

उत्तररामचरित

उत्तररामचरित नाटक संस्कृत साहित्य में करुण रस की मार्मिक अभिव्यंजना में यह सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमें सात अंकों में राम के उत्तर जीवन को जो अभिषेक के बाद आरंभ होता है चित्रित किया गया है, जिसमें सीतानिर्वासन की कथा मुख्य है। अंतर यह है कि रामायण में जहाँ इस कथा का पर्यवसान (सीता का अंतर्धान) शोकपूर्ण है। वहाँ इस नाटक की समाप्ति राम सीता के सुखद मिलन से की गई है।

उत्तररामचरित नाटक की कथावस्तु सात अंकों में विभक्त है। इसमें राम के जीवन का उत्तरचरित्र चित्रित है। प्रथम अंक चित्रदर्शन से ही सीताजी गंगा दर्शन की इच्छा व्यक्त करती हैं। उधर दुर्मुख नामक गुप्तचर, सीता के लंका में रहने के विषय को लेकर फैले लोकापवाद की सूचना राम को देता है। तभी अरुन्धती और कौशाल्यादि का राम को संदेश है कि सीता जो चाहती हो उसे पूरा किया जाय। गुरु वसिष्ठ का आदेश है कि यश सर्वोपरि है, प्रजानुरंजन को प्राथमिकता दी जाए। इस प्रकार गुप्तचर की सूचना, गुरुजनों के संदेश और आदेशों से, सीता को दोहद पूर्ति के बहाने सीता के परित्याग का, राम मन बना चुके हैं और अत्यन्त नाटकीय ढंग से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आते हैं। दूसरे अंक में सीता के परित्याग के 12 वर्ष बाद का घटनाक्रम चित्रित है। आत्रेयी और वासंती वनदेवियों का वार्तालाप राम के अश्वमेघ यज्ञ की सूचना देता है। इसी अंक में राम शूद्र तपस्वी शंबूक का वध करते हैं।

तृतीय अंक की कथा तमसा, मुरला और गोदावरी नदियों के संवाद से ही पुष्ट होती है, गोदावरी के मुख से राम के पंचवटी आगमन की सूचना मिलती है और तभी तमसा के मुख से सीता को लक्ष्मण द्वारा वाल्मीकि आश्रम पहुंचाने के बाद के 12 वर्ष तक के मुख्य घटनाक्रमों का विवरण मिलता है। गंगाजी भी राम के आने की संभावना सुनकर अपने पास रखी सीता को लेकर गोदावरी के पास पहुंची है, वहीं अदृश्य रूप में सीता, राम और वासन्ती का वार्तालाप सुनती है और राम के प्रति सीता के मन का क्षोभ दूर होता है। इसी अंक में राम अश्वमेघ यज्ञ के लिए अयोध्या लौटते हैं और सीता गंगा के पास लौट आती है। चतुर्थ अंक में जनक कौशल्यादि का वाल्मीकि आश्रम आगमन, राम के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का आश्रम में प्रवेश, लव द्वारा घोड़ा रुकवाने पर रक्षकों और लव के बीच युद्ध की तैयारी का वर्णन है। पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु का युद्ध। छठे अंक में राम के वहां पहुंचने से उनके युद्ध में विराम होता है, राम को लवकुश के विषय में अपनी सन्तान होने का सन्देह होता है। सातवें अंक में आश्रम में नाटक का अभिनय होता है, जिसे देखने के लिए अन्य लोगों के साथ-साथ राम और लक्ष्मण भी उपस्थित हैं। नाटक में लव-कुश की उत्पत्ति, सीता का पाताल प्रवेश आदि

की सम्पूर्ण कथा को अभिनीत किया जाता है, तभी अरुन्धती उपस्थित दर्शकों के सामने राम के आगे सीता को स्वीकार करने का प्रस्ताव रखती है। इस प्रकार राम, सीता तथा कुश-लव का मिलन होता है।

उत्तररामचरित का वैशिष्ट्य- संस्कृत साहित्य के इतिहास में अनेक ऐसे नाटकों की रचना हुई है, जिनकी कथावस्तु रामायण अथवा राम के जीवन से संबंद्ध रही है, किन्तु भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' नाटक में चित्रित राम के उत्तर-जीवन का चरित्र अनूठा ही है। इस नाटक में भवभूति का नाट्यकला का प्रत्येक पक्ष अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। उसकी रसयोजना, शैली तथा नाट्यकला का संगम प्रशंसनीय है।

रस- उत्तररामचरित में करुण रस ही प्रधान रस है। नाटक में यत्र-तत्र सर्वत्र मर्मस्पर्शी वर्णन देखने को मिलते हैं। तृतीयाङ्क में तो करुण रस पराकाष्ठा को पहुँच गया है। तृत्तीय अंक का पहला श्लोक....... **''पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करूणो रसः''।**[5] तथा अन्तिमश्लोक.....**''एको रसः करूण एव निमित्तभेदात्''।**[6] श्लोक भवभूति की ओर से भी करुण रस के प्राधान्य के स्पष्ट निर्देश रूप हैं। तृतीय अंक में ही राम का कारुणिक विलाप दीर्घ उच्छ्वास तथा मोहागम आदि, सहृदयों के मन को भी करुणा से भर देता है। यहीं सीता राम की कारुणिकी दशा देखकर, अपनी सुवर्णमयी मूर्ति की बात जानकर, करुणा से द्रवित होकर, पुनः रामाभिमुख हो जाती है।

कुछ आलोचक यहां 'करुण विप्रलम्भ' रस होने की बात कहते हैं। क्योंकि यहां वियोग के बाद अन्त में राम-सीता का संयोग है। किन्तु राम-सीता की अन्तर्वेदना स्थायी रूप धारण कर चुकी है। लोकानुरंजन ही राम का उद्देश्य है, जिससे उभयपक्ष की मनःस्थिति करुणा से ही भरपूर रहती है।

भाषा और शैली के प्रयोग में इनकी विचक्षणता अद्वितीय है। सरल और क्लिष्ट, समास-संकुल, गाढ-बंध और समास रहित दोनों प्रकार की शैलियों का इन्होंने उत्कृष्ट प्रयोग किया है-कहीं, मधुर पदावली और कहीं विकट गाढ़बन्ध। साथ ही उनकी भाषा अवसर और व्यक्ति की अनुरूप होती है। उनकी शैली मे वाच्यार्थ की प्रधानता है, किंतु व्यर्थ का वागाडंबर नहीं। प्रकृति के घोर और प्रचंड रूप की ओर कवि का ध्यान अधिक है। साथ ही उपमार्थ के अनुरूप ध्वनि उत्पन्न करने में कवि का नैपुण्य पदे-पदे व्यंजित होता है। यह एक नाटक ही कवि की प्रतिभा और पांडित्य की अभिव्यक्ति के लिए अलं है। उन्होंने कहा है- एको रसः करुण एव' (करुणरस ही एकमात्र रस है)। इस नाटक में अनेक रसों का रूप धारण करके करुण रस सहृदयों के हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है। अपने नाटक में प्रेम के जिस उच्च और आदर्श रूप की कवि ने प्रतिष्ठा की है वह अवस्था के साथ ढलता नहीं और भी पूर्ण तथा उदात्त रूप प्राप्त करता है। संभवतः यही कारण है कि कवि ने नारी के प्राकृतिक सौंदर्य के वर्णन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है और उसके अंत में सौंदर्य को ही उद्घाटित किया है। प्रेम की इस पवित्रता के साथ विश्वास की महिमा हृदय की महत्ता, भाषा की गंभीरता और भावों के तरंगायितक्रीडाविलास में यह नाटक साहित्य में ''एको रसः करुण एव'' के समान एक ही है। पांडित्य और प्रतिभा के धनी भवभूति के नाटकों में शास्त्रों का व्यापक ज्ञान, भाषा की प्रौढ़ता, भाव की गरिमा और निरीक्षण की सूक्ष्मता के कारण सरसता के स्थान पर गांभीर्य और उदात्तता विशेष प्राप्त होती है। संभवतः इन कारणों से उस समय कवि की रचनाएं अधिक लोकप्रिय न हो सकीं और उनके नाटकों का उस समय किसी राजसभा में अभिनय नहीं हो सका। उज्जयिनी में एक अवसर पर एकत्र पुरवासियों के समक्ष भी उनके नाटकों का अभिनय हुआ और तदन्तर वे यशोवर्मा के राज्य में समादृत हुए। मालतीमाधव के प्रथम अंक में उनकी गर्वोक्ति-

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां, जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैव यत्नः।
उत्पस्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा, कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।[7]

अर्थात् जो कोई इस कृति पर हमारी अवज्ञा को प्रकाशित करते हैं, वे अज्ञान वा मात्सर्य से कल्पित अनिर्वाच्य रहस्य को जानते हैं, ऐसे अज्ञानी अथवा मत्सरी जनों के प्रति यह मेरी कृति नहीं है। परन्तु मेरा कोई समान गुणवाला पुरुष उत्पन्न होगा, क्योंकि यह काल सीमा रहित है और पृथ्वी भी विस्तीर्ण है।........... संभवतः उन्हीं दुरालोचकों के प्रति है, जिनसे ये निराश होते रहे।

संस्कृत साहित्य में महाकवि भवभूति को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। भवभूति मानव-मन के चतुर पारखी थे। मन के अन्तर्द्वन्द्व को पकड़ने तथा उसे सफल अभिव्यक्ति देने में ये सिद्धहस्त थे। महाकवि प्रेम के पक्षपाती थे। इसमें भी उनके हृदय का गाम्भीर्य ही हेतु है। अतएव उसमें वासना का ज्वार नहीं और बाहरी कारणों की अपेक्षा भी नहीं है-

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संगश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्वावुद्गते चन्द्रकान्तः।।[8]

संस्कृत नाटकों के विशाल साहित्य पर जिन किंचित् नाटककारों के अमिट चरण चिन्ह विद्यमान हैं, उनमें भवभूति अग्रगण्य हैं। विद्वानों की दृष्टि में महाकवि कालिदास के समकक्ष स्थान पाने वाले भवभूति कहीं कहीं तो कालिदास से महत्तर प्रतिष्ठा प्राप्त कर गए हैं। महावीर चरितम, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् - ये तीनों कृतियां उनकी जीवन भर की कठिन काव्य साधना का प्रतीक हैं, इसलिए वस्तु, भाव और शिल्प तीनों ही दृष्टियों से यह संस्कृत नाट्य सृष्टि की अप्रतिम विभूति के रूप में विद्यमान है। इनकी कृतियों से संस्कृत वाङ्मय का निश्चित ही श्रीवर्धन हुआ है। अतः महाकवि भवभूति का संस्कृत वाङ्मय में असीम अवदान है

सन्दर्भ -

1. *महावीरचरितम्, आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र, समालोचना, पृ.10*
2. *महावीरचरितम्, आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र, समालोचना, पृ.11*
3. *महावीरचरितम्-1/5-6*
4. *मालतीमाधवम्-1/4*
5. *उत्तर रामचरित-3/1*
6. *उत्तर रामचरित-3/47*
7. *मालतीमाधवम्-1/6*
8. *उत्तर रामचरित-6/12*

6
भवभूति के रूपकों में धर्मशास्त्रीय चिन्तन

अमित सिंह

धर्म शब्द धृ धारणे धातु से बना है जिसका अर्थ है- 'किसी वस्तु को धारण किया जाने वाला, आचरण करने योग्य'। धरति इति धर्मः, ध्रियते अनेन इति धर्मः आदि लक्षण भी शास्त्रों में अभिव्यक्त है-

धारणाद्धर्ममित्याहुःधर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्मः इति निश्चयः।।[1]

अर्थात् धारण करने से इसका नाम धर्म पड़ा है। मर्यादित नियमों के अन्तर्गत प्रजा और राष्ट्र को सुचारू रूप से चलाने का विधान ही धारण शक्ति के कारण धर्म कहलाता है। महर्षि कणाद के अनुसार जीवन में जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति होती है वह धर्म है- **यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**[2] धर्म शब्द अपने स्वरूप और लक्ष्य को स्वयं स्पष्ट करता है। धर्म से तात्पर्य है वह वस्तु जो समस्त विश्व को धारण कर रही है। धर्म मानव समाज और संस्कृति का मूलाधार है। इसी आधारभूत तत्व के अनुसार संसार का शुभ व कल्याण टिका हुआ है। धर्म एक अपरिवर्तनशील शाश्वत सत्ता है। धर्म सार्वभौम शक्ति है। इसी प्रकार शास्त्र शब्द 'शासनात् शास्त्रं' शासन का अर्थ किसी कार्य में प्रवृत्त करना या किसी कार्य से निवृत्त करना होता है। वेद, स्मृति, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थ सत्कार्यों में प्रवृत्ति और असत्कार्यों में निवृत्ति का ही आदेश देते हैं। उत्तररामचरितम् नाटक में सम्प्राप्त संस्कार चौलकर्म, क्षौरकर्म, समावर्त्तन, उपनयन एवं विवाह आदि संस्कारों का विशेष रूप से निरूपण उपलब्ध होता है। चूड़ाकर्म या चौलकर्म का उल्लेख उत्तररामचरितम् के द्वितीय अङ्क में प्राप्त होता है। आत्रेयी वन देवता से वार्तालाप करती हुई कहती हैं कि लव और कुश जिनका चूड़ाकर्म संस्कार निष्पन्न हो गया है। उन दोनों को वेदत्रयी को छोड़कर अन्य तीनों विद्याएं जैसे अध्यात्म, वार्ता अर्थात् अर्थशास्त्र, कृषि, वाणिज्य और राजनीति सावधानी से पढ़ाई गयी है। हम जैसों का उन प्रखर बुद्धि बटुओं के साथ अध्ययन सम्भव नहीं है।' 'निर्वृत्त चौलकर्मणोस्तयोस्त्रयी वर्जमित् रात्स्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिता।'[3] सप्तम् अङ्क में सीता अपने पुत्रों के विषय में चिन्तित सी प्रतीत होती हैं। वह अन्य देवियों को कहती हैं कि हे देवियों, आप में से कौन ऐसी हैं जो कि इन बालकों का क्षत्रिय जाति के अनुरूप सविधि संस्कार कर सकेंगी।' **''भगवत्यौ! क एतयो क्षत्रियोचित विधि कारयिष्यति?''**[4] तब भागीरथी कहती हैं कि हे पुत्री! तुम्हें इसकी क्या चिन्ता है? इन दोनों बालकों को दूध छोड़ने के बाद मैं वाल्मीकि को अलपत कर दूंगी, वही इन दोनों का क्षत्रियोचित संस्कार करेंगे। यह सुनकर राम बहुत दुःखी होते हैं और कह उठते हैं कि सीता अपने पुत्रों के संस्कार करने वालों को नहीं पा रही है।

वशिष्ठ एव ह्यचार्यो रघुवंशस्य सम्प्रति। स एव चानयोर्ब्रह्म ह्यक्षत्रकृत्यं करिष्यति।।

एषा वसिष्ठ शिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी। कष्टं सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विदन्ति।।[5]

यहाँ पर द्योतित है कि भवभूति समकालिक समाज में अन्य जिन संस्कारों का उल्लेख प्रस्तुत नाटक में प्राप्त नहीं होता, वे भी संस्कार सम्पन्न किए जाते थे। क्योंकि सीता ने किसी विशेष संस्कार का नाम नहीं लिया है। महाकवि भवभूति के समाज में विवाह संस्कार का बहुत महत्व था। इसे समाज में अत्यन्त पवित्र और महत्वपूर्ण समझा जाता था। भवभूति के समाज में पत्नी की अहं भूमिका होती थी। पत्नी को सहधर्मचारिणी समझा जाता था। पत्नी के बिना पुरुष कोई भी धार्मिक कृत्य, यज्ञादि नहीं कर सकता था। द्वितीय अङ्क में अश्वमेध यज्ञ के समय सीता के अभाव में राम सहधर्मचारिणी के रूप में सीता की स्वर्णमूर्ति को पत्नी के रूप में स्थापित करते हैं। **हिरण्यमयी सीता प्रतिकृति गृहिणी कृता।**[6] उत्तररामचरितम् में अनेक स्थलों पर विवाह संस्कार का वर्णन प्राप्त होता है। प्रथम चित्रदर्शन अङ्क में भगवान राम अपने विवाह का सङ्केत करते हुए कहते हैं - जनकवंशी और रघुवंशियों का वैवाहिक सम्बन्ध किसको अच्छा नहीं लगता। जिसमें स्वयं कौशिक कन्यादान और ग्रहण करने वाले हैं। भगवान राम का विवाह वैदिक मन्त्रों द्वारा विधि-विधान से सम्पन्न हुआ था। इस पद्धति में देवादि पूजन, मङ्गलसूत्र बन्धन, सङ्कल्प, यज्ञ, पाणिग्रहण, सप्तपदी आदि कार्य किए जाते हैं। राम चित्रदर्शन में वैवाहिक घटनाओं के स्मरण से शोकयुक्त हो जाते हैं।

''जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः। यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिक नन्दनः।''[7]

उत्तररामचरितम् में विवाह संस्कार के सन्दर्भ के अन्तर्गत विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृङ्ग के साथ शान्ता के विवाह का प्रसङ्ग भी विवेच्य नाटक में उपलब्ध होता है। अतः निष्कर्षानुसार उत्तरारामचरितम् में षोडश संस्कारों का प्रचलन समाज में था। समाज संस्कारनिष्ठ था। **विभाण्डक सुतस्तान् शृष्यशृङ्ग उपयेमे।**[8] मालतीमाधवम् में संस्कार की दृष्टि से षोडश संस्कारों का विशेष महत्त्व था। आम जनमानस के जीवन में नाना संस्कारों का प्रचलन पाया जाता है। मालतीमाधवम् में विवाह संस्कार के अतिरिक्त अन्य संस्कारों का सङ्केत यत्र-तत्र मूक रूप में प्राप्त होता है। मालतीमाधवम् में विवाह संस्कार का प्रचुर मात्रा में वर्णन हुआ है। वस्तुतः तो समस्त मालतीमाधवम् प्रकरण विवाह चक्र की कथा है क्योंकि इसमें मालती और माधव, मकरन्द और मदयन्तिका के गन्धर्व विवाहों का वर्णन है। भवभूति ने प्रेम विवाह की स्वच्छन्दता 'मालतीमाधवम्' में वर्णित की है। इससे यह द्रष्टव्य है कि नाटक काल में भी वर्तमान की भाँति ही विवाह व्यवस्था थी। वर पक्ष बारात लेकर कन्या पक्ष पास उपस्थित होता था। वहीं कन्या के माता-पिता आदि विवाह की प्रक्रिया को सम्पन्न करते थे। लोग वर यात्रा के स्वागत के लिए सम्बद्ध रहते थे। वर यात्रियों का प्रवेश सबको अतिशय शीघ्रता करा देता था। **चित्रं नाना वचननिवहैश्चेष्ट्यतां भगलेश्य प्रत्यासन्नस्त्वरयतितरां जन्य यात्रा प्रवेशः।**[9] विवाह के समय अलंकृत मालती का वर्णन कवि ने कितने मनोहारी रूप में चित्रित किया है।

इयमवयवैः पाण्डुक्षामैरलं—कृत् मण्डना कलित कुसुमा बालेवान्तर्लता परिशोषिणी।

वहति च वरारोहा रम्यां विवाह महोत्सव-श्रियमुदयिनीमुद्भूतां च व्यनक्ति मनोरुजम्।।[10]

महावीरचरितम् में मुख्य रूप से तीन संस्कार प्राप्त होते हैं:- 1. उपनयन, 2. विवाह 3. अन्त्येष्टि। महावीरचरितम् में ऋषि विश्वामित्र द्वारा आमन्त्रित राजा कुशध्वज आश्रम में पधारते हैं, तो उनके साथ सीता एवं उर्मिला भी ऋषि के यज्ञ में उपस्थित होती हैं। वहाँ उन दोनों राजकुमारों को ब्रह्मचारी वेश में देखकर ये चकित रह जाते हैं। राजा कहते हैं कि स्वभाव से पवित्र और अत्यन्त सुन्दर ये दोनों कौन हैं। ऐसा लगता है कि ये क्षत्रिय कुमार हों और इनका उपनयन संस्कार कर दिया गया हो।

प्रकृत्यापुण्य लक्ष्मीकौ कावेतौ ज्ञायते त्विदम्। राजन्यदारकौ नूनं कृतोपनयनाविति।[11]

प्रस्तुत प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि भवभूति के काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के लोगों के यज्ञोपवीत संस्कार किये जाते थे। यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त ही इन्हें शिक्षा दी जाती थी। महावीरचरितम् में विवाह संस्कार का भी उल्लेख प्राप्त होता है। विश्वामित्र स्वयं कहते हैं कि सुदिन में राम के लिए रक्षोघ्न मङ्गल करना है और सीता के साथ राम का विवाह सम्पन्न करना है-

क्षोघ्नानि च मङ्गलानि सुदिने कल्प्यानि दार क्रिया, वैदेह्याश्च रघूद्रहस्य च कुले दीक्षा प्रवेशश्च।[12]

इस प्रकार वहीं आश्रम में विश्वामित्र ने राम का विवाह सीता के साथ और लक्ष्मण का विवाह उर्मिला के साथ सम्पन्न कराया। इस सम्बन्ध में स्वयं राजा कुशध्वज कहते हैं कि भगवन! आपकी कृपा से राम के सीता पति हो जाने से आपके आशीर्वाद सफल हुए। इसी उत्सव में लक्ष्मण को उर्मिला दे रहा हूँ।

रामेण पत्या सीतायाः पूर्णा युष्माकाशिषः। अस्मिन्नेवोत्सवे दत्ता लक्ष्मणाय मयोलमला।।[13]

इस प्रकार राजा जनकों (सीरध्वज और कुशध्वज) की पुत्रियों सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति का विवाह संस्कार राजा दशरथ के चार पुत्रों राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ क्रमशः सम्पन्न हुआ। इस प्रकार वैदिक यज्ञीय विधि विधान के साथ राम सहित चारों भाइयों का विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

एताश्चतुर्भ्यो रघुनन्दनेभ्यो निमेर्गृहे राजसुताश्चतस्त्रः।
वशिष्ठवद् गौतमवच्च भूत्वा दत्ताः प्रतीष्टाश्च समं मयैव।।[14]

महावीरचरितम् में अन्त्येष्टि संस्कार जो हिन्दू धर्म में अन्तिम संस्कार है, जो कि मृत्यु के बाद भी मृत शरीर का किया जाता है। यह संस्कार तत्कालीन समय भी प्राप्त होता है। भगवान राम द्वारा जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भवभूति काल में यह संस्कार अपने मूल रूप में सम्पन्न किया जाता था- **ननु व दैव तात मारुण गृधराजमाम्नि सात्कृत्य निर्गतयोः पन्चवट्या श्रमादावयोः कोऽपि कालो वर्तते।**[15]

भवभूति के नाटकों में पूजा पद्धति की भी परम्परा थी जो वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है महाकवि भवभूति ने परब्रह्म के अंशभूत ब्रह्मा, सरस्वती, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, गरुड़, वरुण, रुद्र, प्राचीन बर्हि, वायु, काल, महादेव, गणेश आदि देवताओं का उपासना का विषय बनाया है तथा उनसे रक्षा, तेज आदि की प्रार्थना की है। वासन्ती, गङ्गा व पृथ्वी प्राकृतिक देवताओं के रूप में अपने प्रभाव का दर्शन कराते हैं तथा प्रार्थनाओं को पूर्ण करते हैं। विशिष्ट वंश के आराध्य विशिष्ट देवता के रूप में सूर्य देवता रघुवंश के प्रवर्तक रहे हैं। **देवस्त्वां सविता धिनोतु समो गोप्रस्य यस्ते पतिः।**[16] वह सविता देवता रज आदि दोषों से दूर रहकर प्रकाशित होते हैं तथा उनसे पवित्र करने की प्रार्थना की गयी है। **सत्वां पुनातु देवः परो रजसां, य एष तपति।**[17] भक्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए सीता जी भी उनकी उपासना के निमित्त अपने हाथों से पुष्प चयन के लिए पञ्चवटी आती हैं। भक्ति मार्ग से उपासना का प्रत्यक्ष उदाहरण मालतीमाधवम् में सूत्रधार के शब्दों में देखा जा सकता है। **कल्याणानां त्वमसि मार्य महसां भाजनं विश्वमूर्ते धुर्यालक्ष्मीमिह मयि भृशं धेहि देव! प्रसीद। यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ! नम्रस्पतन्ये भद्रं भद्रं विवर भगवान्भूयसे मङ्गलाय।**[18] हिन्दू धर्म में उपासना का सर्वश्रेष्ठ रूप अपने आराध्य देवता के गुणों के वर्णन के साथ भक्ति में डूब जाना है। जिसका उत्कृष्ट उदाहरण मालतीमाधवम् में अपने अभीष्ट देवता शिव के प्रति सौदामिनी स्तुति प्रस्तुत करती है-

जयदेव भुवनभावन जयभगवन्नखिलवरद् निगमनिधे।
जयरुचिरचन्द्रशेखर जयमदनान्तक जयादिगुरो।।[19]

विशिष्ट तिथि पर उपासना का उल्लेख भी मालतीमाधवम् में मिलता है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को मालती माता के साथ शिव मन्दिर में जाती है। **अद्य कृष्ण चतुर्दशीति जनन्या समं मालती शङ्करपुरं गमिष्यति।**[20]

शिव आदि प्रकरणों के साथ-साथ नित्य पाठ करने के स्तोत्रों का संग्रह प्राप्त होता है। हिन्दू धर्म के देव पूजा पद्धति के अन्तर्गत दैनिक स्तुति आरती, स्वस्तिवाचन, गणेश पूजन, पञ्चदेव पूजा, वरुण कलश, पुण्याहवाचन, नवग्रह पूजन, षोडश मातृका, सप्तघृत मातृका, चतुष्षष्टियोगिनी, वास्तु के साथ शिव, पार्थिवेश्वर, शालग्राम तथा महालक्ष्मी दीपमालिका आदि का पूजन विधान भी प्राप्त होता है। भवभूति के नाटकों में पूजा पद्धतियों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। महावीरचरितम् में प्रत्येक हिन्दू अपने ईष्ट देवता के साथ-साथ अपने कुल देवता तथा ग्राम देवता आदि की भी पूजा करते थे। लोग अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु इन देवताओं की पूजा करते थे। देवताओं की संख्या तैंतीस कोटि कही गयी है। इनमें कुछ मुख्य हैं - ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इनकी तीन शक्ति सरस्वती अर्थात् महादेव की उपासना में रावण द्वारा अपने मुखों को काटकर भेंट करने का उल्लेख भी मिलता है।[21] संग्राम में विजय के लिए कल्याण के लिए, रक्षा के लिए विवाह-मङ्गल कल्याण सम्पत्ति आदि विशिष्ट कामनाओं के लिए भी उपासना की गयी। कामना पूर्ति के लिए आराध्य से शब्दों में प्रार्थना की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि देवता प्राणियों के अन्तःकरण को जानने में अप्रतिहत सामर्थ्यशाली होते हैं। **अस्मिन्पाणिग्रहणमङ्गलारम्भे कल्याणसंपत्तिनिमित्तं देवता पूज्येत्यम्बयानुप्रेषिता।**[22] शान्तिहोम, जैत्रसूक्त, साम, अनुवाक् के जप आदि भी पूजा का ही एक रूप हैं, जिसका उल्लेख महर्षि वशिष्ठ करते हैं- **अत्याहतान्तः प्रकाशा हि देवताः सत्वेषु।**[23] भारतीय शास्त्रों में प्रातःकाल जागरण के पश्चात् प्रातःकालीन भगवद् स्मरण से लेकर के शौचाचार, आभ्यन्तर शौच, दन्त-धावन विधि, क्षौरकर्म, स्नान, सन्ध्योपासन, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदि पञ्चमहायज्ञों का विवेचन, देवपूजन, मानसपूजा, सूर्यनमस्कार, नित्यदान, सङ्कल्पविधि, अतिथि सत्कार, भोजन विधि, शयन विधान लक्ष्मी और दुर्गा, गणेश एवं सूर्य भी मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अष्ट लोकपाल, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, मरुत्, अर्यमा, पूषा, अश्विनी, कुमार तथा सोम आदि का बड़ा महत्त्व है। इनके अतिरिक्त वृहस्पति, देवसेनापति, कार्तिकेय एवं कामदेव आदि की भी आराधना प्रचलित थी। महावीरचरितम् में त्रिदेवों के पूजन का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इन देवों में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा को माना गया है। जो तपस्याजन्य तेज के निवासनिधान तथा स्वयं प्रतिमान हैं- **तदस्मिन् ब्रह्माद्यैस्त्रिदशगुरुभिर्नाथितशमे। तपस्तेजोधम्नि स्वयमुपनत ब्रह्मणि गुरौ।**[24] विष्णु देवता के पूजन का वर्णन भी महावीरचरितम् के पाँचवे अङ्क में प्राप्त होता है- **कल्पस्यादौ मम परिचयस्तावदासीदुदस्था द्यावद्विष्णोरुपरि चरणश्चारुगङ्गापताकः।**[25] महावीरचरितम् में स्थल-स्थल पर शिव का नामोल्लेख प्राप्त होता है। ''कहीं शिव धनुष का वर्णन है तो कहीं उनके त्रिपुरहर आदि नामों का वर्णन है। लोग शिव की पूजा के लिए अपने सिरों को उनके चरणों पर समर्पित कर देते थे।'' रावण ने अपने दशों सिरों को शिव को समर्पित कर दिया था। यह वर्णन महावीरचरितम् के सप्तम् अङ्क में प्राप्त होता है। महावीरचरितम् में उपर्युक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अतिरिक्त इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमराज, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, गणेश और स्वामी कार्तिकेय के पूजन का वर्णन भी प्राप्त होता है। मालतीमाधवम् में भी अनेक देवी देवताओं का उल्लेख प्राप्त होता है। लोग नाना प्रकार के देवी देवताओं की पूजा करते थे और उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। विवेच्य नाटक मालतीमाधवम् में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कामदेव, गणेश, यमराज, चामुण्डा देवी, सूर्यदेव, वायु, अग्नि, चन्द्र और नगर देवताओं के अतिरिक्त अप्सरा आदि अर्धदेवताओं की पूजा का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार उत्तररामचरितम् में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य,

इन्द्र, वरुण, अग्नि, रुद्र, चन्द्र, कुल देवता, वन देवता, ग्राम देवता, वास्तु देवता, लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा, तीर्थ देव, उषा देवी, वाराह देव, ऋषि आदि के पूजन का उल्लेख प्राप्त होता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भवभूति के समय का समाज धर्म परायण था। उनका देवी देवताओं के प्रति दृढ़ विश्वास था। उस समय साधारण यज्ञों के साथ-साथ अश्वमेध, बाजपेय आदि विविध यज्ञीय विधान पूर्णरूपेण प्रचलित थे। विभिन्न पूजा- पद्धतियों के माध्यम से लोग देवी- देवताओं की अर्चना करते थे।

भारतीय हिन्दू धर्मशास्त्र को आधार मानते हुए भवभूति ने अपने रूपकों में वर्ण-व्यवस्था का विशेष वर्णन किया है। महावीरचरित रूपक में ब्राह्मण को सत्त्व गुण का अधिकारी बतलाया गया है, जो अपने प्रभाव तथा तपः शुद्धि से मनुष्यों में सत्व गुण की वृद्धि करने के साथ-साथ उनके पाप का विनाश भी करता है- **सत्त्वं प्रबलयति पापं च नुदति।**[26] ब्राह्मण शान्त प्रकृति का होता है तथा वही शिष्टाचार पद्धति का प्रणेता भी कहा गया है- **'नन्वेत एव शिष्टाचारपद्धतेः प्रणेतारः।'**[27] ब्राह्मण पर राष्ट्र की रक्षा का भार भी होता है- **राष्ट्रगोपः पुरोहितः।**[28] ब्राह्मण जन्म से नहीं बल्कि अपने कर्म से समाज में जाने जाते हैं। भवभूति ने क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए ऋषि विश्वामित्र के लिए ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किया है, जो यह सिद्ध करता है कि ब्रह्मवेत्ता क्षत्रिय को भी ब्राह्मण स्वीकार करते थे। समाज में ब्राह्मणों को कुछ विशेष अधिकार भी प्राप्त थे। उनकी अवध्यता का उल्लेख भवभूति ने इस प्रकार किया है-

''विरम नरपते कथं द्विजेऽस्मिन्नविरतयज्ञवितीर्णगोसहस्वः।
तव पलितनिरन्तरः पृषत्कं स्पृशति पुराणधनुर्धरस्य पाणिः।।''[29]

प्रस्तुत श्लोक से स्पष्ट होता है कि उस समय क्षत्र्यि राजा ब्राह्मणों को हजारों गाय दान में दे दिया करते थे किन्तु यदि परिस्थितियाँ विषम हो जाएं तो क्षत्रिय राजा को ब्राह्मण के दमन का भी अधिकार होता था।

भवभूति ने क्षत्रिय वर्ण के विषय में भी पर्याप्त उल्लेख किया गया है। क्षत्रिय को रजस् गुण का अधिकारी कहा गया है। वह धर्म का रक्षक होता था तथा धार्मिक अनुष्ठानों को करने वाले ऋषि-मुनियों के लिए विघ्न पैदा करने वाले राक्षसों का हनन कर राज्य को निष्कण्टक बनाता था। नाटक में यह विश्वामित्र के इस कथन से स्पष्ट है- **त्वरस्य वत्सद्य किं न पश्यसि ब्राह्मणजनस्य संघात मृत्युमग्रतः।**[30] वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना राजा का प्रमुख कर्तव्य माना जाता था, जिसे भवभूति ने इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है- **'नन्वस्यापि वर्णाश्रमरक्षणे गुरुनियोगः।'**[31] महाकवि भवभूति ने वर्ण व्यवस्था के साथ-साथ आश्रम चतुष्ट्य का भी वर्णन किया है। ब्रह्मचर्य आश्रम का कुछ विस्तार से उल्लेख किया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्राह्मण ब्रह्मचारी वेदाध्ययन तथा क्षत्रिय ब्रह्मचारी वेद व अन्य विद्याओं के साथ धनुर्विद्या का अध्ययन करते थे। इस नाटक में यह बताया गया है कि परशुराम ने धनुर्वेद की शिक्षा भगवान शंकर से ली थी। जिससे यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण भी क्षत्रियोचित युद्ध धर्म की शिक्षा ले सकता था। क्षत्रिय ब्रह्मचारी की वेशभूषा का वर्णन भवभूति ने इस प्रकार किया है-

चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो, भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं, पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः।।[32]

शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था, जहाँ वह अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करता था। इसके पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में उसका प्रवेश होता था। पुत्र को कार्यभार सौंपकर पिता द्वारा वनवास व्रत ग्रहण करने का उल्लेख किया गया है। वानप्रस्थी को जटा, वल्कल, मृगचर्म तथा हाथों में अक्षसूत्र धारण करता हुआ बतलाया गया है-

ज्योतिर्ज्वालाप्रचयजटिलो भाति कण्ठे कुठार-स्तूणीरोऽसे वपुषि च जटाचापचीराजिनानि।
पाणौ बाणः स्फुरति वलयीभूतलोलाक्षसूत्रे वेषः शोभां व्यतिकरवतीमुग्रशान्तस्तनोति।।[33]

समाज में ब्राह्मण का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। तपस्वी व विद्वान् ब्राह्मण के प्रति पराकाष्ठा का आदर इस नाटक में व्यक्त हुआ है। विश्वामित्र जैसे ऋषि वेदतुल्य होते हैं। उनमें किसी प्रकार के दोष की सम्भावना ही नहीं होती है। पाप-पुण्य के विषय में वे ही प्रमाणभूत होते हैं। भवभूति के 'महावीरचरितम्' से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उस समय पुरातन आचार का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक कर्त्तव्य था-

अस्माभिरेव पाल्यस्य प्रशस्तत्वात्प्रियस्य नः। अस्मद्गृहे पुराणस्य पश्याचारस्य विप्लवम्।।[34]

भवभूति ने इसे लोकधर्म कहकर एक महत्त्वपूर्ण लौकिक परम्परा के रूप में सम्मानित किया। तत्कालीन संस्कृति में विवाह सम्बन्ध कुल पुरोहित अथवा किसी आदरणीय ब्राह्मण के द्वारा सम्पन्न कराया जाता था। गुरुजन सम्मत विवाह सभी के लिए स्वीकारणीय तथा प्रशंसनीय होते थे। कन्या के विषय में सभी अधिकार उसके पिता अथवा कुल श्रेष्ठ को प्राप्त थे-

अत्र सीरध्वजो वेत्ता कनिष्ठो हि कुशध्वजः। अस्याः पिता स कन्यायाः कुलज्येष्ठः प्रभुश्च सः।।[35]

विवाह के पश्चात् होने वाले मंगल प्रसंगों यथा कंकण मोचन इत्यादि का भी यथास्थान उल्लेख भवभूति ने किया है- **'देव्यः कंकणमोचनाय मिलिता राजन् वरः प्रेष्यताम्।'**[36] भवभूति ने नाटक में यज्ञ, जप-तप, अनुष्ठान आदि धार्मिक कृत्यों का उल्लेख किया है। शान्तिहोम तथा वाजपेय यज्ञ का उल्लेख कवि ने किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, ऋषि-मुनि यज्ञ किया करते थे। यज्ञ करने वाले को दीक्षिष्यमाण तथा यजमान यक्ष्यमाण कहा जाता था। वाजपेय यज्ञ में ब्राह्मणों को छत्र, यज्ञ-पात्र तथा होमधेनुएँ दी जाती थीं। अश्वमेघ यज्ञ की दक्षिणा स्वरूप सप्तद्वीप पृथ्वी कश्यप मुनि को परशुराम द्वारा दिए जाने का उल्लेख करके कवि ने इस यज्ञ की महत्ता को वलणत कर दिया है। जैत्रसूक्त साम तथा अनुवाक का जप विजय के लिए एवं अनिष्टशमन के लिए किया जाता था-

जेतुं जैत्रनथ खलु जपन्सूक्तसामानुवाका नस्मच्छिष्यैः सह स भगवान् वाम देवो गृणातु।।[37]

धर्म से जुड़े कुछ विश्वास अन्धविश्वास भी समाज में प्रचलित थे। पुरुष की बायीं आँख का फड़कना शुभ नहीं माना जाता था। भाग्य के विधान पर गहरा विश्वास व्याप्त था।

अनुकूलस्य विधेः किलायं विलासः। किं नो विधिरिह वचनेऽप्यक्षमो दुर्विपाकः।[38]

अनेक धार्मिक परम्पराएँ तथा पौराणिक कथाएँ प्रचलन में थी। अहिल्या पर इन्द्र का आसक्त हो जाना, श्राप वश अहिल्या का पत्थर मूर्ति बन जाना तथा राम के स्पर्श से उसका पाप मुक्त होकर उद्धार हो जाना, वराह अवतार, क्षीरसागर से चन्द्र- कौस्तुभ का उत्पन्न होना तथा अयोनिजा सीता का यज्ञभूमि से उत्पन्न होना आदि अनेक कथा- प्रसंग उस समय के धार्मिक वातावरण को स्पष्ट करते हैं। भवभूति ने अपने रूपकों में वर्णित धर्म के आधार पर तत्कालीन धार्मिक स्थिति का अवलोकन किया है और इसके साथ ही साथ वैदिक धर्म को विशिष्ट स्थान दिया है। इसके साथ बौद्ध धर्म को निर्मूल सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि भवभूति ने बौद्ध धर्म का प्रत्यक्षतः खण्डन नहीं किया तथापि उन्होंने अपने इस नाटक द्वारा उन्हीं वैदिक विद्वानों के कार्यों में सहायता पहुँचाने का सफल प्रयास किया। उन्होंने अपने रूपकों में उद्धृत उदाहरणों द्वारा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता के चित्र प्रस्तुत किए हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भवभूति ने अपने नाटकों की रचना वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा के लिए की थी। वही महावीरचरितम् में कवि ने वैदिक धर्म पर लोगों की श्रद्धा के प्रमाण चित्रित किए हैं। जिससे इस

धर्म के प्रति रचनाकार की आस्था पूर्णतः प्रकट होती है। संस्कृत साहित्य में दार्शनिक एवं धार्मिक नाटकों की जिस वृहद् निधि को हम पाते हैं, उसकी निर्मिति में यहाँ की धार्मिक परम्परा का ही योगदान है। हमारा राष्ट्र प्राचीन समय से ही धर्मशास्त्रीय चिन्तन की ओर उन्मुख दीख पड़ता है और उसकी प्रतीति होती है इसके प्राचीन साहित्य के अध्ययन से। भारतीय संस्कृति और विचार धारा का माध्यम होकर भी संस्कृत भाषा अनेकानेक दृष्टियों से धर्मनिरपेक्ष रही है। इस भाषा में धार्मिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और मानविकी आदि प्रायः समस्त प्रकार के वाङ्मय की रचना हुई है। हमारी संस्कृति को द्योतित करने वाले ग्रन्थ- 'वेद' और उपनिषदों में दार्शनिक विचारों का एक वृहद् भण्डार हमें दृष्टिगोचर होता है। जो हमारी धार्मिक प्रवृत्ति को मूलाधार प्रामाणिक मानते हुए भारतीय नाट्य परम्परा में विशिष्ट प्रभाव डालता हैं। भारतीय दर्शनों में समाजशास्त्रीय एवं व्यावहारिक दर्शन के रूप चार्वाक्, जैन और बौद्ध को आधार बनाते हुए रूपकों की परम्परा प्रारंभ होती है। मूलतः नाटककार ने शुद्ध रूप से भारतीय समाज की धार्मिक और दार्शनिक विषय तथ्यों को प्रकाशित करने के लिए रचना की है।

सन्दर्भ -

1. *महर्षि व्यास, महाभारत, शान्तिपर्व 109/12*
2. *वैशेषिक दर्शन- 1/1/2*
3. *उत्तरराचरित, पृ. 153*
4. *वही, 7/12 के पश्चात्*
5. *वही, 7/13-14*
6. *उत्तररामचरितम् 2 अंक*
7. *वही, 1/17*
8. *वही, 3/37*
9. *मालतीमाधवम् पृष्ठ 212*
10. *वही, 6/6*
11. *महावीरचरितम् 1/6*
12. *वही, 1/13*
13. *वही, 1/56*
14. *वही, 1/58*
15. *वही, पृष्ठ 211*
16. *उत्तररामचरित 5/ 27*
17. *वही, 4 / पृष्ठ 304*
18. *मालतीमाधवम् 1/3*
19. *वही, 9/4*
20. *वही,, 3 अंक पृष्ठ 124*
21. *महावीरचरित 7 अंक पृष्ठ 296*
22. *मालतीमाधवम्, 6 अंक 270*
23. *उत्तररामचरित 7 अंक पृष्ठ 470*
24. *महावीरचरितम् 1/11*
25. *वही, 5/10*
26. *वही, 2/15*
27. *वही, 2 अंक पृष्ठ 76*
28. *वही, 3/18*
29. *वही, 3/30*
30. *वही, अंक 1 पृष्ठ-36*
31. *वही, अंक 4 पृष्ठ 186*
32. *वही, 1/18*
33. *वही, 2/26*
34. *वही, 3/38*
35. *वही, 1/41*
36. *वही, 2/50*
37. *वही, 3/23*
38. *वही, 6/7-10*

7

भवभूति की कृतियों में वर्णित धर्मशास्त्रीय समाज

मुकेश कुमार

प्राचीनकाल में समाज में धर्मशास्त्र सर्वोपरि था। राजा आदि भी अपने शासन को सुचारु ढंग से चलाने हेतु धर्मशास्त्र के अनुसार आचरण करते थे। धर्मशास्त्र को भारतीय संविधान की तरह अनुकरणीय माना जाता था। अतः साहित्यकार भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सके। भवभूति भी उनमें से एक हैं जिन्होंने धर्मशास्त्र की इस परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखा। महावीरचरित में याज्ञवल्क्य को एक ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। याज्ञवल्क्य कर्म से एक अध्यापक हैं और उन्होंने जनक के राजपुरोहित शतानन्द को पढ़ाया भी है।[1] उत्तररामचरित के प्रथम अंक में अर्जुन नामक पात्र का प्रसंग है जो एक चित्रकार है। चित्रकला का संबंध कला से होने के कारण यह शूद्रवर्ण के प्रमुख कार्यों में से एक माना गया है।[2] मनुस्मृति में ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों का उल्लेख है। ये चार आश्रम मानव जीवन के चार पड़ाव माने जाते हैं।[3] भवभूति की कृतियों में इन चारों आश्रमों का पर्याप्त परिचय मिलता है। ब्रह्मचर्याश्रम का सम्बन्ध मानवजीवन के उस पड़ाव से होता है जब वह बाल्यकाल में कुछ वर्ष पर्यन्त पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होकर गुरु के समीप रहकर शिक्षा ग्रहण करता है। महावीरचरित में राम का विश्वामित्र के समीप रहकर उनसे ज्ञान प्राप्ति करना[4] तथा उत्तररामचरित में लव-कुश का महर्षि वाल्मीकि से अध्ययन करना[5] ब्रह्मचर्याश्रम ही है। ब्रह्मचर्याश्रम के बाद मानवजीवन का द्वितीय पड़ाव गृहस्थाश्रम है। प्रत्येक गृहस्थी का यह कर्तव्य है कि वह अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद पारिवारिक जीवन में प्रवेश करे। पारिवारिक जीवन से अभिप्राय पति-पत्नी के उन समस्त दायित्वें से है जिनका विवाहोपरान्त निर्वहन करना आवश्यक होता है।[6] पति-पत्नी के इस संबंध को कवि ने बड़ी ही कुशलता के साथ वर्णित किया है। उनके अनुसार दम्पती में मधुर संबंध होना चाहिए। दम्पती के प्रेम एवं विश्वास को उन्होंने उनके सुखद जीवन का आधार स्तम्भ माना है। उत्तररामचरित में कुश के कथन से यह ज्ञात होता है कि राम और सीता एक दूसरे से अत्यन्त प्रेम करते हैं।[7] भवभूति के अनुसार एक उत्कृष्ट दाम्पत्य संबंध वही है जहां प्रत्येक परिस्थिति में पति-पत्नीदोनों एक दूसरे का सहारा बनें।[8] विवाहोपरान्त पति-पत्नी संतानोत्पत्ति हेतु प्रयास करते हैं। भवभूति इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हैं किन्तु फिर भी वह संतानोत्पत्ति की अपेक्षा पति-पत्नी के मधुर संबंध को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार दम्पती की संतान हो अथवा न हो किन्तु उनमें प्रेम एवं विश्वास अवश्य होना चाहिए।[9] रामसीता से वियुक्त है फिर भी सीता के प्रति उनका प्रेम बना हुआ है। इसका प्रमाण यह है कि वह सीता से अलग होकर भी दूसरा विवाह नहीं करते और यज्ञ मे अपने साथ सीता के स्थान

पर सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित करते हैं।[10] दूसरी ओर सीता भी राम के द्वारा त्यागे जाने पर राम से पहले जितना ही प्रेम करती है। दण्डकारण्य में जब राम सीता का स्मरण करते हुए निश्चेत हो जाते हैं तो वह राम को स्पर्श करते हुए उन्हें जीवित करती है।[11] सीता वासन्ती के द्वारा की गयी राम की निन्दा को सहन नहीं कर पाती और उसे ऐसा करने से रोकती है।[12] उत्तररामचरित में वैखानस शब्द का उल्लेख मिलता है जो वानप्रस्थाश्रम का द्योतक है।[13] नाटक में चित्रावलोकन करते हुए लक्ष्मण का कथन है कि इक्ष्वाकु राजाओं ने जिस संन्यास को वृद्धावस्था में पाया उसी संन्यास को राम ने बाल्यकाल में ही भोग लिया था।[14] मालतीमाधव में कामन्दकी को संन्यासिनी के रूप में चित्रित किया गया है। वह संन्यासियों की वेशभूषा में है और संन्यासाश्रम के समस्त नियमों का पालन कर रही है।[15]

कर्म के ज्ञान हेतु मनुस्मृति में धर्म और अधर्म का विवेचन किया गया है। यहां समस्त कर्मो को कृत्य और अकृत्य दो वर्गों में विभाजित किया गया है। कृत्य कर्म जो समाज की सुख-समृद्धि में सहायक हैं, को यहां धर्म की संज्ञा दी गयी है। इसके विपरीत समाज की सुख-समृद्धि में बाधक अथवा घातक प्राण हत्यादि को अधर्म कहा गया है।[16] अतः प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अधर्म का मार्ग छोड़कर धर्म के मार्ग पर चले। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका नाश संभव है।[17] भवभूति द्वाराचर्चित कृत्य कर्मों को पारिवारिक दायित्व और सामाजिक दायित्वों वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। भवभूति के अनुसार प्रत्येक परिवार में पिता अथवा पति उस परिवार का मुखिया होता है। परिवार के रक्षण एवं पालन हेतु सदैव तत्पर रहना मुखिया का कर्त्तव्य होता है। उत्तररामचरित में राम द्वारा परित्यक्ता सीता की व्यथा से परिचित होने पर जनक सीता से कहते हैं कि वन में छोड़ी जाने पर तुमने निश्चय ही मुझे याद किया होगा।[18] मालतीमाधव में भी माता-पिता द्वारा संतान की रक्षा का प्रसंग मिलता है। मालतीमाधव के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करते हुए कहती है कि प्रेमाग्नि से मेरा शरीर जल रहा है और इस अवस्था में माता-पिता भी कुछ नहीं कर सकते।[19] संतान का योग्य वर अथवा वधू के साथ विवाह करना पिता का दायित्व होता है। इसलिए महावीरचरित में रावण सीता से विवाह हेतु सर्वमाय नामक दूत को राजा जनक के पास भेजता है क्योंकि उसे पता है कि यह पिता का कर्तव्य है।[20] मालतीमाधव में कामन्दकी का कथन है कि विवाह पिता अथवा भाग्य द्वारा ही संभव है।[21]

पारिवारिक कर्तव्यों के अतिरिक्त मनुष्य के समाज के प्रति भी कुछ कर्तव्य होते हैं। इनमें दया, अंहिसा एवं अतिथि सत्कार आदि को स्थान दिया गया है। इसे शिष्टाचार का नाम दिया गया है। शिष्टाचार का पालन करना प्रत्येक सामाजिक का कर्तव्य है। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह घर आये हुए अतिथि का आदर-सत्कार करे, उसका कुशल क्षेम पूछे और सामर्थ्यनुसार उसे जलपान भी करवाये। चापभंजन के कारण क्रोधित परशुराम को शान्त करते हुए विश्वामित्र और वसिष्ठ परशुराम का आतिथेय करते हैं।[22] उत्तररामचरित में राम द्वारा पुनः पंचवटी में प्रवेश करने पर वासन्ती वहां के पक्षियों, वृक्षों और पुष्पों को संबोधित करते हुए कहती है कि आप सब अपनी मधुर ध्वनियों, वायु और सुगन्ध से राम का स्वागत करो।[23]

समाज में जब भी किसी शिशु का जन्म होता है तो वह शैशवावस्था में अपने परिवार के साथ रहता है। परिवार के प्रभाव से उसके व्यवहार का विकास होता है। परिवार से वह शिष्टाचार सीखता है और तत्पश्चात् किसी योग्य व्यक्ति को गुरु मानकर उससे शास्त्रों का अध्ययन करता है। इस तरह मनुष्य के व्यवहारिक और बौद्धिक विकास में परिवार और गुरु का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। गुरु से नियमबद्ध रूप से शास्त्रों का अध्ययन करते शास्त्रों में पारंगत होकर वह असंभव को भी संभव कर सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति

को अपने गुरु की सेवा शुश्रुषा अवश्य करनी चाहिए।[24] प्रकरण के भरतवाक्य में सम्पूर्ण मानव जगत् के कल्याण की कामना की गयी है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए शिक्षाप्रद है।[25] प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रत्येक कार्य को इस ढंग से करे कि उसके इस कार्य से किसी अन्य मनुष्य को कोई हानि न हो। ऐसा करने पर उसे इस अनुचित कार्य का दण्ड भुगतना पड़ता है। जब माधव मालती को अघोरघण्ट नामक तान्त्रिक से बचाता है तो वह मालती से कहता है कि इसे अपने कुकर्म का दण्ड भुगतना होगा।[26] स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज के अभिन्न अंग हैं। समाज में ये दोनों ही सम्मान के पात्र होते हैं। इन दोनों के पारस्परिक सहयोग से परिवार चलता है। इसलिए साहित्य में भी इन दोनों को बराबरी का अधिकार दिया गया है। मनुस्मृति में यह कहा गया है कि जहां स्त्री का सम्मान होता है वहां भगवान् का निवास होता है।[27] भवभूति ने स्त्री के सम्मान एवं संरक्षण को अधिक महत्त्व दिया है। उत्तररामचरित में सीता को घर की लक्ष्मी कहा गया है।[28] मालतीमाधव में मकरन्द द्वारा मदयन्तिका का बाघ से रक्षण का उल्लेख है।[29] शास्त्रों में स्त्री को अवध्या माना गया है। शास्त्रीय आचार का अनुगमन करते हुए भवभूति ने भी स्त्री को अवध्या माना है। महावीरचरित में ताढका द्वारा यज्ञ में उत्पात मचाने पर जब विश्वामित्र राम को ताढका का वध करने को कहते हैं तो राम किं कर्तव्यमूढ़ हो जाते हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि ताढका एक स्त्री है और स्त्री हनन पाप है।[30] स्त्री रक्षण और सम्मान के साथ-साथ भवभूति ने स्त्रीशिक्षण पर भी विशेष ध्यान दिया है। उत्तररामचरित में आत्रेयी के कथन से ज्ञात होता है कि वह महर्षि वाल्मीकि से अध्ययन कर रही थी किन्तु वह अब रामायण लेखन में व्यस्त हैं। इस कारण वह वाल्मीकि का आश्रम छोड़कर महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जा रही है।[31]

भारतीय संस्कृति में छोटी-बड़ी सब प्रकार की सामाजिक गतिविधियां उत्सव की भान्ति मनायी जाती हैं। जिसमें परिवार, नातेदार और समाज के लोग बढ़-चढ़ कर भाग लेते हैं। यही भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता है। प्राचीनकाल से मानव जीवन से संबंधित संस्कारों को लोग हर्षोल्लास से मनाते आये हैं। कवि के उत्तररामचरित में गोदान संस्कार[32] और मालतीमाधव में पाणिग्रहण संस्कार[33] का उल्लेख मिलता है। राजनीति समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। राजनीति का संचालन राजा को हाथ में होता है। राष्ट्र की उन्नति राजा पर ही निर्भर होती है क्योंकि वह नीतिपूर्वक शासन करते हुए समाज में सुशासन स्थापित करता है। राजा स्वेच्छापूर्वक व्यवहार नहीं कर सकता क्योंकि उसे समस्त कार्य प्रजा के हित को ध्यान में रखकर करने होते हैं। अपने हित के विषय में सोचने पहले उसे प्रजा के हित एवं रक्षणादि के बारे में सोचना पड़ता है।[34] महावीर-चरित में विभीषण राम को धर्म का रक्षक कहकर संबोधित करता है जो राम का स्वाभाविक गुण है।[35] राम एक पति होने के साथ-साथ एक राजा भी हैं। अपने सुख को त्याग कर उन्हें प्रजा के सुख के विषय में सोचना पड़ता है। रावण के भवन में रहने के कारण जब प्रजा सीता के प्रति अविश्वास की भावना व्यक्त करती है तो केवल प्रजा की संतुष्टि हेतु वह अपनी सीता को भी त्याग देते हैं।[36]

भवभूति की कृतियों में धर्मशास्त्रीय समाज का साङ्गोपाङ्ग चित्रण मिलता है। समाज का यह बीजवैदिककाल से पूर्व ही अंकुरित हो गया था। वेदोत्तरकाल में मनु एवं याज्ञवल्क्यादि धर्मशास्त्रियों ने इसे नियमों से सींचकर वृक्ष के रूपमें परिणत कर दिया था। तत्पश्चात् भवभूति आदि कवियों ने पूर्वकाल से चली आ रही इस परंपरा को अपनी कृतियों में प्रतिबिम्बित कर समाज को एक संदेश दिया। यह संदेश सामाजिक उन्नति में सहायक होने के कारण आधुनिक समाज में भी सर्वथा अनुकरणीय है।

सन्दर्भ -

1. *महावीरचरित-2, पृष्ठ-477, जामदग्न्यः-त्वंपुरोहितः सुचरितो याज्ञवल्क्यशिष्यः ।*
2. *उत्तररामचरित-1,पृष्ठ-44, लक्ष्मणः-जयतिजयत्यार्यः । आर्य! अर्जुनेनचित्रकारेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितम स्यांवीथ्यामभि लिखितम् ।*
3. *मनुस्मृति-6/87, ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थो यतिस्तथा ।*
   एतेगृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ।।
4. *महावीरचरित-2/2, वीर्योत्कर्षैर्यदमृतभुजांनिर्ममेपद्मयोनिस्तस्य द्वैधं व्यधितधनुषः शांभवीयस्यरामः ।*
   दिव्यामस्त्रेपनिषदमृषेर्यः —शाश्वस्य शिष्याद्विश्वामित्राद्विजयजननीमप्रमेयः प्रपेदे ।।
5. *उत्तररामचरित-2, पृष्ठ-122, तदनन्तरंभगवतैकादेशेवर्षे क्षात्रेणकल्पेनोपनीयः त्रयीविद्यामध्यापितौ ।*
6. *मनुस्मृति-3/4, गुरूनामनुमतः स्नात्वासमावृत्तो यथाविधि । उद्वहेत द्विजोभार्यांसवर्णां लक्षणान्विताम् ।*
7. *उत्तररामचरित-6/31-32, प्रियातुसीतारामस्य दाराः पितृकृताइति ।*
   गुणैरुपगुणैश्चापिप्रीतिर्भूयोऽप्यवर्धत ।
   तथैवरामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपिप्रियोऽभवत् ।
   हृदयंत्वेवजानातिप्रीतियोगंपरस्परम् ।
8. *उत्तररामचरित-1/39, अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतंसर्वास्वस्थासु यद्विश्रामोहृदयस्य यत्राजरसा यस्मिन्नाहार्योरसः ।*
   कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारेस्थितंभद्रंतस्य सुमानुषस्य कथमप्येकंहितत्प्रार्थ्यते ।
9. *उत्तररामचरित-3/17अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् । आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमितिपठ्यते ।*
10. *उत्तररामचरित-2,पृष्ठ-137, वासन्ती- का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी* ?
    आत्रेयी-हिरण्मयी सीताप्रकृतिर्गृहिणी कृता ।
11. *उत्तररामचरित-3,पृष्ठ-205, (ततः प्रविशतिभूम्यांनिपतितः सास्रयासीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छ्वासो रामः ।)*
12. *उत्तररामचरित-3,पृष्ठ-236, (सखि वासन्ति! त्वमेवदारुणाकठोराच । यैवंप्रलपन्तं प्रलापयसि ।)*
13. *उत्तररामचरित-1/25, एतानितानिगिरिनिर्झरिणितटेषुवैखानसाश्रिततरुणितपोवनानि ।*
    येष्वातिथेयपरमा यमिनोनीवारमुष्टिपचनागृहिणोगृहाणि ।
14. *उत्तररामचरित-1/22, पुत्रासंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् धृतंबाल्येतदार्येणपुण्यमारण्यकव्रतम् ।*
15. *मालतीमाधव-1,पृष्ठ-11, अवलोकिता-महान्खल्वेषभगवत्याश्चित्तवाक्षेपः । आश्चर्यम् । यदिदानींचीरचीवर मात्रा परिच्छदांपिण्डपात मात्राप्राणवृत्तिमपिभगवतीमी–शेष्वायासेश्वमात्यभूरिवसुर्नियो जयति*
16. *मनुस्मृति-1/26, कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौव्यवेचयत् । द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ।*
17. *मनुस्मृति-8/15, धर्म एवहतोहन्ति धर्मो रक्षतिरक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्योमानो धर्मोहतोऽवधीत् ।*
18. *उत्तररामचरित-4/23, नूनंत्वयापरिभवं च वनं च घोरंतां च व्यथांप्रसवकालकृतामवाप्य ।*
    क्रव्याद्गणेषुपरितः परिवारयत्सु संत्रस्तया शरणमित्यसकृतमृतोऽहम् ।
19. *मालतीमाधव-2/1, मनोरोगस्तीव्रोविषमिवविसर्पन्निविरतंप्रमाथी निर्धूमंज्वलतिविधुतः पावकइव ।*
    हिनस्तिप्रत्यङ्गंज्वरइवगरीयानितइतो न मां त्रातुंतातः प्रभवति न चाम्बा न भवती ।
20. *महावीरचरित-1/30, कन्यारत्नमयोनिजन्मभवतामास्तेवयंचार्थिनोरत्नंचेत्क्वचिदस्तितत्परिणमत्यस्मासु शक्रादपि ।*
    कन्यायाश्चपरार्थतैवहिमतातस्याः प्रदानादहंबन्धुर्वोभवितापुलस्त्यपुलहप्रष्ठाश्च संबन्धिनः ।

21. मालतीमाधव-2,पृष्ठ-111, कामन्दकी-प्रभवतिप्रायः कुमारीणांजनयितादैवं च।
22. महावीरचरित-3/2, संज्ञप्यतेवत्सतरीसंर्पिष्यन्नं च पच्यते। श्रोत्रिय श्रोत्रियगृहानागतोऽसिजुषस्वः नः।
23. उत्तररामचरित-3/24, ददतुतरवः पुष्पैरर्घ्यंफलैश्च मधुश्च्युतः स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तुवनानिलाः। कलमविरलंरज्यत्कण्ठाःक्वणन्तु शकुन्तयः,पुनरिदमयंदेवोरामः स्वयंवनमागतः।
24. मालतीमाधव-9/53, गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजामृइमामाकर्षिणींसिद्धिमातनोमिशिवाय वः।
25. मालतीमाधव-10/25, शिवमस्तुसर्वजगतांपरहितनिरताभवन्तुभूतगणाः। दोषाःप्रयान्तु शान्तिंसर्वत्र सुखीभवतुलोकः।
26. मालतीमाधव-5/26, मरणसमये त्यक्त्वाङ्कं प्रलापनिरर्गलं- प्रकटितनिजस्नेहः सोऽयं सखा पुर एव ते। सुतनुविसृजोत्कम्पंसप्रत्यसाविहपाप्मनः फलमनुभवत्युग्रंपापः प्रतीपविपाकिनः।
27. मनुस्मृति-3/56, यत्रनार्यस्तुपूज्यन्तेरमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्तेसर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।
28. उत्तररामचरित-1/38,पूर्वार्द्ध, इयंगेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयोरसावस्याः स्पर्शोवपुषिबहुलश्चन्दनरसः।
29. मालतीमाधव-4,पृष्ठ-97, मकरन्दः-अद्याहमन्तर्नगरमेव-----------------------------------नास्मि
30. महावीरचरित-1/37, उत्तालताटकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः। नियुक्तस्ततप्रमाथाय स्त्रैणेनविचिकित्सति।
31. उत्तररामचरित-2,पृष्ठ-131, आत्रेयी-विश्रान्तास्मिभद्रे! संप्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानंब्रूहि।
32. उत्तररामचरित-1,पृष्ठ-53, सीता- एते खलुतत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरोविवाहदीक्षिताः।
33. मालतीमाधव-1,पृष्ठ-1, कामन्दकी-अपि नाम कल्याणीनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोरनयोर्मालतीमाधवोरभिमतं पाणिग्रहमङ्गलं स्यात्?
34. मनुस्मृति-7/35, स्वे स्वे धर्मेनिविष्टानांसर्वेषामनुपूर्वशः।वर्णाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता।
35. महावीरचरित-5/30, विशिष्टभागधेयानां द्वयी नः परमागतिः। धर्मः प्रकृष्यमाणो वा गोप्ता धर्मस्य वा भवान्।।
36. उत्तररामचरित-2/2, स्नेहंदयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।अराधनाय लोकस्य मुञ्चतोनास्ति मे व्यथा।

8

भवभूति के रूपकों में आश्रम व्यवस्था

अंकिता यादव

आश्रम व्यवस्था प्राचीन समाज को सुव्यवस्थित, सुगठित और सुसंस्कृत रूप प्रदान करने के लिए हमारे प्राचीन मनीषियों ने आश्रम चतुष्टय के सिद्धान्त की कल्पना की। हमारा समस्त शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास आश्रम चतुष्टय पर आधारित है। जिस प्रकार वर्ण चतुष्टय भारतीय संस्कृति की प्रमुख देन है उसी प्रकार आश्रम भी हमारी संस्कृति का प्रमुख अंग है। वस्तुतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति के ही निमित्त जीवन को चार आश्रमों के रूप में विभक्त करने की व्यवस्था की गई।

आश्रम शब्द 'आ' उपसर्गपूर्वक 'श्रम' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है, श्रम करना या प्रयास करना। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था वह 'सोपान' है जिसमें मनुष्य पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए अथक परिश्रम करता है। आश्रम व्यवस्था में मनुष्य सामाजिक नियमों में आबद्ध होकर अपनी आयु के अनुसार व्यक्तिगत उन्नति से सम्बद्ध कर्तव्यों को करता है। माध्यम के रूप में आश्रम मनुष्य को उद्देश्य प्राप्ति के निमित्त उत्प्रेरित करते हुए जीवन के विभिन्न कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के निर्वहण का अवसर प्रदान करता है। संस्कृत के प्रायः सभी सभी साहित्यकारों ने इस चतुराश्रम की उदात्तता के विभिन्न पक्षों को वर्णित किया है। भवभूति ने अपने रूपकों में चारों आश्रमों का वर्णन प्रमुखता से किया है।

ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का वर्णन भवभूति की रचनाओं में पूर्णतः देखने को मिलता है। उत्तररामचरितम् में ब्रह्मचारी वेषधारी लव को देखकर राम कहते हैं कि चन्द्रकेतु का यह मित्र मनोहर और शुभ लक्षणों से युक्त है। उपनयन संस्कार के पश्चात ही आश्रमों में वेदाध्ययन के साथ ही विद्या का ज्ञान प्रदान किया जाता था। ब्रह्मचारी वेषधारी लव की देखकर माता कौशल्या मन्त्रमुग्ध हो जाती हैं। कंचुकी ब्रह्मचारी वेष में देखकर कहती है यह बालक निचित ही क्षत्रिय ब्रह्मचारी है।[1] **कंचुकी- नूनं क्षत्रिय ब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।** उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक में लिखा है-क्षत्रिय ब्रह्मचारी के दोनों बगल तरकस से युक्त हैं कङ्कपक्ष युक्त बाण है, वक्षस्थल भस्म के लेपन से सुशोभित हो रहा है।[2] रूरू नामक मृग का चर्म धारण किये हुए है, वस्त्र मंजीठी के रंग से रंगा हुआ है हाथ में धनुष है, रुद्राक्ष की माला है और पीपल का दण्ड भी ही।[2] **चूड़ाचुम्बित कङ्कपत्रम् दण्डोऽपरः पैप्पलः।।** उत्तररामचरितम् में महर्षि वाल्मीकि ने लव तथा कुश को ग्यारह वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार करके वेद का ज्ञान दिया था[3] मालतीमाधव में भगवती कामन्दकी सन्यासिनी हैं, तेजस्विनी है श्रेय मार्गगामिनी एवं अखण्ड ब्रह्मचारिणी हैं।[4] महावीरचरितम् के प्रथम अंक में राजा कुशध्वज लव और कुश

कुमारों को देखकर कहते हैं-स्वभावतः पवित्र शोभाधारी यह दोनों कौन हैं? मालूम होता है कि क्षत्रिय राजकुमार हों और उपनीत हो चुके हों। क्षत्रिय जाति तथा ब्रह्मचर्य आश्रम और बाल्यावस्था की कैसी रमणीय मूर्ति है।[5] ब्रह्मचारी को गुरु की आज्ञा का पालन करना पड़ता है, इस कारण श्री राम विश्वामित्र की आज्ञा होने पर ताड़का (स्त्री राक्षसी) का वध करते हैं। बह्मचारी जागदग्नय अपनी शिक्षा की चर्चा करते हुए कहते हैं कि शिव जी से धर्म, अध्यात्म तथा धनुर्वेद की शिक्षा पाई है इसी कारण वसिष्ठ आराध्य होने पर भी हमारी समानता नही कर सकते।[6]

स्मृति काल में स्मृतिकारों ने ब्रह्मचर्य आश्रम के जो नियम बनाये थे भवभूति ने उन्हीं नियमों के अनुसार पात्रों के जीवनचर्या का वर्णन किया है। ब्रह्मचर्य आश्रम में स्वास्थ्य, चरित्र एवं बौद्धिक परिपक्वता प्राप्त कर लेने के उपरान्त गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का विधान भारतीय संस्कृति में प्रचलित है। ब्रह्मचर्य आश्रम में मानव जिस शक्ति एवं ज्ञान का अर्जन करता है उसका उपयोग गृहस्थाश्रम में ही किया जाता है। आश्रमों में गृहस्थाश्रम को सबसे प्रधान आश्रम की संज्ञा दी जाती है। आश्रमों के क्रम में गृहस्थाश्रम का द्वितीय स्थान था परन्तु महत्त्व की दृष्टि से यह प्रथम था। अन्य आश्रम इसी पर निर्भर थे। मनु[7] ने इसे सभी आश्रमों का आधार बतलाया है। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरितम् में गृहस्थ आश्रम के नियमों का दक्षता से प्रयोग किया है। अष्टावक्र मुनि वसिष्ठ की बातो को बतलाते हुए सीता से कहते है कि आप वीर पुत्र की माता हो ऐसा वसिष्ठ जी ने आपको आशीर्वाद दिया है।[8] उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक में भगवान राम स्वयं ही गृहस्थाश्रम धर्म स्वीकार करते हुए सांसारिक सुख के साथ जीवन व्यतीत करने की बात कहते हैं[9]- **गृहिणश्च रताः स्वधर्मे, सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः।।** महर्षि वाल्मीकि सप्तम अंक में भगवान राम को राज्याश्रमनिवासोऽपि कहकर सम्बोधित करते हैं इस सम्बोधन से यह ज्ञात हो जाता है कि राम गृहस्थाश्रम जीवन में निवास करते थे। गृहस्थाश्रम ही एकमात्र ऐसा आश्रम है जिसमें कि मानव सन्तान उत्पत्ति करके सृष्टि प्रक्रिया के संचालन में अपना योगदान देता है। पुरुष स्त्री विधिपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार करके भौतिक दृष्टि से पूर्णता प्राप्त करते हैं, एकात्मकता प्राप्त करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं एवं दान, भिक्षा, आतिथ्य सत्कार आदि द्वारा अन्य आश्रम वासियों का पोषण करते हैं। महावीर चरितम् में महर्षि विश्वामित्र-राजर्षि दशरथ के चारों पुत्रों का विवाह तय करके उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराते है।[10] मालती माधव में भगवती कामन्दकी की योजनानुसार मालती-माधव, मदयन्तिका-मकरन्द और मन्दारिका-कलहंस का मंगल विवाह सम्पन्न होता है और वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते है।[11] महावीरचरितम् में राजा दशरथ गृहस्थाश्रम के नियमानुसार अपने सत्य धर्म का पालन करते हैं जिसके कारण प्रिय पुत्र राम को वन गमन का आदेश देते हैं। द्वितीय अंक में मिथिलापति पुरोहित शतानन्द परशुराम से कहते हैं, मैं आतिथ्य सत्कार के लिए तैयार हूँ, जिस पर परशुराम कहते हैं शतानन्द तुम राजपुरोहित, गृहस्थ याज्ञवल्क्य के शिष्य हो तुमसे सब कुछ सम्भव है।[12] उक्त प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि महाकवि भवभूति ने धर्मशास्त्रानुसार गृहस्थाश्रम एवं आदर्श दाम्पत्य जीवन के सजीव चित्रण को अपने रूपकों में प्रस्तुत किया है। गृहस्थाश्रम में विविध भागों का उपभोग करके मानव मोह एवं ममता के बन्धनों में फंसने लगता है उसे सांसारिक जंजाल से खींचकर जीवन के चरमलक्ष्य की ओर उन्मुख करने के पावन उद्‌देश्य से वानप्रस्थ आश्रम का विधान किया गया था। वानप्रस्थ का अर्थ वन को प्रस्थान करना है। मनु के अनुसार गृहस्थ पुरुष को जब शरीर पर झुर्रियां दिखाई दें, सिर के बाल सफेद हो जायें, पुत्र के भी पुत्र उत्पन्न हो जायें, तब उसे वन में निवास करना चाहिए[13]। इस अवस्था में मनुष्य को वन में जाकर एकान्त जीवन व्यतीत

करना प्रारम्भ करना चाहिए। महाकवि भवभूति ने अपनी रचना में वानप्रस्थाश्रम का वर्णन किया है। उत्तरीरामचरितम् में लक्ष्मण अर्जुन नामक चित्रकार के द्वारा चित्रित राम के चित्र को दिखाते हुए कहते हैं कि पुत्र को राजलक्ष्मी सौंपकर इक्ष्वाकुवंश के वृद्ध राजाओं ने जो वनवास का व्रत लिया था, उस पवित्र व्रत को आर्य (राम) ने बाल्यावस्था में ही ले लिया।[14] इससे स्पष्ट है कि वानप्रस्थ पवित्र व्रत माना जाता था। राम ने इस आश्रम में शास्त्रों में निर्दिष्ट आयु से पूर्व ही सीता के साथ प्रवेश किया था। महावीरचरितम् के चतुर्थ अंक में युधाजित कहते हैं कि राम वन गमन के समय वृद्ध प्रजाओं का समूह तथा बूढ़े साकेतवासी ब्राह्मण वाजपेय यज्ञ के पात्रों को अपने कन्धे पर लाद कर पीछे चल रहे हैं और उनकी स्त्रियाँ यज्ञाग्नि ढो रही हैं।[15] **''स्कन्धारोपित यज्ञपात्रनिचया धावन्ति वृद्धा अपि''।।** धर्मशास्त्रियों के नियमुनसार वानप्रस्थियों को यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली सामग्री साथ रखना आवश्यक होता है। वानप्रस्थ अपने निवास के लिए आश्रमोंपयोगी स्थान चुनते थे तथा उन आश्रमों के समीप पर्वत, सरोवर आदि भी होते थे। प्राचीन समय में मुनि सकुटुम्ब वन में रहते थे और विद्यादान भी करते थे भवभूति ने अपने रूपकों में वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का सकुटुम्ब वन में रहने का उल्लेख किया है।

संन्यास आश्रम मानव जीवन का चतुर्थ सोपान है। मोक्ष का हेतु भूत एवं जीवन का अन्तिम आश्रम है। वानप्रस्थ के पश्चात संन्यास आश्रम का प्रारम्भ होता था। संन्यास ग्रहण कर आत्मलीन हो जाना मनुष्य जीवन की सार्थकता मानी जाती थी। सर्वकर्मफल का त्याग ही संन्यास है।[16] **काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः।** भवभूति के नाटकों में संन्यास आश्रम की शक्ति एवं साधना का प्रभाव एवं चमत्कार वर्णित है। महावीर चरितम् में जामदग्न्य वसिष्ठ संवाद में सन्यासाश्रम के लिए प्रेरित करते हुए उसके द्वारा प्राप्त परिणाम का विस्तृत वर्णन किया है वसिष्ठ जामदग्न्य से कहते हैं कि वत्स जीवन पर्यन्त इस अस्त्र ग्रहण और त्याग के फेर में क्यों पड़े हो?[17] तुम वेदाध्यायी हो और वनवासी भी इसलिए पवित्र मार्ग को अपनाओ जिससे तुम्हे आन्तर ज्योति के दर्शन हों, और तेजोबल की वृद्धि होगी। मालती माधव में बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकी का चरित्र है। इस चरित्र के द्वारा भवभूति ने विरक्त संन्यासियों के लिए मानों यह संदेश दिया हो लोक मंगल की भावना के लिए संन्यास धर्म की साधना का भी सदुपयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ऋष्यश्रृंग, याज्ञवल्क्य, जनक, वसिष्ठ, श्रमणा, आत्रेयी, गोदावरी आदि पात्र भी संन्यासी के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार भवभूति ने अपने रूपकों में आश्रम चतुष्टय का महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया है।

सन्दर्भ -

1. *उत्तररामचरितम् 4.19*
2. *वही 4.20*
3. *वही 2.3*
4. *मालतीमाधव 9.11*
5. *महावीरचरितम् 1.6, 17*
6. *वही 3.37*
7. *मनुस्मृति 4.77*
8. *उत्तररामचरितम् 1.9*
9. *वही 2.22*
10. *महावीरचरितम् 1.58*
11. *मालतीमाधव 1.12*
12. *महावीरचरितम् 2.49*
13. *मनुस्मृति 6.2*
14. *उत्तररामचरितम् 3.17*
15. *महावीरचरितम् 4.57*
16. *गीता 18.2*
17. *महावीरचरितम् 3.4*

9

महाकवि भवभूति का राजधर्म

सञ्जय कुमार

पदवाक्यप्रमाणज्ञ से विभूषित महाकवि भवभूति जब समाज चिन्तन की बात करते हैं तो उनकी दृष्टि सर्वप्रथम राजधर्म की ओर जाती है। राजधर्म ही समाज का पथ-प्रदर्शन करता है। समाज के कर्त्तव्यबोध का नियामक राजधर्म ही है। इसके अन्तर्गत राजा और प्रजा दोनों आती हैं। दोनों का अस्तित्त्व राजधर्म के ही अधीन है। यदि राजा राजधर्म के अनुसार कर्त्तव्य पालन से विमुख होता है या प्रजा राजधर्म के अनुसार कर्त्तव्य निर्वाह के प्रति सचेत नहीं रहती है तो दोनों के लिए यह अवस्था उचित नहीं है। धर्मशास्त्रों के अनुसार सबको राजधर्म के अनुसार ही जीवन यापन करने की स्वतंत्रता है। आज जिस प्रकार सभी लोग भारतीय संविधान के अनुसार कार्य करते हैं उसी प्रकार भवभूति कालीन समाज राजधर्म के अनुसार आचरण-व्यवहार करता था। संविधान की तरह राजधर्म से भी ऊपर कोई नहीं है। इस बात का संकेत राजा राम के प्रजापालन नीति से भवभूति करते हैं-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[1]

अर्थात् प्रजा के अनुरंजन के लिए प्रेम, दया, सुख अथवा जानकी को भी छोड़ते हुए मुझे (राम को) रंचमात्र भी कष्ट नहीं होगा। यह एक राजा के कर्त्तव्य पालन के संकल्प की उच्चतम् भावना है। वह प्रजा के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है। राजा का व्यक्तिगत जीवन नहीं उसका जीवन सांस्कृतिक होता है। इसीलिए तो भवभूति लिखते हैं- युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः[2] अर्थात् तुम प्रजा को प्रसन्न करने में तत्पर रहना, उससे ही यश होगा, जो कि तुम लोगों के लिए परम धन है। रघुवंशीय राजाओं के लिए यश की परम धन है। यही बात कालिदास भी कहते हैं- यशसे विजिगीषूणां[3], अर्थात् अपना यश बढ़ाने के लिए ही दूसरे का देश जीतते थे। प्रजारंजन के सम्बन्ध में भवभूति और एक महत्त्वपूर्ण बात करते हैं कि जनता को प्रसन्न रखना सज्जनों का कर्त्तव्य है, जिसको पिताजी (दशरथ) ने मुझे तथा अपने प्राणों को छोड़कर पूरा किया है।[4] इसलिए प्रजापालन या प्रजारंजन का अपना महत्त्व है। राजधर्म में यही बात सबसे महत्त्वपूर्ण है। राजा के द्वारा प्रजा के प्रति समुचित व्यवहार ही धर्म बन जाता है। यही उसका राजधर्म भी है। साथ ही महाकवि भवभूति का यह भी निर्देश है कि प्रजा राजा के आदेश को माने और सदैव राजा के अनुकूल रहे। राजा प्रजा के प्रति उत्तरदायी होता है और प्रजा भी राजा के प्रतिकूल न रहे यही राजधर्म का अनुशासन है। राजा और प्रजा के सहभाव और सहयोग से ही राज्यानुशासन स्थिरता को प्राप्त करता है। श्रीमद्भागवत्पुराण में तो यहाँ तक कहा

गया है कि प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह राजा का अपमान न करे, चाहे यदाकदा वह अत्यन्त पापपूर्ण कृत्य करता हुआ ही क्यों न प्रतीत हो। अपने तेज के कारण राजा अन्य शासनकर्त्ता प्रमुखों से सदैव अधिक प्रभावशाली होता है।[5] यहाँ पर भागवतकार का मानना है कि केवल राजा का पाप कर्म प्रतीत होने पर उसके विपरीत नहीं होना चाहिए बल्कि ठीक प्रकार से जानकर राजा के कार्यों का विरोध करना चाहिए। ठीक यही बात उत्तररामचरित के शम्बूक वध के सम्बन्ध में भी प्रतीत होती है। राम के द्वारा एक तपस्वी शूद्र को मारा जाता है। जो निश्चित रूप से किसी भी काल में ठीक नहीं कहा जा सकता है। लेकिन राम के द्वारा ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु के कारण केवल शम्बूक नहीं मारा गया अपितु उसे मारने का उद्देश्य कुछ और बताया गया है। पंचवटी में पहुँचने पर राम का शम्बूक स्वागत करता है। राम के आने का समाचार उसे महर्षि अगस्त से मिला हुआ है। ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु तो शम्बूक उद्धार की एक मात्र योजना है। राम के कृपाण चलाते ही वह दिव्य रूप को प्राप्त करते हुए कहता है- **''दत्ताभये त्वमि यमादपि दण्डधारे संजीवतः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते सत्संगजनि निधनान्यपि तारयन्ति।।''**[6] अर्थात् यम से भी अभयदान देने वाले आपके दण्डधारण करने पर वह ब्राह्मण बालक जीवित हो उठा और मेरी यह श्रीवृद्धि (दिव्यरूप प्राप्ति) हुई। यह शम्बूक सिर झुकाकर आपके चरणों में नमस्कार करता है। सज्जनों की संगति से उत्पन्न मृत्यु भी मनुष्यों का उद्धार करती है। राम शम्बूक को वैराज नामक तेजोमय लोक को प्रदान करते हैं। शम्बूक स्वयं स्वीकार करता है कि तप के द्वारा ही मेरा कल्याण हुआ है। आपका हजारों कोस चलकर आना निश्चित ही श्रेष्ठ तप के प्रभाव के कारण ही सम्भव हुआ है। शम्बूक दिव्य रूप को प्राप्त कर प्रसन्नचित है। भवभूति कहते हैं कि उसे दुःख नहीं हर्ष है। लेकिन यह बात केवल भवभूति कहते हैं कि राम ने किस कारण से शम्बूक को मारा। मेरा मानना यह है कि शम्बूक मारा गया या नहीं मारा गया। राम को मारना चाहिए था या नहीं, यह अलग प्रश्न है। लेकिन भवभूति जिस चतुराई से राम के राजधर्म को उपस्थित किये हैं वह अद्भुत है। सामने तो वह शम्बूक का वध कर रहे हैं लेकिन परोक्ष में उसे दिव्य धाम प्रदान कर रहे हैं। यानि राजा जब कोई कार्य करता है तो उसका एक उद्देश्य होता है। कभी-कभी लगता है कि यह कार्य राजा के द्वारा ठीक नहीं हो रहा है लेकिन उसका परिणाम सुखद होता है। इसलिए राजा के कार्यों की ठीक प्रकार से समीक्षा के बाद ही उसका विरोध करना उचित है। इसी प्रकार सीता परित्याग को भी देखा जा सकता है। सीता के परित्याग के बाद भी राम सीता से मानसिक स्तर पर अलग नहीं हुए हैं। उन्हें सीता परित्याग का अपार कष्ट है। वे चिर-परिचित स्थलों के देखकर मूर्छित हो जाते हैं। अनेक तरह के वेदना का अनुभव करते हैं। उनकी वेदना को हनुमान आदि कोई भी कम करने में सक्षम नहीं हैं। उन्हें चेतना छाया सीता के स्पर्श से आती है। वे अपने इस कुकृत्य से स्वयं भी लज्जित हैं। वह पंचवटी राम को किसी कारागार से बढ़कर पीड़ा प्रदान करती है। उस समय राम असहाय हैं। उनकी सहायता उस समय कोई नहीं कर सकता था, उनकी वेदना असहनीय है। उन्हें अपने किये हुए कार्यो पर अत्यधिक सन्ताप है। राम वहाँ राजा नहीं सामान्य जन के सामने प्रकृति न्यायाधीश के समक्ष मोनो क्षमा-याचना कर रहे हैं। वे सब प्रकार से जीवन से हताश और निराश हैं। इसलिए मैं मानता हूँ, कि भवभूति न राम को पंचवटी में उपस्थित कर दण्डित किया है। यही कवित्त्व की कसौटी है जो राजा और रंक को एक समझती है। कवि राजा राम को दण्डित भी करता है और सुखद मिलन भी करता है। यही भवभूति का दण्ड विधान है। एक कवि का दण्ड विधान है। वह भी उस कवि का जो वाणी को ऋत मानता है। सत्य मानता है। निश्चित ही राम का पंचवटी आगमन भवभूति का राजदण्ड है। और यह सत्कार्य एक कवि का है। जो राम को पूजता भी है और दण्ड भी देता है।

इसलिए राम को दण्ड के बाद अपराधी नहीं माना जाना चाहिए। राम को दण्ड विधान का साहस भवभूति के अतिरिक्त किसी कवि में नहीं है। वे राजा के कर्त्तव्यबोध का समुचित उपदेश भी देते हैं। राजा के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए भवभूति कहते हैं-

क्ष्मापालाः क्षीणतन्द्राः क्षितिवलयमिदं पान्तु ते कालवर्षा वार्वाहाः सन्तु राष्ट्रं पुनरखिलमपास्तेति संपन्नसस्यम्।
लोके नित्यप्रमोदं विदधतु कवयः श्लोकमाप्तप्रसादं संख्यावन्तोऽपि भूम्ना परकृतिषु मुदं संप्रधार्य प्रयान्तु।।[7]

अर्थात् राजा लोग आलस्य छोड़कर पृथ्वी की रक्षा करें, मेघ समय पर बरसे, राष्ट्र में सत्व सम्पन्न रूप हो, प्रसाद गुण युक्त कविता की ओर कवियों की रुचि हो, विद्वज्जन दूसरों की कृतियों का मनन कर प्रमोद प्राप्त करें। महवीरचरितम् में भवभूति राम के योग्यता के कारण उन्हें राजा बनाने की बात करते है-

त्रय्यास्त्राता यस्तवायं तनूजस्तेनाद्यैव स्वामिनस्ते प्रसादात्।
राजन्वन्तो रामभद्रेण राज्ञा लोकाः सर्वे पूर्णकामाश्च सन्तु।।[8]

अर्थात् वेदों के रक्षक आपके पुत्र राम के राजा होने से समस्त लोक प्रसन्न तथा पूर्णकाम होने की इच्छा रखते हैं। आप वैसा करें यानि राम को राजा अवश्य बनाये। तत्कालीन राजा वेद का जानकार होता था। वेद का ज्ञान राजा की योग्यता मानी जाती थी। साथ ही राम पर प्रजा को पूर्ण विश्वास है कि राम ही हमारे योग-क्षेम के रक्षक बनने के योग्य हैं। प्रजा का जिस पर विश्वास हो वही राजा बनने का अधिकारी है। यही राजतन्त्र में लोकतन्त्र की भावना मानी जाती है। जहाँ प्रजा का समुचित प्रतिनिधित्त्व रहता है। आज के लोकतन्त्र में सत्ता उसी के हाथ पहुँचती है जिसे लोग देना चाहते हैं। राजव्यवस्था में सत्ता का हस्तान्तर राजा के अधीन होती थी लेकिन प्रजा के भावनाओं का ध्यान रखना राजहित में अच्छा माना जाता था। महाभारत में प्रजा दुर्योधन के स्थान युधिष्ठिर को युवराज बनाने के पक्ष में थी। इसीलिए बार-बार दुर्योधन प्रजा को प्रभावित करने का प्रयास भी करता है। अतः राजधर्म में प्रजा का भी महत्त्व है। महावीरचरितम् में राजा के क्षमाशीलता के विषय में भी बतलाया गया है-

राजानो गुरवश्चैते महिम्नैव महाक्षमाः।
क्षमन्तां नाम न त्वेवं शतानन्दः क्षमिष्यते।।[9]

अर्थात् राजा जनक तथा वे गुरुगण अपनी महत्ता के कारण क्षमाशील हैं अतः वे क्षमा किया करे, मैं शतानन्द अब क्षमा नहीं करुंगा। यानि राजागण क्षमाशील होते हैं लेकिन राजपुरोहित क्षमाशील नहीं होता है। राजपुरोहित धर्म का प्रतीक है। यदि वह अपराध पर क्षमा करने लगे तो अव्यवस्था उत्पन्न होगी। परन्तु राजा प्रजा पालक होता है। वह प्रजा का भाग्य निर्माता होता है। इसलिए उसकी क्षमाशीलता अपेक्षित है। राजा जनक के राज्य में परस्पर राजा, प्रजा, राजपुरोहित आदि सभी अपने कर्त्तव्य पालन में संलग्न दिखलाई पड़ते हैं। इसलिए उनके राज्य की प्रशंसा करते हुए भवभूति लिखते हैं-

वयमिव यथा गृह्यो वह्निस्तथैव चिरं स्थिताः। सुचरितगुरुस्तम्भाधारे गृहे गृहमेधिनाम्।
यदि परिभवस्तत्रान्यस्मादुप्रैति धिगस्तु तत्-प्रियमपि तपो धिग्ब्राह्मण्यं धिगङ्गिरसः कुलम्।।
न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति। त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोपः परोहितः।।[10]

अर्थात् शतानन्द विश्वमित्र से कहते हैं कि हम लोग इनके सच्चरितरूप स्तम्भ पर अवलम्बित गृहस्थों के घर में गृह्य वह्नि के समान रहते आये हैं। इस स्थिति में यदि इन पर किसी दूसरी ओर से कोई आपत्ति आ जाये तो हमारे प्रिय तप तथा अंगिरा के कुल को धिक्कार है। जिस पर विश्वामित्र कहते हैं कि जनक के राष्ट्र में

न कोई पीड़ा होती है न उस पर कोई आपत्ति आती है, न वह जीर्ण होने पाता है, जिसे तुम्हारे जैसा विद्वान् ब्राह्मण राष्ट्ररक्षक पुरोहित मिला है। रघुवंश का इतिहास भी प्रजापालन की दृष्टि महत्त्वपूर्ण है। महाकवि भवभूति इसलिए राम के प्रजापालन को उपस्थित करते हुए राजा के कर्त्तव्य का उद्घाटन करते हैं-

कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा, मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।।[11]

अर्थात् खेद की बात है कि कुल की प्रतिष्ठा को धन मानने वालों को प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है। इसलिए हमारे विषय में जो अभद्र बात कही गयी है, वह तुम्हारे विषय में कहा जाना उचित नहीं है। सुगन्धित फूल का सिर पर रखा जाना स्वभावतः सिद्ध है न कि पैरों से कुचला जाना। यानि राम का मानना है सीता तो फूल की तरह सिर पर धारण करने योग्य हैं। लेकिन प्रजारंजन के लिए उसका त्याग करना पड़ रहा है। सीता परम पवित्र देह का नाम है। यह बात राम भली-भांति जानते हैं। परन्तु राजकर्त्तव्य के कारण उन्हें सीता का त्याग करना पड़ रहा है। इसलिए राजधर्म को तलवार के धार पर चलने के समान बहुत कठिन माना गया है। रघुवंशीय राजा प्रजाहित को ही सर्वोपरि मानते हैं। प्रजाहित ही उनका अपना कुलधन है। यह बात उत्तररामचरित के सातवें अंक में भवभूति कहते हैं। **इच्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः कृत्स्नो लोकस्तदिह विषमे किं स वत्सः करोतु**[12] अर्थात् इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का यह कुलक्रमागत धन है कि सारी प्रजा को प्रसन्न रखा जाए। अतः इस विषम परिस्थिति में वह बालक (बेचारा राम) क्या करता यानि सीता परित्याग के अतिरिक्त राम के सामने और कोई मार्ग नहीं था। उस राजधर्म के पालन के लिए बहुत साहस और धैर्य की आवश्यकता होती है। वह साहस और धैर्य राम में दिखलाई पड़ता है। निरपराध और प्राणवल्लभा का परित्याग कोई आसान बात नहीं है। फलस्वरूप भवभूति को लिखना पड़ता है कि **विशेषतः रामभद्रस्य बहुप्रकार कष्टो जीवलोकः।**[13] अर्थात् विशेष रूप से रामभद्र के लिए यह संसार अनेक प्रकार के कष्टों से युक्त है। इसीलिए राम भी कहते हैं रामोऽस्मि सर्व सहे[14] अर्थात् मैं राम हूँ सब कुछ सह लूंगा। यही राजधर्म का चरम उत्कर्ष है, जहाँ राजा का व्यक्तिगत जीवन समाप्त हो जाता है। प्रजा का सुख-दुःख राजा का सुख दुःख बन जाता है। राजा राम दण्डकारण्य में पहुँचते ही पूर्व चिर-परिचित स्थलों को देखकर कह उठते है- **न किल भवती देव्याः स्थानं गृहेऽभियतं ततस्तृणामिव बने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।**[15] अर्थात् देवी सीता का घर में रहना आप लोगों को वस्तुतः पसन्द नहीं था। इसलिए मैंने निर्जन वन में तिनके के समान उसे छोड़ दिया और उसका शोक भी नहीं किया। यही है भवभूति का राजधर्म। जिसमें राजा के सर्वस्व बलिदान की व्याख्या की गयी है। राजा वही बनने का अधिकारी है जिसमें सर्वस्व त्याग का आत्मबल हो। आज के सन्दर्भ में भवभूति बहुत प्रासंगिक हो जाते हैं जब राजनीति स्वार्थ की ओर झुकी हुई दिखलाई पड़ती है। आजकल राजनेताओं में विशेष रूप से स्वहित की कामना अधिक है। प्रजाहित पीछे छूट गया है। सत्ता प्राप्त करने के लिए तरह-तरह प्रजा के साथ भावनात्मक षड्यन्त्र राजधर्म के अनुरूप नहीं है। राजधर्म तो सदैव प्रजा वर्ग के सांस्कृतिक और आत्मिक उत्थान पर बल देता है। वह कभी भी प्रजा के साथ राजनीति नहीं करता। उसकी राजनीति तो वैदेशिक होती है। वह अन्य राज्यों के सत्ता संघर्ष का लाभ उठाना जानता है न कि अपने ही देश में षड्यन्त्र रचकर सत्ता प्राप्त करने का आदि होता है। राजा के बाद प्रमुख राजांग मन्त्री होता है। वही राजा को परामर्श देता है। राजा और मन्त्री में परस्पर अच्छे सम्बन्ध की बात शास्त्रों में कही गयी है। जब राजा और मन्त्री में मतभिन्नता नहीं होती है तभी राज्य में श्रीवृद्धि होती है। इसीलिए राजाओं के मन्त्री राजा का मित्र या बचपन के साथी को बनाया जाता है। मन्त्री का विश्वासपात्र होना आवश्यक है। राजा और मन्त्री में अन्तरंगता इतनी होनी चाहिए कि

राजा राज्य की समस्या के साथ व्यक्तिगत जीवन के विषय में भी उससे बिना संकोच बात कह सके। यह बात विशेष रूप से राजा दशरथ के मन्त्री समुन्त्र में दिखलाई पड़ती है। समुन्त्र राजा दशरथ के अच्छे मित्र थे, दशरथ के बाद भरत के समय में भी मन्त्री सुमन्त्र ही थे और राम तो मन्त्री सुमन्त्र को अपने पिता के समान समझते थे। लेकिन भवभूति मन्त्रियों को अपने नाटकों में कम महत्त्व दिये हैं। हो सकता है भवभूति के समय में मन्त्रियों में विश्वसनीयता कम हो गयी रही हो। मन्त्रियों का स्थान मैं देखता हूँ कि गुरु, राजपुरोहित, ऋषि आदि में संक्रान्त हो गया था। वसिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द, अष्ट्रावक्र, वाल्मीकि आदि अनेक स्थलों पर राजा को परामर्श देते हुए सामने आये हैं लेकिन रावण का मन्त्री माल्यवान तरह-तरह से अपने राजा के हित साधन में संलग्न दिखलाई पड़ता है। माल्यवान बहुत बुद्धिमान है। राम-रावण युद्ध अभी बहुत दूर है परन्तु उसका उस समय की परिस्थिति का चित्र अंकित करके अपने सहकर्मियों को समझाना तथा तदनुसार आचरण करना माल्यवान के दूरदर्शिता का परिचायक है। बाली और परशुराम से भी उसकी अच्छी मित्रता है। विभीषण, खरदूषण आदि उसके अपने हैं। लेकिन इनके प्रति भी वह बहुत सावधान है। उसके द्वारा की गयी पक्ष-विपक्ष विवेचना तथा राजनैतिक घात-प्रतिघात का अंकन भवभूति बड़े चतुराई से करते हैं। जिससे मन्त्री के कर्त्तव्यबोध की झलक मिलती है। माल्यवान बुद्धिमान होने के साथ स्वाभिमानी भी है। वह रावण की सेवा तो बहुत उत्साह से करता है परन्तु रावण के आलस्य, औद्धत्य, अविचार आदि उसे अच्छे नहीं लगते हैं, जिसके लिए वह खेद प्रकट करता है–

व्यसनेऽस्मिन मन्त्रशक्त्या यद्यत्प्रतिकृतं मया। अलसस्य यथा कार्यं तत्तत्प्रच्युतमात्मना। सचिव्यं नाम महते संतापाय। यत्किंचिद् दुर्मदाः स्वैरस्माद्रियन्ते तिरर्गलम्। तत्र तत्र प्रतीकारश्चिन्त्यो वक्रे विधावपि।।[16]

अर्थात् इस आपत्ति में मन्त्रणा के द्वारा हम जो रक्षा किये थे वह सब उलट-पलट गया, जैसे आलस्यशील जन का कार्य उलट जाता है। मन्त्री पद अत्यन्त कष्टदायी है। मदान्ध राजागण को यथेच्छ आचरण और भाग्य के विपरीत रहने पर भी उनका प्रतिकार सोचना चाहिए। लेकिन रावण अहंकार में चूर है। उसे अपने वीरता पर घमण्ड है। जिस पर माल्यवान को बहुत चिन्ता है। रावनण की अविनयता पर वह कहता है- **बीजं यस्य विदेहराजतनयाच्ञ्ङ्कुरोऽपि स्वसुर्यात्र तौ परिवञ्चितुं किसलयं मारीचमायाविधिः। शाखाजालमयोनिजापहरणं तस्य स्फुटं कोरकाः कीशाधीशवधोऽनुजस्य गमनं सख्यं तयोस्तेन च।।**[17]

अर्थात् सीता की प्रार्थना ही इस वृक्ष का बीज है। शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण की वञ्चना के लिए जाना अंकुर है। मारीचकृत माया नये पत्ते है। सीतापहरण शाखा है। अक्षयकुमार का वध और विभीषण का जाकर उनसे मैत्री स्थापना करना कलि है यानि रावण सन्धि नहीं कर सकता है। रावण के अहंकार में वृक्ष फल लगने वाला है। यानि उसका विनास होने वाला है। यह बात माल्यवान मन्त्री समझ जाता है। मालतीमाधवम् प्रकरण में भवभूति ने दो मन्त्रियों का उल्लेख किया है- भूरिवसु और देवरात। भूरिवसु पद्मावती के अधीश्वर का मन्त्रीपद स्वीकार कर लिया था और देवरात विदर्भ नरेश मन्त्री पद संभाला हुआ था।[18] यहाँ बता दें कि देवरात का पुत्र माधव है तथा भूरिवसु की पुत्री मालती है। संस्कृतनाट्य परम्परा में राजकुमार और राजकुमारियों को ही नायक और नायिका की भूमिका में देखा गया है लेकिन मालतीमाधवम् में भवभूति ने मन्त्री-पुत्र और मन्त्री कन्या को नायक और नायिका के रूप में रूपायित किया है। इसी रूप में भवभूति जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र आदि का भी उल्लेख करते हैं। जनपद का तात्पर्य यहाँ राज्य से है। भवभूति अयोध्या, साकेत, मिथिला, लंका, विदर्भ आदि अनेक राज्यों का उल्लेख अपने रूपकों में करते हैं। दुर्ग, कोश और दण्ड भी तत्कालीन

प्रचलित व्यवस्था के अंग के रूप में दृष्टिगोचर होती है। भवभूति राजदण्ड के महत्त्व को महावीरचरितम् में व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्राश्यचित की तरह राजदण्ड को भी धर्माचार्यों ने शुद्धि का कारण कहा है।[19] राजदण्ड के विषय में महावीरचरितम् में कहा गया है-

असाध्यमन्यथादोषं परिच्छिद्य शरीरिणः। यथा वैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति।।[20]

अर्थात् शरीरियों में जब दोष का शमन किसी अन्य प्रकार से नहीं होता दीख पड़ता है तब राजा को वैद्य की तरह अस्त्र प्रयोग करना ही होता है। दण्ड का लक्षण करते हुए शुक्रनीति में बतलाया गया है-

निवृत्तिरसदाचाराद् दमनं दण्डतश्च तत्। येन् सन्दम्यते जन्तुरुपायो दण्ड एव सः।
स उपायो नृपाधीन स सर्वस्व प्रभुंर्यतः।।[21]

दण्ड से या बुरे आचरण से मनुष्य का दमन होता है, अतः जिस साधन से जीव का ठीक प्रकार से दमन होता है, उसे दण्ड कहते हैं। राजा सभी का स्वामी होता है, अतः वह दण्ड नामक उपाय का भी स्वामी है। यहाँ पर कई प्रकार के दण्ड का उल्लेख भी किया गया है। यथा- झिड़कना, अपमानित करना, भूखे रखना, बाधना, पीटना, धन छीन लेना, नगर से निकाल देना, देह दगवाना, बुरे ढंग से सिर मुड़वा देना, गदहे पर चढ़ाकर घुमाना, अंग-भंग करवा देना, तथा जान से मरवा डालना, युद्ध करना ये सभी दण्डनीति के भेद हैं।[22] यहाँ पर राजधर्म को परम रक्षक कहा गया है- दण्डं स्व हि धर्माणां शरणं परमं स्मृतम्।[23] महावीरचरितम् में बलवान शत्रु को छद्म दण्ड से दण्डित करने का उल्लेख किया गया है-

दण्डोऽप्यभ्यधिके शत्रौ न प्रकाशः प्रशस्यते। तूर्ष्णीदण्डस्तु कर्त्तव्यस्तस्य चायमुपक्रमः।।[24]

अर्थात् बलवान शत्रु पर प्रकाश दण्ड भी सफल नहीं होता है, इसलिए छद्म दण्ड ही उसके लिए शेष बचता है, जिसकी यह भूमिका है। यह बात राम के सम्बन्ध में माल्यवान मन्त्री करता है। वह राम को अपमानित करने के लिए सीता के हरण की योजना बनाता है। वह राम को सब प्रकार से विवश करना चाहता है। वह कहता है कि शत्रु द्वारा सीता के हरण होने पर उसके लिए मृत्यु ही शरण होगी, यदि ऐसा नहीं हुआ तथापि वह इस अपमान से इतना निष्प्रताप हो जायेगा कि उसे मरा ही समझो, यदि उसे पश्चाताप होगा तो वह सन्धि भी कर सकता है।[25] इस प्रकार यहाँ पर सन्धि-विग्रह आदि के ओर भी कवि के द्वारा ध्यान दिया गया है। साथ ही मन्त्री अपने राजा की उन्नति के लिए क्या-क्या प्रयत्न करता है, यह दिखलाया गया है। मन्त्री का यह प्रयत्न योगन्धरायण आदि की तरह ही दिखलाई पड़ता है। योगन्धरायण भी उदयन को चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिए उसका दूसरा विवाह भी करा देता है। मालतीमाधवम् में एक विशेष बात सामने आई हुई है कि बौद्ध सन्यासिनी कामन्दकी मन्त्री भूरिवसू को आदेश देती है। जिससे तत्कालीन राजव्यवस्था पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का संकेत मिलता है। वह कराला मन्दिर को चारों ओर से घेरने की बात करती हुई कहती है-

नाघोरघण्टादन्यस्मात्कर्मैतद्दारुणादभूत्। न करालोपहाराच्च फलमन्यद्विभाव्यते।।[26]

अर्थात् अत्यन्त निष्ठुर अधोर घण्ट को छोड़कर किसी दूसरे के द्वारा ऐसा घृणित मालतीहरण रूप पाप कर्म नहीं किया गया है। कराला देवी को बलिदान के निमित्त उपहार से भिन्न कोई दूसरा इसका फल भी अनुमान से नहीं जाना जाता है। इस प्रकार कपालकुण्डला को सैनिक चारों ओर से घेर लेते हैं और माधव तथा कपालकुण्डला में भयंकर युद्ध होता है। मालतीमाधवम् के आठवें अंक में युद्ध आदि का वर्णन किया गया है। युद्ध में माधव मकरन्द के बलपौरुष की प्रशंसा करते हुए कहता है-

दोर्निष्पेषविशीर्णसञ्चयदलत्कङ्कालमुन्मुध्नतः। प्राग्वीराननुपात्य तत्प्रहारणान्याच्छिद्य विक्रामतः।
उद्वेल्लद्धनपुण्डखण्डनिकराकीर्णस्य संख्योदधे र्द्वेधास्तम्भितपत्तिपङ्क्तिविकटः पन्थाः पुरस्तादभूत्।।[27]

अर्थात् पहले वीरों को एक-एक के क्रम से जमीन पर पटक कर फिर अपने बाहुओं से उनके सन्धिवन्धों को चूरकर, शरीर की अस्थियों को मर्दित कर, उनके आयुधों को छीनकर, अपना पराक्रम प्रदर्शित करने वाले प्रियवर मकरन्द के सामने चलते कबन्ध खण्डों के समूह से व्याप्त यह युद्ध रूप समुद्र के दोनों किनारों पर निश्चेष्ट पैदल सेना की पंक्ति से मार्ग महाभयंकर हो गया है। इस प्रकार यहाँ पर पैदल सैन्यबल की प्रशंसा की गयी है। सेना के चार रूप सैन्य व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया जाता है- रथ, गज, हय और पैदल। यदि भवभूति के अस्त्र-शस्त्र की बात की जाय तो वे तपोबल से प्राप्त होने वाले शस्त्रों की बात करते हैं।[28] जिसमें जृम्भकअस्त्र का उल्लेख आया है। उस अस्त्र को भगवान कृशाश्व से विश्वामित्र ऋषि प्राप्त किये थे। उसी अस्त्र को ताड़कावध के समय उन्होंने राम को अनुग्रहपूर्वक प्रदान किया था। धनुष, तलवार, गदा, भाला आदि की भी चर्चा भवभूति किये हैं, जिससे तत्कालीन सैन्य-व्यवस्था का संकेत मिलता है। बताया गया है कि यहाँ पर वीर बालक युद्ध भूमि में निरंतर प्रत्यंचा पर गूंजते हुए अग्रभाग से युक्त धनुष से सेना के ऊपर हिमपात के समान वर्षा कर रहा है।[29] एक बात और विशेष ध्यान देने योग्य यह जो भवभूति के द्वारा जृम्भक आदि अस्त्रों की बात कही गयी है वह विस्फोटक परमाणु बम के समान थे। उत्तररामचरित के छठे अंक में भवभूति आग्नेय, वारुण और वायश्य आदि दिव्य अस्त्रों का उल्लेख भी करते हैं। महावीरचरितम् षष्ठ अंक में राम और रावण के सेनाओं में घोर युद्ध का वर्णन किया गया है। एक-एक करके दोनों सेनाओं के वीर अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से मर रहे हैं। वहाँ पर मेघनाथ और लक्ष्मण के मध्य घमासान युद्ध होता है। मेघनाथ के द्वारा प्रयुक्त शक्ति से लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। राम की सेनाओं में इस घटना से विवाद छा जाता है। लक्ष्मण को बचाने के लिए हनुमान के द्वारा संजीवनी लायी जाती है, जिसका पानकर लक्ष्मण चैतन्य होकर युद्ध में तत्पर हो जाते हैं। इस अंक में भयंकर युद्ध का दृश्य भवभूति के द्वारा उपस्थित किया गया है। वहाँ पर रावण और मेघनाथ के मायायुद्ध का भी वर्णन है-

एताभ्यां राधवाभ्यां सकुतुकभिषुभिच्छिद्यमानेषु मूर्ध स्वेकस्यैकोऽप्यनन्तः किमु सरसगुणो वर्णनीयोऽपरस्य।
एतत्संपश्यतोरप्यतिचिरमनयाः कोऽप्यचिन्त्यः प्रभावो यत्रोत्साहो न धैर्य विरमति न शिरश्छेदतः पत्त्रिणोऽपि।।[30]

अर्थात् राम और लक्ष्मण अपने बाणों से रावण और मेघनाथ के शिरों को आच्छादित कर काटते है और फिर वह शिर अनन्त होकर प्रकट हो जाता है। यह देखकर भी अचिन्त्य प्रभाव के कारण न इनका धैर्य निवृत्त होता है और न इनके बाण ही शिरच्छेदन व्यापार से निवृत्त होते हैं। अनन्तर राम और लक्ष्मण दिव्यास्त्र से रावण और मेघनाद का बध करते हैं-

आभ्यां ब्रह्माच्युतास्त्रस्मरणसुरभिभिर्मार्गणै राघवाभ्या
मूर्धानौ चिच्छिदाते रजनिचरपते रावणेश्च क्रमेण।
पश्चाद्रक्षः कबन्धो मृधभुवि विवशः सोऽपि रक्षोऽवरोधः
क्षोण्यां श्रीदाशरथ्याः शिरसि च वियतः पुष्पवर्ष पपात।।[31]

अर्थात् राम और लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र और अच्युतास्त्र को स्मरण कर वाणों द्वारा रावण और मेघनाद का शिर काट डाले, पीछे से समरांगण में इनका कबन्ध पृथ्वी पर इनके दाराजन और राम-लक्ष्मण के ऊपर देवविसृष्ट गिरने लगे। भवभूति उत्तररामचरितम् में युद्ध के नियम भी बतलाये हैं-

संख्यातीतैर्द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः पदाता- वत्रैकस्मिन्कवचनिचितैर्नद्धचर्मोत्तरीये।
कालज्येष्ठैरपरवयसि ख्यातिकामैर्भवद्भि र्योऽयं वद्धो युधि समभरस्तेन धिग्वो धिगस्मान्।।[32]

अर्थात् हाथी, घोड़े और रथों पर बैठे हुए कवचधारी, आयु में ज्येष्ठ तथा अंश के इच्छुक, अगणित आप लोगों ने इस अकेले, पैदल, मृगचर्म का उत्तरीय (चादर) बांधे हुए और आयु में छोटे इस बालक पर युद्ध में जो यह सामूहिक आक्रमण का आयोजन किया है। उसके लिए आप सबको धिक्कार है। प्राचीन भारत में युद्ध का भी एक नियम होता था। उस नियम के अनुशासन में ही एक दूसरी सेनाएं और योद्धा युद्ध करते थे। यदि कोई नियम का उल्लंघन करता था तो उसकी वीरता पर सन्देह किया जाता था। या उसकी वीरता कलंकित मानी जाती थी। समाज में अपयश फैलता था। इसलिए एक वीर राजा युद्ध के नियम को भंग नहीं करना चाहता था। वे राजा मर जाना अच्छा समझते थे लेकिन अपयश या अकीर्ति लेकर जीवन जीना अच्छा नहीं मानते थे। महाभारत युद्ध में कौरव सेना वीर अभिमन्यु के साथ भी युद्ध नियम को तोड़कर जो उसके साथ बर्वरता उपस्थित की उसका दुष्परिणाम कौरव सेना को भुगतना पड़ा और द्रोण जैसे महारथी की हत्या होती है। द्रोण के रहते युद्ध नियम की अवहेलना की गयी, जिसका परिणाम सभी ने देखा है। इसलिए युद्ध नियम का सभी को ध्यान रखना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं युद्ध सम्बन्धित अनेक विषयों को भवभूति उद्घाटित करते हैं। साथ ही सुग्रीव, विभीषण आदि से मित्रता का भी विधिवत उल्लेख किया गया है। भवभूति राजा के कर्त्तव्य को भली भांति उपस्थित कर राजधर्म के नियमक तत्त्वों को उपस्थित किये हैं। भवभूति राम को भी दण्डकारण्य में सीता परित्याग की घटना पर दण्ड के समान पीड़ित दिखलाकर राजधर्म के महत्ता को इस रूप में प्रदर्शित करते है कि राजधर्म में राजा और प्रजा सभी समान होती है। सबको अपराध के अनुसार दण्ड मिलना चाहिए और भवभूति के द्वारा जो प्रजा पालन की नीति अपनायी गयी है वह सराहनीय और अनुकरणीय है।

सन्दर्भ -

1. *उत्तररामचरितम्, 1/12*
2. *वही, 1/11*
3. *रघुवंश, 1/7*
4. *उत्तररामचरितम्, 1/41*
5. *श्रीमद्भागवत्पुराण, 4/13/23*
6. *उत्तररामचरितम्, 2/11*
7. *महावीरचरितम्, 7/42*
8. *वही, 4/44*
9. *वही, 3/20*
10. *वही, 3/17-18*
11. *उत्तररामचरितम्, 1/14*
12. *वही, 7/6*
13. *वही, अंक-3*
14. *वक्रोक्ति जीवितम्, प्रथमोन्मेष*
15. *उत्तररामचरितम्, 3/32*
16. *महावीरचरितम्, 6/2-3*
17. *वही, 6/1*
18. *मालतीमाधवम् - प्रस्तावना*
19. *महावीरचरितम्, अंक-4*
20. *वही, 4/23*
21. *शुक्रनीति, 4/1/44-45*
22. *वही, 4/4/46-47*
23. *वही, 4/1/52*
24. *महावीरचरितम्, 4/4*
25. *वही, 4/5*
26. *मालतीमाधवम्, 5/33*
27. *वही, 8/9*
28. *उत्तररामचरितम्, 1/15*
29. *वही, 5/2, 6/1*
30. *महावीरचरितम्, 6/61*
31. *वही, 6/63*
32. *उत्तररामचरितम्, 5/12*

10

भवभूति के रूपकों में दार्शनिक चिन्तन

अंकित सिंह यादव

भवभूति का जन्म श्रोत्रिय ब्राह्मण वंश में हुआ था, जो कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी थे। महाकवि भवभूति विविध शास्त्रों के निष्णात पण्डित थे। इनके रूपक साहित्यशास्त्र में इनके प्रगाढ़ पाण्डित्य के द्योतक हैं। कुमारिल के श्लोकवार्तिक पर टीका लिखने के कारण इनका गूढ़ मीमांसक होना भी 'सुतरां' सिद्ध है। स्वयं भवभूति द्वारा अपने तीनों रूपकों में 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' विशेषण अपने लिए प्रयुक्त करना यह स्पष्ट करता है कि वे पद (व्याकरण) वाक्य (न्याय) तथा प्रमाण (मीमांसा) के विज्ञाता थे। भवभूति ने अनेक शास्त्रों तथा विधाओं का अध्ययन किया था। यह उनके ग्रन्थों के प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष उल्लेखों से ज्ञात होता है। भवभूति के रूपकों में दृष्टिगोचर होने वाले श्रोत्र- वचनों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। 'मालतीमाधवम' के पहले अङ्क के दसवें श्लोक में भवभूति ने सूत्रधार के मुख से अपने वेदों तथा उपनिषदों के अध्ययन के विषय में कहलवाया है-

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।
यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं। तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः।।[1]

इस श्लोकार्थ में उन्होंने वेद और उपनिषदों के अध्ययन का तथा सांख्य और योग, इन भारतीय दर्शनों के ज्ञान का उल्लेख किया है। अतः भवभूति वेद तथा दर्शनों के अगाध पण्डित थे। भगवती श्रुति के रहस्यों का उन्होंने खूब पता लगाया था। उनके ग्रन्थों में उपनिषदों के वचनों तथा तत्त्वों के अनेक उल्लेख आये हैं। याज्ञवल्क्य राजर्षि जनक के लिए प्रतिपादित बृहदारण्यकोपनिषद् के तत्त्व ज्ञान का उल्लेख भवभूति के महावीरचरितम् में तथा उत्तररामचरितम् में अनेक बार प्राप्त होता है। इस प्रकार भवभूति के रूपकों में अनेक उपनिषद् तत्त्व उपलब्ध होते हैं। भवभूति वेदान्तशास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। परमहंसों में श्रेष्ठ ज्ञाननिधि जैसे यथार्थ नाम को धारण करने वाले संन्यासी के पास उन्होंने वेदान्त का अध्ययन किया था। वेदान्त की झलक भवभूति की रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है-

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि। ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः।।[2]
एको रसः करुणः एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुद्बुदतरङ्गमयान्विकारानम्भोयथा, सलिलमेव हि तत्समग्रम्।।[3]

भवभूति ने स्वयं ही अपने सांख्य और योग दर्शन शास्त्र के अध्ययन के विषय में निर्देश दिया है।

योग का उल्लेख उनके रूपकों में अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है। सांख्य दर्शन की झलक उनके नाटक में निम्न रूप में दिखाई देती है-

इदं हि तत्त्वं परमार्थभाजामयं हि साक्षात्पुरुषः पुराणः।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृतिः किलैषा त्रातुं भुविं स्वेन सतोऽवतीर्णा।।[4]

अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों का परम तत्त्व, साक्षात् पुराण पुरुष, सत्व-रज-तम रूप तीन भागों में बँटी प्रकृति ही तो राम रूप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है। यह श्लोक सांख्य दर्शन के दो प्रधान तत्त्व पुरुष और प्रकृति की ओर संकेत करता है। कवि ने त्रिगुणात्मिका प्रकृति और पुरुष का उल्लेख करके उस परम तत्त्व की और संकेत किया है, जिसे वेदान्त में परब्रह्म की संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार क्रुद्ध परशुराम के प्रति महर्षि वसिष्ठ के निम्न उपदेशात्मक वचन योग- दर्शन के महत्त्वपूर्ण निर्देशों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं-

तत्परिचिनुचित्तप्रसादनीश्चतस्रो मैत्र्यादिभावनाः। प्रत्यासीदति हि ते विशोका ज्योतिष्मती नाम योगवृत्तिः। तत्प्रसादजं ऋतंभराभिधानं नामाबहिः साधनोपधेयसर्वार्थ सामर्थ्यमपविद्ध विप्लवोपरागमूर्जस्वलमन्त ज्योंतिषो दर्शनम्। यतः प्रज्ञानमभिसंभवति तद्ध्याचरितव्यं ब्राह्मणेन। तरति येनापमृत्युं पाप्मानम्।[5]

इस नाटक में न्याय दर्शन सम्बन्धी प्रसंग भी प्राप्त होता है- **कथं प्रत्यक्षानुमानाभ्यामुपलभ्यमानमेकमेव वस्तु विप्रकृष्टान्तरं संपद्यते।**[6] अर्थात् प्रत्यक्ष तथा अनुमान से जानी गई एक ही वस्तु बहुत अन्तर रखने लगती है। कवि ने चित्ररथ के माध्यम से यह कथन प्रस्तुत किया है जो न्याय दर्शन में उल्लिखित प्रत्यक्ष प्रमा तथा अनुमिति प्रमा की ओर संकेत करता है। इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न ज्ञान 'प्रत्यक्ष' तथा अनुमान से प्राप्त ज्ञान 'अनुमिति' कहलाता है। वेदान्त दर्शन के प्रति कवि की रूचि नाटक में प्रस्तावना के प्रारम्भ में ही दिखाई देती है। उन्होंने जिस नित्य, अनादि, अनन्त और स्वाधार में अवस्थित चैतन्य ज्योति परमात्मा की उपासना की है, उसी निर्विकल्प, निरुपाधि, निर्विकार सत्ता को वेदान्त में परब्रह्म कहा गया है-

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने। त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः।।[7]

वेदान्त दर्शन से अत्यन्त प्रभावित भवभूति ने 'महावीरचरितम्' के आरम्भ में किसी सगुण देवता की स्तुति न करके चैतन्य ज्योति को अर्थात् निर्गुण ब्रह्म को नमन किया है। इसी ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए ऋषि- मुनि साधनारत रहते हैं। इसकी अनुभूति उनकी ब्रह्मानन्द अवस्था है-

अनुभावयति ब्रह्मानन्दसाक्षात्क्रियामिव। स्पर्शस्तेऽद्य वराम्भोजप्रस्फुरन्नालकर्कशः।।[8]

अन्यत्र भी वेदान्त दर्शन की झलक दिखाई देती है। यथा- **एवं किलेयं पाञ्चभौतिकी सृष्टिः।**[9] सृष्टि पञ्चभौतिकी अर्थात् पञ्च तत्त्वों से निर्मित कही गयी है। तम प्रधान, विक्षेप शक्ति से युक्त, अज्ञानोपहित चैतन्य से सूक्ष्म तन्मात्रारूप आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन पञ्च तत्त्वों से बने प्राणियों का लय भी पञ्च तत्त्वों में हो जाता है। इनके अतिरिक्त भक्तियोग के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग 'नाम-जप' का सार भी महावीरचरितम् के निम्न वाक्य में निहित है- **नामापि राम गृणताममृतत्त्वाय कल्पताम।**[10] अर्थात् है राम, जो आपका नाम जपे वह भी अमृत पद प्राप्त करे। इस प्रकार भवभूति के महावीरचरितम् नाटक में दार्शनिक प्रवृत्तियों की झलक यत्र-तत्र मिल ही जाती है। मालतीमाधवम् में सौदामिनी को गुरुचर्या, तप, तन्त्र-मन्त्र आदि की तरह ही योगानुष्ठान से प्राप्त अपक्षेपिणी सिद्धि का उल्लेख प्राप्त होता है। उसे योगेश्वरी कहा गया है। यह अपनी सिद्धि के बल से पद्मावती से श्रीशैल पर्वत तक के अनेक मीलों के अन्तराल को अन्यों को भी अपने साथ लेकर अल्पकाल में ही आकाश मार्ग से

आक्रमण करती है। कापालिक पन्थी कपालकुण्डला को भी उक्त सिद्धि प्राप्त थी। सांख्य और योग- शास्त्र की तरह भवभूति न्याय शास्त्र में भी निष्णात थे। इसका ज्ञान उनके लिए प्रयुक्त 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' विशेषण के 'प्रमाण' शब्द से होता है। उत्तररामचरितम् में चतुर्थ अङ्क के विष्कम्भक में सौधातकि के 'भो निगृहीतोऽसि' वाक्य में न्यायशास्त्र की पारिभाषिक संज्ञा 'निग्रहस्थान' का उल्लेख है। अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भवभूति का तन्त्रशास्त्र पर भी कोई ग्रन्थ था और वह सम्भवतः अभिनवगुप्त के समय तक (ई.सं. 11वीं शती तक) प्रचलित था। तन्त्र-मन्त्र- योग आदि से सौदामिनी को सिद्धि प्राप्त होने तक की जानकारी मालतीमाधवम् से होती है। महाकवि भवभूति की रचनाओं का अध्ययन करने पर उनके दार्शनिक झुकाव का स्पष्ट ज्ञान होता है कि ये दार्शनिक कवि थे। कवि की अन्तर्मुखी दृष्टि दर्शन का रूप धारण कर लेती है। मालतीमाधवम् के प्रारम्भ में ही दिये गये उनके पूर्वजों के दार्शनिक उल्लेख से उनके दर्शन विषयक ज्ञान की पुष्टि हो जाती है। वे कहते हैं कि 'श्रोत्रिय ब्राह्मण तत्त्व निर्णय के लिए अधिक शास्त्र श्रवण का, यज्ञादि अनुष्ठान और तडाग आदि के निर्माण कार्य के लिए धनों का सन्तान के लिए पत्नी का और तपस्या के लिए आयु का नित्य आदर करते थे। **ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरि श्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।**[11] यहाँ तत्त्व शब्द से दार्शनिक तत्त्वों के प्रति उल्लेख है। अतः भवभूति ने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। यह उनके रूपकों के प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष उल्लेखों से स्पष्ट होता है। मालतीमाधवम् के तृतीय अङ्क में भी शास्त्र विषयक प्रतिपादन हुआ है। माधव कहता है शास्त्र में प्रतिष्ठा, शङ्कारहित ज्ञान, स्वाभाविक ज्ञान, प्रगल्भता, गुणों के अभ्यास से सम्पन्न वाणी, कार्य के उचित समय का अनुसरण और प्रतिभा की नवीनता, ये गुण कार्यों में मनोरथ को पूर्ण करने वाले हैं-

शास्त्रे प्रतिष्ठा, सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोधः, प्रतिभानवत्त्वमेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु।।[12]

यहाँ पर दार्शनिक ज्ञान और गुणों की चर्चा प्राप्त होती है। मालतीमाधवम के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में कवि अपने दर्शनादि शास्त्रों के ज्ञान का उल्लेख करते हुए अपने पाण्डित्य को समकालीनों को बताने के लिए कहते हैं कि मेरे अन्दर क्या गुण नहीं है, जो मेरे यथार्थनामा ज्ञाननिधि गुरु हैं। मेरा जो वेद, उपनिषद्, सांख्य और योग का ज्ञान है, अन्य लोगों के कहने का क्या फल है, वाक्यों की जो प्रौढ़ता और उदारता है, अर्थ में गुरुता है, वह पाण्डित्य और कविकर्म निर्वाह के नैपुण्य का ज्ञापक है-

ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः।।[13]

महाकवि भवभूति ने अनेक दर्शनों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। इसलिए उनकी दार्शनिक बुद्धि छिपी नहीं रह सकी, अतः फलस्वरूप उनके रचनाओं में यत्र-तत्र उनके द्वारा प्रतिपादित दर्शनों का प्रत्यक्ष पता चलता है। मालतीमाधवम् में मकरन्द के कथन में सत्कार्यवाद के सिद्धान्त की अप्रत्यक्ष रूप से झलक दृष्टिगोचर होती है। वह कहता है कि भीतर रहा हुआ कोई कारण पदार्थों को परस्पर मिलाता है। प्रेम बाह्य कारणों का आश्रय नहीं होता क्योंकि सूर्य का उदय होने पर श्वेत कमल खिलता है और चन्द्र के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि पिघलती है- **व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु- र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते। विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।**[14] सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य की सत्ता उसकी उत्पत्ति से पूर्व कारण में विद्यमान रहती है। सांख्यकारों का कहना है कि कारण से कार्य उत्पन्न

होता है। यही भाव यहाँ सङ्कलित है। अतः सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि कार्य और कारण दोनों में तादात्म्य सम्बन्ध है। एक ही पदार्थ की अव्यक्त अवस्था को कारण और व्यक्त अवस्था को कार्य कहते हैं। जैसे घटकार्य मिट्टी कारण से अलग नहीं है। इस कारण से सत्कार्यवाद की स्थापना होती है। मालतीमाधवम् के द्वितीय अङ्क में गुणों का प्रकर्ष देखा जा सकता है। मालती में तमोगुण का प्रादुर्भाव हो जाता है, वह मोह एवं कामव्यथा से पीड़ित है। कामन्दकी कहती है कि मालती में कामदेव का जयशील अस्त्र के स्वाभाविक विलास का स्थान या शरीर अयोग्य वर में प्रतिपादन से शोचनीय हो जायेगा और इसमें गुणों का उत्कर्ष भी निष्फल होगा, यही मेरे उद्वेग का कारण है।

इदमिह मदनस्य जैत्रमस्त्रं सहजविलास निबन्धनं शरीरम्।
अनुचितवरसम्प्रदानशोच्यं विफलगुणातिशयं भविष्यतीति।।[15]

इसी प्रकार से तमोगुण का ज्वलन्त उदाहरण प्रथम अङ्क में प्रस्तुत है। मकरन्द माधव को कामदेव के विषय में कहते हैं कि जो कामदेव तमोगुण से आच्छादित और जन्तुओं में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर में भी तुल्यरूप से रहते हैं, ऐसे कामदेव प्रख्यात प्रभाव वाले हैं।

अन्येषु जन्तुषु च यस्तमसावृतेषु विश्वस्य धातरि समः परमेश्वरेऽपि।
सोऽयं प्रसिद्धविभवः खलु चित्तजन्मा मा लज्जया तव कथञ्चिदपह्नुतिर्भूत।।[16]

कामदेव मोहित कर देता है, जिसके कारण मनुष्य में जड़ता आ जाती है और तमोगुण का जन्म होता है। तमोगुण की तरह ही सत्त्वगुण का वर्णन भी प्रस्तुत मालतीमाधवम् में प्राप्त होता है। सत्त्वगुण लघु, प्रकाशक और इष्ट होता है। सत्त्व गुण के द्वारा ही इन्द्रियां विषय ग्रहण करती हैं। मन, बुद्धि आदि सब इसी के प्रकार से प्रकाशित होते हैं। सभी प्रकार के आनन्द मन में सत्त्व गुण के कारण ही अवस्थित होते हैं। जैसा कि सांख्यकारिका में कहा है कि 'सत्त्व गुण लघु और प्रकाशक है- **सत्त्वं लघुप्रकाशम्।**[17] अर्थात् यही इन्द्रियों को उनके कार्य में लगाने वाला और बुद्धि को प्रकाशित करने की सामर्थ्य रखने वाला होता है। गीता में कहा है कि सत्त्वगुण तीनों गुणो में निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और निर्विकार है, सत्त्वगुण सुख के सम्बन्ध से और ज्ञान के सम्बन्ध से बाँधता है-

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।[18]

माधव मालती के विषय में चर्चा करते हुए सात्त्विक विकारों का वर्णन करते हैं-

अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त-वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः।
तद्भूरिसात्त्विकविकारमपास्तधैर्य-माचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत।।[19]

इसी प्रकार अन्य गुण भी देखे जा सकते हैं।ये सत्त्व, रज और तम तीन गुण क्रमशः सुख, दुःख और विषाद कारक हैं। इनके भावों सुख, दुःख का भी उल्लेख मालतीमाधवम् में स्थल- स्थल पर प्राप्त होता है।

मालतीमाधवम् में सृष्टिक्रम से सम्बद्ध तत्त्वों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। यत्र-तत्र ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के संकेत प्राप्त होते हैं। कर्मेन्द्रियों में सुख की विशेष चर्चा प्राप्त होती है और मन का विस्तृत प्रतिपादन प्राप्त होता है। मन आभ्यान्तरिक इन्द्रिय है, जो कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों दोनों का सहयोग करता है। मन ही इन्द्रियों को इनके अपने-अपने कार्यों में प्रेरित करता है। यह एक सूक्ष्म इन्द्रिय है, जो कि एक ही साथ भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के साथ हो जाता है। यह अन्तःकरण कहा जाता है, जबकि इन्द्रियों को करण कहते हैं। अतः मन, बुद्धि और अहङ्कार ये तीनों ही अन्तःकरण हैं। मालतीमाधवम् के प्रथम अङ्क में एकत्र ही करण

तथा अन्तःकरणों को देखा जा सकता है। मकरन्द माधव के वार्तालाप में यह दर्शनीय है। माधव मालती के विषय में कहता है कि उसके हस्तपाद आदि कर्मेन्द्रिय म्लान हैं। उसने मेरे देखने के अनन्तर अमृतवर्ति की तरह नेत्रों में अतिशय आनन्द को उत्पन्न करके जैसे चुम्बक मणि लौह धातु को आकृष्ट करती है, उसी तरह मेरे अन्तःकरणों को आकृष्ट किया-

परिमृदितमृणालीम्लानमङ्गं, प्रवृत्तिः कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु।
कलयति च हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मी-मभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तःकपोलः।।[20]

इस प्रकार स्थान-स्थान पर अन्तःकरणों एवं बाह्य करणों का उल्लेख प्राप्त होता है-

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै-रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै-रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च।।[21]

मालतीमाधवम् में सांख्य के साथ-साथ योग दर्शन भी पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। मालतीमाधवम् के पञ्चम् अङ्क के प्रारम्भ में कपालकुण्डला द्वारा दो श्लोकों में योग दर्शन का बहुत ही मार्मिक वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ योग के अनेक तत्त्वों एवं अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। वह कहती है जो सोलह आदि नाड़ी मण्डल के मध्य में सन्निहित स्वरूप होकर उनको जानने वालों के हृदय में अपने आकार को स्थापित कर अणिमा आदि योग सिद्धियों को देने वाले होकर स्थिर चित्त वाले अपने उपासकों से ढूंढ़े जाते हुए ज्ञान, इच्छा और क्रियारूप अथवा ब्राह्मी आदि अष्ट शक्तियों से व्याप्त है, वे शक्तिनाथ कालत्रय में लोकोत्तर प्रकार से रहते हैं-

षडधिकदशनाडी-चक्रमध्यस्थितात्मा हृदि विनिहितरूपः सिद्धिदस्तद्विदां यः।
अविचलितमनोभिः साधकैर्मृग्यमाणः स जयति परिणद्धः शक्तिभिः शक्तिनाथः।।[22]

यहाँ नाड़ी मण्डल, अणिमा आदि आठ योग सिद्धियों एवं स्थिर चित्त द्वारा ध्यान तथा समाधि का सङ्केत और अष्टशक्तियों का वर्णन हुआ है। अग्रिम श्लोक में पुनः योग का निर्देश करते हुए कपालकुण्डला कहती है कि प्रतिनित न्यस्त, हृदयादि छः अङ्गों के समूह में आरोपित हृदयकमल की कर्णिका में प्रकाशमान शिवरूपी परमात्मा का साक्षात्कार करती हुई यह मैं आत्मा के साथ वाह्य इन्द्रियों के एकीभाव से इड़ा, पिङ्गला आदि नाड़ियों के उदय आदि के क्रम से पञ्चभूतात्मक शरीर के, पञ्च महाभूतों के आकर्षण से, आकाशयान में परिश्रम का अनुभव न करती हुई आकाश में मेघों को हटाती हुई इस समय श्रीपर्वत से करालायतन नामक स्थान को प्राप्त हुई हूँ।यहाँ भी योग का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है-

नित्यं न्यस्तषडङ्गचक्रनिहितं हृत्पद्ममध्योदितं पश्यन्ती शिवरूपिणं लयवशादात्मानमभ्यागता।
नाडीनामुदयक्रमेण जगतः पञ्चामृतकर्षणा-दाप्राप्तोत्पतनश्रमा विघटयन्त्यग्रेनभोऽम्भोमुचः।।[23]

चतुर्थ अङ्क में अष्टाङ्ग योगाभ्यास का सङ्केत मिलता है। मकरन्द कामन्दकी से कहता है कि भगवति! अपने इस शिशुरूप (मालती और माधवरूप) जन में यह दया अथवा स्नेह संसार से सर्वथा विरक्त आपके चित्त को आर्द्र करता है। इसी कारण से संन्यासाश्रम के सिद्धान्त में सुलभ आचारों (श्रवण, मनन एवं अष्टाङ्ग योगाभ्यास) के विरुद्ध आपका इस प्रकार प्रयत्न हो रहा है किन्तु यह दैव आपके प्रयत्न से कुछ भिन्न करने में समर्थ हो रहा है-

दया वा स्नेहो वा भगवति निजेऽस्मिञ्शिशुजने भवत्याः संसाराद्विरतमपि चित्तं द्रवयति।
ततश्च प्रव्रज्यासमयसुलभाचारविमुखः प्रसक्तस्ते यत्नः प्रभवति पुनर्दैवमपरम्।।[24]

यहाँ यह बताया गया है कि योगी संसार से निवृत्त होता है क्योंकि जब तक मनुष्य के चित्त में विकार भरा रहता है और उसकी बुद्धि विकृत एवं दूषित रहती है तब तक वह तत्त्व ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। शुद्ध हृदय एवं बुद्धि से ही आत्मज्ञान प्राप्त होता है। सांख्य एवं योग के अनुसार मुक्ति के लिए आत्म ज्ञान आवश्यक है। यह आत्मज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब अन्तःकरण सर्वथा निर्विकार, शुद्ध एवं शान्त हो। इस चित्त की शुद्धि और पवित्रता के लिए योग आठ प्रकार के साधन बताता है। ये साधन अष्टाङ्ग हैं, जिसका निर्देश यहाँ किया गया है। संन्यास आश्रम के सिद्धान्त में सुलभ आचार यही है।

नवम् अङ्क में तप, तन्त्र, मन्त्र और योग का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। सौदामिनी कहती है कि 'गुरुसेवा और विशिष्ट अनुष्ठान, तपस्या, तन्त्र, मन्त्र और योग इनके अभ्यास से उत्पन्न इस आकर्षिणी सिद्धि को तुम लोगों के कल्याण के लिए प्रकाशित करती हूँ-

गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्। इमामाकर्षिणीं सिद्धिमातनोमि शिवाय वः।।[25]

यहाँ योग एवं आकर्षिणी सिद्धि का वर्णन है। तन्त्र शास्त्रों में षट्कर्माणि में आकर्षण का भी उल्लेख है। दशम् अङ्क में ही प्रभवति हि महिमा स्वेन योगीश्वरीयम्।[26] योगीश्वरी का वर्णन है। सौदामिनी को योगानुष्ठान से आक्षेपिणी सिद्धि भी प्राप्त है। उसे योगीश्वरी कहा गया है। वह अपनी सिद्धि के बल पर पद्मावती से श्रीशैल पर्वत तक के सैकड़ों मीलों के अन्तराल को दूसरों को भी अपने साथ लेकर अल्पकाल में ही आकाश मार्ग में आक्रमण करती है। अघोरघण्ट चामुण्डा देवी की पूजा करते हुए कहता है कि 'हे भगवति! पुरश्चरणारम्भ में मेरे द्वारा सङ्कल्पित तथा समर्पित इस पूजोपहार को स्वीकर करो- **चामुण्डे ! भगवति! मन्त्रसाधनादा-वुद्दिष्टामुपनिहितां भजस्वपूजाम्।।**[27] यहाँ मन्त्र साधना का उल्लेख है। इस प्रकार देखने में आता है कि मालतीमाधवम् में योग दर्शन का प्रचुर मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ दर्शन से सम्बन्धित नानाभाव एवं तथ्य समाहित हैं। यहाँ अष्टाङ्गों का उल्लेख हुआ है। निद्रा, स्मृति आदि प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। अस्मितादि क्लेशों का भी निर्देश है और निवारण के साधन तथा कैवल्य प्राप्ति के उपाय एवं सिद्धियों का सुन्दर प्रतिपादन प्राप्त होता है। योग के तीनों तत्त्वों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। ये तत्त्व हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति। हर व्यक्ति मूलतः दार्शनिक होता है, विशेष रूप से कवि, जो अपने जीवन-दर्शन, विश्व दर्शन, आत्म-परमात्म-दर्शन के अतिरिक्त कविता में अपने स्वतंत्र सृजन-धर्म से जुड़ा होने के कारण एक विशेष वर्ण छटा के साथ अपने दार्शनिक सत्यों का प्रस्तुतीकरण करता है। भवभूति के नाटकों में प्राप्त दार्शनिक सत्य एवं सिद्धान्त इनके समकालीन समाज की आध्यात्मिक विचारधारा को प्रकट करते हैं। भवभूति महान् कवि होने के साथ-साथ तत्त्वदर्शी विचारक तथा श्रेष्ठ पण्डित भी थे। उन्होंने भारतीय दर्शनशास्त्र के सभी अंगों का विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया था। काव्य में दर्शन की अभिव्यक्ति भवभूति की वह दुर्लभ विशेषता है जो उन्हें शेष संस्कृत कवियों से विशिष्ट बनाती है। उन्होंने 'महावीरचरितम्' नाटक में सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त दर्शन के तत्त्वों का विशेष रूप से उल्लेख किया है, किन्तु वेदान्त दर्शन के प्रति कवि की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। अज्ञान के नाश से ज्ञान ज्योति का आविर्भाव और वस्तुओं की प्रत्यक्षता की अनुभूति कराता हुआ तथा परम तत्त्व की प्राप्ति से भवसागर से क्लान्त प्राणी का आनन्द अनुभव आदि ऐसे प्रसंग हैं जो सामान्य दार्शनिक हृदय की अभिव्यक्ति के उदाहरण होते हुए भी वेदान्त से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं- प्रादुर्भूतसहजज्योतिषोऽपरोक्ष-मिव मे वस्तु किञ्चितत्प्रतिभाति।[28] भवभूति के नाटकों के दार्शनिक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि महाकवि भवभूति ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हुए अपना ब्रह्मविषयक ज्ञान प्रकट कर दिया हैं, भवभूति का दर्शन सम्बन्धी ज्ञान उनके रूपकों में स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है।

सन्दर्भ -

1. मालतीमाधवम्,1/10
2. उत्तररामचरितम्, 6/6
3. तत्रैव, 3/47
4. महावीरचरित, 7/2
5. तत्रैव, अंक- 3, पृष्ठ- 109
6. तत्रैव, अंक-6, पृष्ठ- 291
7. तत्रैव,1/1
8. तत्रैव,7/31
9. तत्रैव, अंक- 6, पृष्ठ- 292
10. तत्रैव,7/15
11. मालतीमाधवम्, 1/7
12. तत्रैव, 3/11
13. तत्रैव, 1/7
14. तत्रैव,1/27
15. तत्रैव,2/6
16. तत्रैव,1/23
17. सांख्यकारिका, 13
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 14/6
19. मालतीमाधवम्, 1/29
20. तत्रैव,1/25, पृष्ठ 39
21. तत्रैव,1/31
22. तत्रैव, 5/1
23. तत्रैव, 5/2
24. तत्रैव, 4/6
25. तत्रैव,9/53
26. तत्रैव,10/8
27. तत्रैव, 5/25
28. महावीरचरित, अंक- 5, पृष्ठ- 219

11

भवभूति के रूपकों में दार्शनिक तत्त्व-विमर्श

चन्दनलाल गुप्ता

भवभूति व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा के विद्वान् थे। मीमांसक होने से कर्मकाण्ड में भी इनकी अभिरुचि प्रतीत होती है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार जिस प्रतिभाशाली विद्वान् ने नाटकों में अपना नाम भवभूति रखा, उसी ने मीमांसा ग्रन्थों में अपना नाम उम्बेक दिया है तथा उसी ने कालान्तर में अद्वैत मत में दीक्षित होने पर सुरेश्वराचार्य के नाम से ख्याति प्राप्त की।[1] दार्शनिकों में यह उम्बेक नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इनके रूपकों पर इनके दार्शनिक विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इस शोध-पत्र में इनके रूपकों में आये हुए प्रमुख दार्शनिक सन्दर्भों का विवेचन किया गया है। आचार्य भरत[2] नाट्य को उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के मनुष्यों के आचरण पर आश्रित कल्याणप्रद उपदेश देने वाला, धैर्यप्रद, मनोरंजक तथा सुखप्रद कहते हैं। साथ ही साथ नाट्य को दुःख से पीड़ित, श्रम से शिथिल, शोक संतप्त और तपस्वियों के लिये समय-समय पर विश्रान्ति देने वाला, धर्म को उत्पन्न करने वाला, यशप्रदायक, आयुप्रद, हितकारी, बुद्धि को बढ़ाने वाला तथा संसार को उपदेश देने वाला कहा है। नाटक में समस्त ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म विद्यमान हैं।[3] नाटक की इन सभी विशेषताओं को नाटक की रचना से लेकर उनकी प्रस्तुति तक में देखा जा सकता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के श्रवण, दर्शन, पठन और लेखन से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति को स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ के मत में काव्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी परम पुरुषार्थ की प्राप्ति साधारण व्यक्ति को भी सरलता से हो जाती है।[4] अग्निपुराण ने नाट्य को त्रिवर्ग की प्राप्ति का साधन कहा है।[5] भवभूति के रूपकों में दार्शनिक विचार कहीं स्वाभाविक रूप से तो कहीं सोद्देश्य चित्रित प्रतीत होते हैं। तत्कालीन समाज में अध्यात्म विद्या के अध्ययन-अध्यापन की स्वतन्त्र परम्परा विद्यमान थी। कामन्दकी कहती है कि विदर्भराज के मन्त्री देवरात ने पुत्र माधव को न्याय विद्या के लिए कुण्डिनपुर से पद्मावती को भेजा है।[6] कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय दर्शन का महत्त्वपूर्ण विषय है। पुनर्जन्म का प्रसङ्ग भी भवभूति के नाटकों में कई स्थलों पर देखा जा सकता है। सीता तमसा से कहती हैं कि हे भगवती दूसरे जन्म में भी जिनके दर्शन की सम्भावना नहीं थी और जिनका दर्शन मेरे लिए सर्वथा दुर्लभ था, उनका दर्शन प्राप्त हो गया।[7] मकरन्द पाटलावती नदी से प्रार्थना करता है कि प्रियमित्र माधव की उत्पत्ति जहाँ हो वहीं मेरा भी जन्म हो।[8] मालती पर अनुरक्त माधव कहता है कि निश्चयात्मक ज्ञान का उल्लङ्घन करने वाला, समस्त वाक्यों का अगोचर, पुनर्जन्म और वर्तमान जन्म में भी जो अनुभव पथ में प्राप्त नहीं हुआ, विवेक के विनाश से वृद्धि को प्राप्त महामोह से अनिर्वचनीय विकार अन्तःकरण को जड़ बना रहा है और ताप को बढ़ा रहा है।[9]

सांख्य दर्शन[10] की कर्तृत्वाभिमानी आत्मा और वेदान्त[11] का माया की मोहात्मिका शक्ति के वशीभूत हुआ जीव सुख-दुःखादि को भोगता हुआ संसार चक्र में पुनर्जन्म लेता रहता है। इसके समर्थन में कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि इहलोक और परलोक में एक ही परमात्मा की सत्ता है, इस एकत्व में जो अज्ञानी अनेकत्व को देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु (संसार) को अर्थात् पुनर्जन्म प्राप्त करता है।[12] गीता में भी यही बात कही गई है।[13] मालतीमाधव[14] में ही वेदान्त की माया शक्ति का भी दर्शन हो जाता है। अज्ञान ही माया के अस्तित्व का मुख्य कारण है। गीता में कहा गया है- **अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।**[15] अर्थात् अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है और उस अज्ञान के कारण ही जीव मूढ़ता को प्राप्त होता है। विवेकचूड़ामणि माया को अव्यक्त नामवाली, त्रिगुणात्मिका, अनादि, अविद्या, ईश्वर की परा शक्ति और समस्त जगत् की उत्पादिका कहा है। बुद्धिमान व्यक्ति कार्य से इसका अनुमान कर लेते हैं।[16] षडधिकदशनाडी- चक्रमध्यस्थितात्मा.....।[17] यहाँ पर योग और तन्त्र के अद्भुत सामञ्जस्य को देखा जा सकता है। कवि ने कपाल कुण्डला को हृत्कमल की कणिका में प्रकाशमान शिवरूपी परमात्मा का साक्षात्कार करने वाली दिखाया है।[18] उपनिषद् भी आत्मा को प्राणियों की हृदयरूपी गुफा में स्थित मानते हैं- **आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।**[19] पञ्चम अंक में माधव कहता है कि प्रियतमा मालती के स्मरणरूप ज्ञान की उत्पत्ति का समुदाय अन्तःकरण की वृत्ति के सारूप्य के कारण मेरी चिद्रूप आत्मा को मालतीमय बना रहा है।[20] इस वाक्य में योगसूत्र के प्रभाव को स्पष्टतः देखा जा सकता है।[21] बुद्धिरक्षिता मदयन्तिका से कहती है कि जिस प्रकार पुरुषोत्तम अर्थात् भगवान् कृष्ण ने कन्दर्पजननी (प्रद्युम्न की माता) रुक्मिणी को अपनी सहधर्मचारिणी बनाया था।[22] यह प्रसङ्ग कृष्ण के प्रति भी भवभूति की श्रद्धा को दिखाता है। भवभूति आगम शास्त्रों से भी बहुत प्रभावित रहे हैं। मालतीमाधव में इस तथ्य को देखा जा सकता है। योगिनी सौदामिनी माधव और मकरन्द से कहती है कि गुरुसेवा, तपस्या, तन्त्र, मन्त्र और योग के अभ्यास से उत्पन्न इस आकर्षिणी सिद्धि को तुम्हारे लिए प्रकट करती हूँ।[23] आगमशास्त्रों में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि गुरुओं के मुख से श्रवण किया गया आगम, आम्नाय, मन्त्र एवं प्रयोगों का क्रम ही लाभकारी होता है अन्यथा नहीं।[24] उपनिषदों में भी ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए गुरु को अत्यन्त आवश्यक बताया गया है- **नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।**[25] कृष्ण भी कहते हैं कि हे अर्जुन! तत्त्वज्ञानी गुरुओं के पास जाकर प्रणामपूर्वक युक्त प्रश्नों द्वारा तथा उनकी सेवा करते हुए तत्त्वज्ञान को प्राप्त करो।[26] आगमशास्त्रों का विशुद्ध तात्पर्य वही है, जो वेदान्त का है। तान्त्रिक साधना करने वाले साधकों को आश्चर्यजनक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। अपरिपक्व बुद्धि वाले साधक इन सिद्धियों के चमत्कार में उलझकर अपने ज्ञान प्राप्तिरूप परमलक्ष्य से भटक जाते हैं। चामत्कारिक सिद्धियों के लोभ से तन्त्र साधना में प्रवेश करने वाले लोगों ने ही तान्त्रिक पद्धतियों को दूषित किया है। मालतीमाधव में कराला नाम वाली देवी का स्थल, कापालिकी (कपालकुण्डला) और कापालिक (अघोरघण्ट) यह सब चामत्कारिक सिद्धियों के लोभी और तान्त्रिक पद्धतियों को दूषित करने वाले के रुप में सामने आया है।[27]

तत्त्वज्ञान के मार्ग में सिद्धियां औपनिषदिक सत्य हैं। कठोपनिषद् में हम देखते हैं कि नचिकेता जब अपनी आत्मतत्त्व की जिज्ञासा को वचनबद्ध यमराज के सम्मुख प्रकट करता है तब यमराज उसे अनेक प्रलोभन देते हैं, लेकिन वह अपने लक्ष्य से भटकता नहीं है और यमराज से कहता है रथ-घोड़े आदि तुम्हारे ही हैं, नृत्य-गीत भी तुम्हारे हैं।[28] मालतीमाधव में ही भवभूति ने योगिनी सौदामिनी की सिद्धियों को लोककल्याण में उपयोग किया है। जिससे नाटक का परिणाम आनन्दोत्पादक हो गया है।

महावीरचरित के प्रथम अंक में परब्रह्म के स्वरूप का निरूपण हुआ है- स्वाधार में अवस्थित, सनातन, पापनाशक, उत्पत्यादि के क्रम से रहित चैतन्य स्वरूप ज्योति को नमस्कार है।[29] यहाँ पर उपनिषदों में वर्णित परब्रह्म के स्वरूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है।[30] इसी नाटक में राजा कहते हैं कि सत्यप्रतिज्ञ तथा ब्रह्मज्ञानी साधुओं के संसर्ग से उत्कृष्ट कल्याण की प्राप्ति होती है।[31] इस पर कठोपनिषद् के प्रभाव को देखा जा सकता है- **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।**[32] अर्थात् उठो जागो और श्रेष्ठ पुरुषों को प्राप्त कर सत्य ज्ञान को प्राप्त करो। उत्तररामचरित[33] में जनक के कथन- ''अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते" पर ईशावास्योपनिषद्[34] का पूर्ण प्रभाव है। सांख्य दर्शन के गुणत्रय का भी वर्णन आया है। माल्यवान् कहता है कि वह परशुराम माहात्म्य के कारण गम्भीर, शान्तपवित्र, अत्यन्त सुजन, प्रसन्न पुण्यराशि के समान सभी के लिए सुखद, प्रभावातिशय और तप शुद्धि के कारण देखने वालों के सत्वगुण को बढ़ाने वाले तथा पाप का नाश करने वाले हैं।[35] परशुराम जी भगवान् राम में सत्त्वगुण से ज्वलित तेज का दर्शन करते हैं- **सात्विकगुणज्वलितं च तेजः।**[36] चन्द्रकेतु का कथन है कि सत्त्वगुण की वृद्धि से ऋषिगण स्वयं सबकुछ देख लेते हैं।[37] सांख्यकारिका में सत्त्व, रजस् एवं तमस् को क्रमशः सुख, दुःख और मोह स्वभाव वाला कहा गया है। यही त्रिगुण क्रमशः प्रकाशन, प्रवर्तन और नियमन या नियन्त्रण रूप प्रयोजन वाले, परस्पर दबाने, आश्रय बनने, उत्पन्न करने वाले तथा मिलकर कार्य करने के स्वभाव वाले होते हैं।[38] गीता में सत्त्वगुण को निर्मल होने के कारण प्रकाशक और निर्विकार कहा गया है। जो मनुष्य को सुख और ज्ञानकी आसक्ति से बाँधता है।[39] इसी नाटक में राजा जनक को सूर्य के शिष्य याज्ञवल्क्य के द्वारा वेदान्त के उपदेश का वर्णन मिलता है।[40] परम पुरुषार्थ मोक्ष का उल्लेख मिलता है। जामदग्न्य कहते हैं कि मुझे स्वभावतः मोक्ष से भी अधिक प्रिय मान रहा है।[41] जामदग्न्य को धर्म और अध्यात्म की शिक्षा शिव से प्राप्त हुई है।[42] राम को ज्ञान के भण्डार वेदों का रक्षक कहा गया है।[43] चित्ररथ के माध्यम से कवि द्वारा तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। युद्ध में लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर हनुमान् द्वारा लाए गए औषधिगन्ध से युक्त पर्वत की वायु को पाकर लक्ष्मण वैसे ही चैतन्य को प्राप्त हुए हैं, जैसे कि भवसागर में डूबे हुए मनुष्य तत्त्वज्ञान से प्रबुद्ध हो जाते हैं।[44] गीता में कहा गया है कि सभी पापियों से भी अधिक पाप करने वाला व्यक्ति तत्त्वज्ञान से दुःख सागर को पार कर जाता है।[45] प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण दोनों के अन्तर को बताया गया है। चित्ररथ कहता है कि प्रत्यक्ष और अनुमान से ज्ञात ही वस्तु बहुत अन्तर वाली हो जाती है- **कथं प्रत्यक्षानुमानाभ्यामुपलभ्यमानमेकमेव वस्तु विप्रकृष्टान्तरं सम्पद्यते।**[46] अनुमान की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण को श्रेष्ठ बताया गया है। युद्ध में राक्षसों की मृत्यु को देखकर चित्ररथ कहता है कि पञ्चभूतों से निर्मित शरीर पञ्चभूतों में ही मिल जाता है। यही सृष्टि का नियम है।[47] भवभूति राम को ब्रह्मस्वरूप बताते हुए कहते हैं कि ब्रह्मज्ञानियों का परमतत्त्व, पुराणपुरुष, सत्त्वरजतमरूप तीन भागों में बंटी हुई प्रकृति ही तो रामरूप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है-

इदं हि तत्त्वं परमार्थभाजामयं हि साक्षात्पुरुषः पुराणः।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृतिः किलैषा त्रातुं भुवृव स्वेन सतोऽवतीर्णा।।[48]

राम के अलौकिक व्यक्तित्व का भी दर्शन कराया गया है। किन्नर कहता है कि हे विपन्नजनप्रिय! जगत् बन्धु! विद्वान् रूप हंस समूह के आश्रय! रामचन्द्र जन्म-मृत्युरूप कर्मबन्धनों से रहित देवता चकोर! आपके यश को हजारों शरदों तक पीते रहेंगे।[49] विभीषण हिमालय को दिखाते हुए कहते हैं कि यहाँ अध्यात्मविद्या के प्रेमी तत्त्वज्ञान से अज्ञान का नाश कर देने वाले ब्रह्मज्ञानियों का स्वभाव सुन्दर तेज फैल रहा है।[50] यहाँ वेदान्त के अविद्यारूपी संसार के विनाश की बात कही गई है।

मीमांसा दर्शन में शब्द को नित्य माना गया है। भवभूति ने परमात्मा की अंशभूता नित्य वाग्देवता की स्तुति की है- **इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे। विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।**[51] राम-सीता के लिए कहते हैं कि तुमने चन्दन वृक्ष के भ्रम से बुरे परिणाम वाले विषवृक्ष का आश्रय लिया है- **श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।।**[52] यहाँ पर वेदान्त का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। रज्जु में सर्प की प्रतीति के समान पूर्व की अवस्था का त्याग किए बिना ही अन्य अवस्था की प्रतीति ही विवर्त कहलाता है। आकाश के समान निरवय आनन्दरूप ब्रह्म होने पर भी यह जगत् उसका विवर्त है और ऐन्द्रजालिक के समान जगत् की कल्पना कराने वाली माया शक्ति है।[53] तपस्विनी आत्रेयी वाल्मीकि आश्रम से दण्डकारण्य में अपने आने का कारण अगस्त्यादि ब्रह्मवेत्ताओं से वेदान्त विद्या के अध्ययन को बताती हैं।[54] ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या[55] और अहं ब्रह्मास्मि[56] रूप तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार हो जाने पर व्यक्ति पूर्णतः ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है, तब उसके समस्त नामरूपात्मक जगत्प्रपञ्च तुरीय ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। विद्याधर के माध्यम से भवभूति कहते हैं कि विद्यासदृश वायु के द्वारा बहुत अधिक मेघों का ब्रह्म में अतात्त्विक नामरूपादि प्रपञ्चों के समान कहीं लय कर दिया गया है।[57]

भवभूति ने अपने रूपकों में दार्शनिक विचारों का स्वाभाविक और सोद्देश्य निरुपण किया है, जो दर्शकों और पाठकों में आनन्द की अनुभूति और आशा का संचार करते हैं। इनके रूपकों पर मुख्य रूप से सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त और तन्त्र दर्शन का प्रभाव है। जहाँ विदेहराज जनक और परशुराम के संवाद में दार्शनिक विचारों और आचार की स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है, तो वहीं मालतीमाधव में मालती और माधव के सुखान्त मिलनरूप फल की प्राप्ति में करालादेवी का स्थल, कापालिकी और कापालिक प्रमुख केन्द्र बन जाते हैं। कवि की राम के प्रति अनन्य भक्ति दृष्टिगोचर होती है। इनके विचारों में ज्ञान, कर्म और उपासना का मंजुल समन्वय है। साधारण व्यक्ति का जीवन इसी समन्वय में विकसित होता हुआ इहलोक में उन्नति और परलोक में कल्याण को प्राप्त करता है।

सन्दर्भ -

1. *संस्कृत सुकवि समीक्षा, तृतीय संस्करण 1987, पृष्ठ 319-322*
2. *उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।*
   हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत् ।।
   दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
   विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।
   धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
   लोकोपदेशजननं नाट्यमेतविष्यति।। नाट्यशास्त्र 1/113,114, 115
3. *न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।*
   न स योगो न तत्कर्म नाट्ऽयेस्मिन् यन्न दृश्यते। नाट्यशास्त्रम् 1/116
4. *चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।*
   काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरुप्यते।। साहित्यदर्पण 1/2
5. *त्रिवर्गसाधनं नाट्यम्......। अग्निपुराण 338/7*

6. मालतीमाधव 1/10 और 2/11 के पश्चात्
7. उत्तररामचरित 3/12 के पश्चात्
8. प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सम्भवः।। मालतीमाधव 9/41
9. वही 1/31
10. अभिमानोऽहंकारस्तस्माद्..... । सांख्यकारिका 24
11. अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्तिः यस्यां स्वरूपप्रतिबोध-रहिता शेरते संसारिणो जीवाः। शारीरकभाष्य 1/4/3
12. मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। कठोपनिषद् 2/1/10
13. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
    तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। श्रीमद्गवद्गीता 2/22
14. मालतीमाधव 1/31
15. गीता 5/15
16. अव्यक्तनाम्नी परमेश्वरशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
    कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।। विवेकचूड़ामणि 108
17. मालतीमाधव 5/1
18. नित्यं न्यस्तषडङ्गचक्रनिहितं हृत्पद्ममध्योदितं
    पश्यन्ती शिवरूपिणं लयवशादात्मानमभ्यागता।। वही 5/2
19. कठोपनिषद् 1/2/20
20. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/20
21. प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोति वृत्तिसारूप्यतश्चैतन्यम्। मालतीमाधव 5/9 के पश्चात्
22. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। वृत्तिसारूप्यमितरत्र। योगसूत्र 1/3-4
23. बुद्धिरक्षिता- अथ स मन्मथ बलात्कारितो यदि कन्दर्पजननीं त्वां रुक्मिणीमिव पुरुषोत्तमः ...।
    मालतीमाधव 7/1 के पश्चात्
24. गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्।
    इमामाकर्षिर्णी सिद्धिमातनोमि शिवाय वः।। मालतीमाधव 9/53
25. कुलार्णवतन्त्र 11/46
26. कठोपनिषद् 1/2/9
27. गीता 4/34
28. मालतीमाधव, पञ्चम अंक
29. कठोपनिषद् 1/1/26
30. अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने। त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्य ज्योतिषे नमः।। महावीरचरित 1/1
31. य आत्मा अपहतपाप्मा। छान्दोग्योपनिषद् 8/7/3
    नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्। श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/13
    तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः। बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/16

32. महावीरचरित 1/12
33. कठोपनिषद् 1/3/14
34. उत्तररामचरित 4/3 के पश्चात्
35. असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।। ईशावास्योपनिषद् 3
36. महावीरचरित 2/15
37. वही 2/40
38. अपरेऽपि प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः स्वयं सर्वं मन्त्रदृशः पश्यन्ति। उत्तररामचरित 5/15 के पश्चात्
39. प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।
अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः।। सांख्यकारिका 12
40. तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।। गीता 14/6
41. महावीरचरित 2/43 और 3/26
42. वही 3/9
43. वही 3/37
44. त्रय्यास्त्राता यस्तवायम् ....। वही 4/44
45. वही 6/52
46. गीता 4/36
47. महावीरचरित 6/57 के पश्चात्
48. एवं किलेयं पाञ्चभौतिकी सृष्टिः। वही 6/59 के पश्चात्
49. महावीरचरित 7/2
50. वही 7/25
51. तत्त्वालोकनिरस्तमोहतमसामध्यात्मविद्याजुषां, यत्र ब्रह्मविद्यां निसर्गमधुरं जागति सौम्यं महः।। वही 7/27
52. उत्तररामचरित 1/1
53. वही 1/46
54. अवस्थान्तरभानं तु विवर्तो रज्जुसर्पवत।
निरंशेऽप्यस्त्यसौ व्योम्नि तलमालिन्यकल्पनात्।।
ततो निरंश आनन्दे विवर्तो जगदिष्यताम्।
मायाशक्तिः कल्पिका स्यादैन्द्रजालिकशक्तिवत्।। पञ्चदशी 13/9-10
55. उत्तररामचरित 2/3
56. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः।। विवेकचूडामणि और ब्रह्मज्ञानावलीमाला- 20
57. बृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/10
58. विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः।। उत्तररामचरित 6/6

12

उत्तररामचरित-एक अध्ययन

रामजी उपाध्याय

उत्तररामचरित की रचना में भवभूति ने बहुक्षेत्रीय काव्य-कला का प्रदर्शन किया है। कथा-वस्तु का प्रपञ्च, पात्र-चयन, चरित्र-चित्रण, वर्णन, रस-निष्पादन आदि में से प्रत्येक अपने आप में साथ ही अन्य काव्यात्मक तत्त्वों के अनुषङ्ग में कला-वैचित्र्य के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कला

कथावस्तु

भवभूति ने उत्तररामचरित में अतिशय उदात्त पृष्ठभूमि में कथा-वस्तु का विस्तार किया है। पहले तो यह जान लीजिये कि यह खेल केवल नायक और नायिका की प्रवृत्तियों तक सीमित नहीं है। नायक और नायिका के ऊपर भी कुछ शक्तियां हैं, जो इनके सुख-दुःख या सभी प्रवृत्तियों में अभिरुचि रखती हैं। वसिष्ठ ने सीता से कहलवाया -

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत, राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां,येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।19

इस श्लोक में वह भूमिका रेखाङ्कित की गई है, जिससे ज्ञात होता है कि भविष्य में एक महान् कार्य होने जा रहा है, जिसका एक अंश है- **केवलं वीरप्रसवा भूयाः।** सीता वन में भले ही जाय, पर उसकी माता सर्वव्यापिनी विश्वम्भरा को यदि अपना नाम सार्थक करना है तो उसे सीता की रक्षा सदा और सर्वत्र करनी है। रघुकुल के गुरु सविता और वयं च (वन में रहने वाले वशिष्ठ, वाल्मीकि आदि ऋषि) कहाँ उसकी रक्षा के लिए नहीं है ? अर्थात् सीता कहीं भी अरक्षित नहीं है। वीथिका-चित्रदर्शन-प्रकरण में सीता की परवर्ती करुण-कथा सहने के लिए पाठक के हृदय को उसी प्रकार सक्षम बनाया जाता है, जैसे महामारी आदि भयंकर रोगों का सामना करने के लिए उनके दुर्बल कीटाणुओं को शरीर में प्रवेश करा दिया जाता है। उदाहरण के लिए देखिये -

हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं। अयि विप्रयोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।
जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उपपादेइ। हन्त वर्तमान इव जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

उत्तररामचरित के कथा-विन्यास में भवभूति ने पात्रों को रंगमंच के अन्य पात्रों के अनुमान द्वारा ईषत् परिचित बनाये रखने का अपूर्व कौशल प्रदर्शित किया है, जिसमें केवल वाल्मीकि ही सबको जानते हैं। राम, कौशल्या, जनक आदि पात्र लव, कुश को अनुमान के द्वारा पहचानने का प्रयास करते हैं। यह एक रहस्य है, जो

प्रायः अन्त तक बना रहता है। ऐसा ही रहस्य है सीता की छायानुवृत्ति का। वे तृतीय अंक में सबको देख सकती हैं, पर उन्हें कोई नहीं देख पाता। राम उनके वास्तविक स्पर्श की अनुभूति तो करते हैं, पर सीता को देख नहीं पाते। इसी रहस्यात्मक वातावरण में अत्यन्त हृद्य कविता की प्रवृत्ति हुई है। ऐसे ही छठे अङ्क में लव-कुश राम को पहचान कर भी यह नहीं जानते कि ये पिता हैं। तभी तो कुश कहता है -

विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः, प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः, किमेवं त्वं पृच्छस्यनधिगतरामायण इव।।630

भावी घटना-पथ का संकेत कवि स्थान स्थान पर कराते चलते हैं। यथा चतुर्थ अंक में वसिष्ठ की यह बात दुहराई गई है कि - **भवितव्यं तथेत्युपजातमेव। किन्तु कल्याणोदर्क भविष्यतीति।** अर्थात् जो कुछ बुरा होना था, हो चुका अब कल्याणमय अन्त आने वाला है। प्रथम अंक में चित्रदर्शन-प्रकरण और उसके पश्चात् की आने वाली बातें निर्वहण के प्रसङ्ग में सन्निवेशित होने से कथा-विन्यास की सुश्लिष्टता प्रमाणित होती है। उदाहरण के लिए नेपथ्य में उच्चरित यह संवाद लीजिये - **उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे यथा भगवति वसुन्धरे श्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीमिति। तदधुना कृतवचनास्मि प्रभोर्वत्सस्येति।** गर्भाङ्क के दृश्य और मूलनाटक के दृश्य का संश्लेष-कौशल संस्कृत नाट्य साहित्य में अनुमेय ही है, जहाँ एक ही व्यक्ति अभिनेता और प्रेक्षक दोनों ही है। राम और लक्ष्मण इस प्रकार के व्यक्ति हैं।

उत्तररामचरित के तृतीय अंक में कथावस्तु सम्बन्धी कला का विशेष चमत्कार है। अपनी प्रियतमा के विलुप्त हो जाने के पश्चात् उसके प्रत्यागमन और संस्पर्शन आदि का वृत्त भास के स्वप्नवासवदत्त में सुपरिचित है। सम्भव है, भास की कथा पहले से प्रचलित किंवदन्ती के अनुरूप ही हो किन्तु भवभूति की कथा की योजना उनकी प्रतिभा से विकसित प्रतीत होती है। जब राम पंचवटी आते हैं तो गंगा किसी घरेलू काम के बहाने गोदावरी से मिलने आती हैं। वहीं सीता गंगा के साथ हैं। सारा उद्देश्य है राम को पंचवटी दर्शन के समय आश्वस्त रखना! गंगा सीता से कहती हैं कि मेरे प्रभाव से तुम को पृथ्वी तल पर विचरण करते हुए देवता भी नहीं देख सकते, मनुष्यों की क्या बात ? इस प्रकार पंचवटी-दर्शन के समय राम के वारवार मूर्च्छित होने पर सीता अपने उपस्थान से राम की पत्नी-वियोग-जनित आतुरता की प्रखरता को कम करती हैं। इस दृश्य का संविधान और विन्यास इतने कौशल्यपूर्ण और सरल ढंग से किया गया है कि नाट्य साहित्य में इसका स्थान अद्वितीय ही है। राम और सीता की लुकाछिपी का खेल इतने गम्भीर वातावरण में सफलता और सरसता पूर्वक चित्रित कर देना भवभूति की ही लेखिनी की अतिशाथिता है। उपर्युक्त दृश्य के निदर्शन में भवभूति केवल भास से ही आगे नहीं हैं, अपितु वे कालिदास से भी बढ़ गये हैं। कालिदास ने भी पुरूरवा और उर्वशी अथवा दुष्यन्त और शकुन्तला का जो मिलन-दृश्य विन्यस्त किया है, उसमें इतनी मार्मिकता नहीं आ पाई है। तृतीय अंक में करिकलभ की प्रासंगिक घटना का, नियोजन कला की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। राम और सीता को पूर्वकालीन स्मृतियों के कारण अतिशय हार्दिक विषाद है। उस समय उन दोनों के सामने करिकलभ का वृत्तान्त लाकर मानसिक अवसाद की क्षीणता कम कर दी गई है। यहां अभिनयात्मक कला का अनुत्तम सुयोग भवभूति ने प्रस्तुत किया है। तृतीय अंक में सीता तो अदृश्य हैं। उनकी बात तक कोई नहीं सुन सकता किन्तु इस प्रसंग में सीता की बातें बिना सुने हुए ही अकेली राम की बातों का क्रम ऐसा बनाया गया है कि वे सीता की बातों के उत्तर-रूप में भी सटीक बैठती हैं। राम ने कहा था कि अवश्य ही सीता को हिंस्र पशुओं ने खा डाला होगा। सीता कहती हैं - **अज्जउत्त धरामि एसा धरामि**

इसे राम ने सुना तो नहीं पर वे कहते हैं - **हा प्रिये जानकि क्वासि।**

यह अन्तिम वाक्य पूर्व वक्तव्य के क्रम में है और साथ ही सीता की उक्ति का उत्तर भी है।[1]

एक दृश्य में राम समझते हैं कि मुझे सीता का स्पर्श प्राप्त है। वे कहते हैं-

सखि वासन्ति, आनन्दनिमीलितेन्द्रियः। साध्वसेन परवानस्मि। तत्त्वं तावदेनां धारय।

राम की इस उक्ति को सुनकर वासन्ती कहती है - **कष्टमुन्माद एवं।**

उसे भी सीता के स्पर्श की वास्तविकता की अभिज्ञता नहीं। सीता के लिए भी राम का स्पर्श वास्तविक है किन्तु सीता तो अदृश्य हैं। राम भी मानो सपना देखते हुए की भांति सीता के स्पर्श की वास्तविकता को असत्य ही मानते हैं। नाटककार का कला-नैपुण्य - भाव की प्रवेगमयी धारा में बहते हुए पात्रों को भवभूति ने अपना आपा खो देने के लिए विवश कर दिया। ऐसी स्थिति में वह दृश्य आता है, जब सीता-हरण और जटायु-मरण आदि पात्रों को मानो प्रत्यक्ष से हो रहे हैं और सीता कहती हैं -

(सास्रम्) अज्जउत्त तादो वावादीअदि। अहं वि अवहरिज्जामि। ता परित्ताहिं परित्तहिं।

(सवेगमुत्थाय) आः पाप तातप्राणसीतापहारिन् क्व यासि।

कथा-प्रपञ्च में पूर्वानुस्मृति का अभिन्नाश्रय लेकर रस और चरित्र- चित्रण के उत्कर्ष को द्विगुणित कर दिया गया है। वे पात्रों को उदात्ततम स्वरूपित करने के लिए प्रसङ्गतः अनपेक्षित प्रकरणों का भी उल्लेख करने में हिचकिचाते नहीं। ऐसे उल्लेख भी पुर्वानुस्मृति की कोटि में आते हैं। उदाहरण के लिए अरुन्धती की यह उक्ति लीजिये -

एष वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः। याज्ञवल्क्य मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ।।4.9

इसमें दूसरी पंक्ति जनक के चरित्र पर प्रकाश डालती है, पर प्रसङ्गतः अनपेक्षित है। इसी प्रकार का श्लोक है -

यया पूतंमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः।
त्रिलोकीमङ्गल्यामवनितललीनेन शिरसा जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम्।।4.10

पूर्वानुस्मृति के प्रकरणों को रस-निष्पत्ति के लिए अभूतपूर्व साधन भी अपनाया गया है। वीथिका-चित्र-दर्शन, जनक के द्वारा सीता का शैशव-स्मरण, कौशल्या का कहना है कि सुमारिदम्हि अणिव्वेदरमणीए दिअसे आदि कुछ अन्य प्रकरण इसी प्रकार के हैं। जनक जो पूर्ण रूप से विरत हो चुके हैं, उन्हें भवभूति ने पूर्वानुस्मृति के पाश में डालकर कौशल्या को देखते ही कहलवाया है - **एतत्प्रत्येति सैवेयमिति आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।**

कष्टं बतान्यदिव दैवदर्शन जाता। दुःखात्मकं किमपि भूतमही विपाकः।।4.6
य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः। क्षते क्षारमिवासह्यां जातं तस्यैव दर्शनम्।।47।।

अरुन्धती पुनः इसी पुर्वानुस्मृति का सहारा लेकर करुण-रस की निर्झरिणी बहाती हैं। यथा -

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।4.12

जनक का भी वह पथ है -

स सम्बंधी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं, स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं, महाराजः श्रीमान् किमिव मम नासीद्दशरथः।।4.13

पूर्वानुस्मृति सम्बन्धी इस कला को भवभूति ने स्वयं ही नीचे लिखे श्लोक में निर्देशित किया है -

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदः, प्रथममेकरसामनुकूलताम्।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणो, विधिरहो विशिनष्टि मनोरुजम्।।4.15

इसका प्रत्यक्ष-सा उदाहरण कौशल्या के नीचे लिखे वाक्यों में देखिए -

कौशल्या-(आश्वस्य) हा वच्छे, जाणइ, कहि सि सुमिरामि दे णवविवा-हलच्छी परिग्गहेक्कमण्डनं पप्फुरन्तसुद्धविहसिदं मुद्धमुहपुण्रीअं। आप्फुरन्तचन्द-चन्दिआसुन्दरहि अङ्गेहिं पुणो वि मे जादे उज्जोएहिच्घङ्गं। सव्वदा महाराओ भणादि। एसा रहुउलमहत्तराणं बहुअम्हाणं दु जणअसुआ दुहिदेव्व।

यही पूर्वानुस्मृति लव से अरुन्धती, कौशल्या और जनक के मिलने के अवसर पर पुनः उद्दाम बन जाती है। लव को रामायण की कथा का अभ्यास था। उसकी पूछताछ होने लगी तो जनक ने अन्त में लव से प्रश्न किया-वत्स, कथय कथाप्रसङ्गस्य कीदृशः पर्यन्तः और लव ने पुनः पूर्वानुस्मृति का कारुण्य प्रवाहित किया- **अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसम्भवां सीता- प्रसन्नप्रसववेदना- मेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्तः।** बस, इसी एक वाक्य में पूरी रामकथा का कारुण्य निर्भर है। गर्भांक में सीता की करुण-गाथा की पुनरावृत्ति करके और साथ ही उनकी वर्तमान स्थिति का परिचय देकर भवभूति ने प्रेक्षकों को इतना करुणार्द्र कर दिया है कि उनके पास गिराने के लिए आँसू नहीं रह जाते। कथा-वस्तु में यथासमय कलात्मक मोड़ देने में भवभूति दक्ष हैं। नोकावेग को मिटा देने के लिए कालिदास की भांति ही भवभूति ने भी आकस्मिक संरम्भ का संयोजन किया है। सीता के वनवास का प्रसंग राम के हृदय को बैठाये जा रहा है। उसी समय नेपथ्य में -

ऋषीणामुग्रतपसां यमुना तीरवासिनाम्।
लवणत्रासितः स्तोमः शरण्यं त्वामुपस्थितः।।1.50

इस श्लोक को सुनकर राम सीता को आधा भूल गये।

चारित्र-चित्रण-कला

कवि ने पात्रों के चयन द्वारा इस नाटक के स्तर को अतीव उदात्त बना दिया है। राम और सीता जैसे महान् विभूतियों के साथ ही वाल्मीकि वसिष्ठ और जनक जैसे महर्षि, पृथ्वी, भागीरथी, वासन्ती, गोदावरी, तमसा, मुरला और अरुन्धती जैसी देवियाँ इस नाटक में पात्र बनकर प्रस्तुत हैं। उनकी उपस्थिति-मात्र से नाटक में उज्ज्वल महिमा का प्रादुर्भाव हुआ है। नीचे के श्लोक से इसकी विशेष प्रतीति की जा सकती है -

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु-
र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः।
विद्यां वागिव यामसूत भवती तद्वत्तु या दैवतं
तस्यास्तं दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः।।4.5

किसी भी महापुरुष के महानुभाव से उसके चतुर्दिक् वातावरण पर प्रभाव पड़े तो वही वास्तविक महानुभाव है। भवभूति के पात्र कुछ ऐसे ही निरूपित किये गये हैं। चतुर्थ अङ्क में लव आता है तो कौशल्या, जनक और अरुन्धती तीनों प्रभावित होते हैं। उनके मनोभाव सुनिये -

कौशल्या-अम्महे एदाणं मज्झे को एसो रामभद्दस्य कोमारलच्छीसरिसेहि सावट्टम्भेहिं मुद्दलक्तिदेहिं अंगेहिं अम्हाणं लोअणाई सीअलविदि।

अरुन्धती-झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोऽमृताञ्जनम् जनक-भिद्येत वासद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।

उपर्युक्त वक्तव्यों से व्यञ्जना के द्वारा भवभूति ने चरित्र-चित्रण कर दिया है कि वह कोई विशेष विभूति है। पाँचवें अङ्क में शत्रु बनकर चन्द्रकेतु आता है। तथापि वह लव के महानुभाव से प्रभावित है। देखिए एक ही श्लोक में इन दो भावों का निर्वाह कितने कौशलपूर्वक भवभूति ने किया है -

चन्द्रकेतुः- अत्यद्भुतादसि गुणातिशयात्प्रियो मे तस्मात् सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः।।5.10

लव के नीचे वक्तव्य के माध्यम से भवभूति ने अपनी इस चरित्र-चित्रण कला का रहस्योद्घाटन किया है -

लव- अहो महानुभावस्य प्रसन्नकर्कशवीरवचनप्रयुक्तिर्विकर्तनकुलकुमारस्य। महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।6.11

और भी-

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी तथैवास्मिन्दृष्टिर्ममकलहकामः पुनरयम्।
रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु-र्धृतप्रेमां बाहुविकचविकरालोल्बणरसः।।5.26

राम के चरित्र-चित्रण में भी कवि की यह कला स्फुरित हुई है। लव ने उन्हें देखा और प्रतीत किया-

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निवृत्तिघन-स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम्।
झटित्यस्मिन् दृष्टे किमिव परवानस्मि यदिवा महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।6.11

उपर्युक्त श्लोक के चतुर्थ पाद के अनुसार महापुरुषों का कोई अनिवर्चनीय अतिशय होता है। चरित्र-चित्रण में इस अतिशय को लक्ष्य बनाकर चलना भवभूति की कला है।

राम ने सीता को वनवास देकर जो बुरा किया, उसका मार्जन कवि की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कला ही कर सकती है। दुर्मुख के सीता-सम्बन्धी परगृहवास-दूषण की चर्चा करने पर राम के द्वारा पुनः उन परिस्थितियों का आकलन कराया जाता है, जिनमें सीता का परित्याग किया जा सकता है-सज्जनों का लोकाराधन व्रत, वसिष्ठ का सन्देश और सूर्यवंश के चरित्र की शुद्धि का ध्यान। यही बात शम्बूक-वध के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। कवि की कला राम के चरित्र के उदात्त पक्ष का निर्वाह करती है। पहले तो भवभूति ने यह दिखाया कि ब्राह्मण-पुत्र को जीवित करने के लिये यह आवश्यक था। दूसरे मारे जाने पर दिव्य पुरुष होकर शम्बूक अभ्युदय के पथ पर अग्रसर हुआ। ऐसा होना प्राक्कलित भी था। तीसरे कवि ने राम के मुख से कहलवा दिया कि मैं जानता हूं कि यह क्रूरता का काम होने पर भी कर्तव्य है। पर सब से बढ़ कर कला का संयोजन यह है कि यह राम का अपराध नहीं है। यह उनके एक अङ्ग, हाथ का अपराध है। यही स्वीकारोक्ति ही मार्जन की विधि है। फिर राम को सर्वाङ्ग अपराधी नहीं कह सकते। भवभूति ने यहाँ कितनी कलात्मकता के साथ व्यक्त किया है कि शम्बूक वध राम के व्यक्तित्व का यदि विपरीत पक्ष नहीं है तो कम से कम एकाङ्गी और वह भी अपवादात्मक पक्ष है। इस प्रसङ्ग में प्रस्तुत कला-निर्भर श्लोक का पारायण करें-

हे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य गात्रमसि निर्भरगर्भखिन्न-सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते।।2.10

राम जी कहते हैं - कृतं रामसदृश कर्म, इस वाक्य से स्पष्ट व्यक्त हो जाता है कि शम्बूक को मारने वाला व्यक्ति वास्तविक राम से भिन्न है। यह है कला भवभूति की वर्णन-कला में स्निग्धत्व वस्तुओं का नाम गिना देने की पद्धति निवर्चनीय है। किसी एक वस्तु से सम्बद्ध भाव-निगूढ़ता की सरिता में अवगाहन कराने की पद्धति

भवभूति की नहीं है। भवभूति के वर्णन में फोटोग्राफ जैसा चित्रग्रहण प्रायः मिलता है। उदाहरण के लिए नीचे लिखा श्लोक है-

इहसमदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः।।2.20

इस श्लोक में निर्झरिणी है। जम्बू वृक्ष का समूह है। उसके फल पके हैं। वहाँ मदमत्त पक्षियों में वानीर व्याप्त हैं। उनके फूलों से निर्झरिणी का जल सुरभित है। जम्बू-वृक्ष के नीचे से निर्झरिणी का प्रवाह मुखरित है। इस श्लोक से, हृदय को भावों की प्राप्ति सम्भव है, बहुत न हुई हो किन्तु नेत्रों को बहुत कुछ देखने को मिल गया।

उपर्युक्त वर्णन में चित्रगृहीत वस्तुओं का महत्त्व है, उनके विशेषणों का नहीं है। नीचे लिखे श्लोक में वर्णन-कला का यह उदाहरण विशेष प्रस्फुटित है -

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धुनोत्यजस्रम्, दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्, किं वाख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः।।4.26

भवभूति करुण-रस की निष्पत्ति के लिए कोरी भावुकता पर्याप्त नहीं मानते। वे करुण-दृश्य को सीधे सामने रखकर मानो हृदय पर करुण का आरा चला देते हैं। यथा -

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता, विषक्तस्तीवेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे, निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति।।4.3

प्रायः यही दृश्य कौशल्या के नीचे लिखे वाक्य में उपस्थित है- ता ण सक्कुणोमि उव्वट्टमाणमूलबन्धनं हिअयं पज्जवत्थावेदुं। करुण की धारा भवभूति ने उत्तररामचरित में अजस्र प्रवाहित की है किन्तु पाठकों का हृदय इस रस के भौतिक वेग से कहीं बैठने न लगे-इस उद्देश्य से उन्होंने स्थान-स्थान पर कुछ विधान प्रस्तुत किए हैं। उदाहरण के लिए सीता के सम्बन्ध में जनक, कौसल्या और अरुन्धती आदि बातें कर रही हैं। करुण अपने सर्वोच्च शिखर पर व्याप्त है। जनक ने कहा :- **घोरेऽस्मिन् जीवलोकनरके पापस्यधिग्जीवितम्।4.17**

कौशल्या ने कहा :- दिढवज्जलेवपडिबद्धिणिच्चलं हदजीविदं मं मन्दभाइणीं ण पडिच्चअदि।

तभी अरुन्धती कहती है :- **आश्वसिहि राजपुत्रि वाष्पविश्रामोऽप्यन्तरे कर्तव्य एव अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवितव्यं तथेत्युपजातमेव किं तु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति।**

कौशल्या के यह कहने पर कि 'कुदो अदिक्कन्दमणोरहाए मह एदं' अरुन्धती ने उत्तर दिया :-

तत्किं मन्यसे राजपुत्रि मृषोद्यं तदिति। न हीदं सुक्षत्रियेऽन्यथा मन्तव्यम्। भवितव्यमेव तेन।
आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषिक्ता नैते वाचं विप्लुतार्था वदन्ति।।4.18

अरुन्धती के माध्यम से भवभूति ने प्रेक्षकों की सान्त्वना के लिए एक और काम किया। उसने अपवारित विधि से उनसे कहा -

इदं नाम भागीरथी निवेदितरहस्यं कर्णामृतम्। न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोः।

यह रहस्योद्घाटन पाठकों को करुण रस के वेग से बचाने के लिए ही था। रस-विन्यास-कौशल की स्पष्ट अभिव्यक्ति पांचवें अङ्क में होती है। चौथे अङ्क तक तो भवभूति ने करुण की गंगा बहाई है। सम्भवतः उनको भान हो गया कि इसके आगे करुणा की गाड़ी नहीं चलेगी। करुण की सीमा नातिग होती है, अनन्त नहीं बस,

पांचवें अंक में उन्होंने करुण को पास तक न फटकने दिया और दशकों में वीर रस भरने के लिए चन्द्रकेतु और लव का युद्ध वर्णन कर दिया। तभी तो आगे चलकर दशक करुण की धारा में पुनः अवगाहन करने के लिए प्रस्तुत हो सके।

पांचवें अङ्क में मिश्रीकृत रसक्रम का सफल प्रयोग किया गया है। यथा-

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी तथैवास्मिन् दृष्टिर्मम कलहकामः पुनरयम्।

रणत्कारक्रूरक्वणितगुणागुञ्जद्गुरुधनु-र्धूतप्रेमा बाहुर्विकचविकारालोल्वणरसः।।5.26

इसमें भ्रातृप्रेम और वीरोत्साह का मिश्रण है। प्रेम और वीरता का मिश्रण भवभूति न छठें अंक में निभाया है, विशेषतः उस प्रकरण में जब राम की कुश से भेंट होती है।

भवभूति का वीर रस तो मूर्तिमान है। राम के शब्दों में

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।

कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव।।6.19

अभिव्यक्ति-

तृतीय अंक की अभिव्यक्ति विशेष कौशलपूर्ण है। करिकलभक और गिरिमयूर दोनों अपनी-अपनी पत्नियों के साथ सानन्द हैं। प्रकृति के बीच यही विधान है। इस प्राकृतिक विधान में राम और सीता का पृथक् होना ही अस्वाभाविक है। यह अस्वाभाविकता अशाश्वत है। यदि पति-पत्नी का चिरमिलन ही प्रकृति का नियोजन है तो राम और सीता का पुनर्मिलन अवश्यम्भावी है और वह भी शीघ्र ही। यही इस अंक की कथावस्तु की प्रथम अभिव्यक्ति है। भवभूति ने इस अभिव्यक्ति को मानो कुछ अधिक स्पष्ट करने के लिए ही सीता के मुख से कहलवाया है-

सहि वासन्दि कि तुए विद अज्जउत्तस्स मह अ एदं दंसअन्तीए। हद्धी हद्धी। सो एव्व अज्जउत्तो। तं एव्व पचवटी-वण सा एव्व पियसही वासन्दी दे एव्व विविहविस्सम्भसविक्खणो गोदावरीकाणणोद्देसा, दे एव्व जादणिव्विसेसा मिअपक्खिपाअवा, सा ज्जेब चाह। मह उण मन्दभाइणी ए दीसन्तं वि सव्वं एव्व एद णत्थि त्ति सो ईदिसो जीवलोअस्स परिवत्तो।

तृतीय अंक के द्वारा राम के चरित्र का उदात्ततम स्वरूप अभिव्यक्त है। राम के साथ सीता शरीरतः यद्यपि नहीं रहीं, तथापि उनके मन में सीता सदा रहीं। राम ने दूसरा विवाह नहीं किया, इतना उनका हार्दिक प्रेम था सीता के साथ। यह सब इस अंक से व्यक्त होता है।

प्रेम-विश्लेषण- भवभूति ने उत्तररामचरित में प्रेम के विराट् स्वरूप और सीमातिग क्षेत्र का परिचय दिया है। इसका मूल मन्त्र राम के शब्दों में है-

व्यतिषिजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रतीयः संश्रयन्ते।[2]

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।6.12

पति और पत्नी का प्रेम इस प्रसंग में सर्वोपरि है। पत्नी का एक वाक्य स्नेह-निर्भर होने पर क्या कर सकता है-

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि, सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।

एतानि ते सुवचनानि सरीरुहाक्षि, कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।1.36

यह स्नेह करता क्या है ? देखिये

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्-विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते।।1.29

वही पत्नी राम के शब्दों में गृह-शोभा है।[3] जो जिससे स्नेह करता है, वह उसके लिए सब कुछ है-इस प्रसङ्ग में पत्नी का स्नेह निर्वचनीय है। राम ने सीता के प्रेम के विषय में कहा है-

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति। तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।।2.19

राम का पत्नीव्रत था-

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः। प्रणष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति।।3.33

तथापि पति-पत्नी के प्रेम में भवभूति का विश्वास था- **हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।।6.32** स्नेह का रूप सज्जनों की संगति में कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इनके लिए तो पुण्यों को न्यौछावर किया जा सकता है। वनदेवता के शब्दों में- **सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।2.1**

इस सत्सङ्गति का लक्षण युक्त विवेचन है-

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो व पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्ध विजयते।।2.2।।

शिशुओं के साथ प्रेम का वास्तविक रूप भवभूति की दृष्टि में है। जैसे ठूंठ में भी वसन्त सरसता ला देता है, वैसे ही यह शिशु-प्रेम ऋषियों और चराचरों को सप्रेम बना देता है। आत्रेयी के शब्दों में-

द्वारकद्वयमुपनीतम्। तत्खलु न केवलमृषीणामपितु चराचराणां भूतानामान्तराणि तत्त्वान्युपस्नेहयति।

माता-पिता के लिए शिशु क्या हैं :-

अन्तःकरणत त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते।।3.17

अपनी सन्तति का शोक कितना गहरा हो सकता है-इसकी कल्पना महाराज जनक के उदाहरण में करें। सीता के निर्वासन का वृत्त सुनकर वे वैखानस बन कर तप करने लगे, पर तब भी सीता के वियोग-जनित व्यथा से उनकी मुक्ति नहीं है-

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।
अन्तःप्रसृतदहनो जरन्निव वनस्पतिः।।4.1

वे सीता के विषय में 'वदनकमलकं शिशोः स्मरामि' के अनुसार सदैव चिन्तित रहे।

चराचर के साथ महानुभावों का प्रेम दिखाना भवभूति के लिए अभीष्ट है। पंचवटी का नाम सुनते ही आत्रेयी को सर्वप्रथम सीता के वृक्षों के साथ बन्धुत्व का स्मरण हो आता है- **स एष ते वल्लभशाखिवर्गः।2.6** राम ने सीता के विषय में कहा है-प्रियारामा हि सर्वथा वैदेही आसीत्। सीता ने भी राम से कहा था- **त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु।2.18** राम के प्रेम ने प्रकृति को सजीवता प्रदान कर रखी है। वे पंचवटी प्रदेश की इस सजीवता का उपाख्यान करते है- **तदत्रेव सा पञ्चवटी यत्र चिरनिवासेन विविधविस्रम्भातिसाक्षिणा प्रियायाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता।** राम के साथ पंचवटी का यही सजीवता का भाव आगे भी रहा है। तभी तो राम ने कहा है- **हन्त परिहरन्तमपि मामितः पंचवटीस्नेही वलादाकर्षति।** पंचवटी की सम्भावना करना राम अपना कर्तव्य समझते हैं उसी प्रकार अगस्त्यादि ऋषियों का।[4]

प्रकृति की उपर्युक्त सजीवता का विशदीकरण करके भवभूति ने प्रकृति से अपने नाटक के लिए पात्र ढूँढ़ लिये हैं। वे हैं नदियाँ-तमसा, मुरला, गोदावरी, गङ्गा, सरयू। इनके साथ पृथ्वी।

सीता का पशुओं और पक्षियों के साथ प्रेम भी उदात्त है। उन्होंने हाथी के बच्चे को पाला। उसे सल्लकी-पल्लवाग्र खिलाती थी। एक पालिक मोर को वे नचाया करती थीं। प्रकृति के बीच सीता के प्रेम ने सौहार्द्र का साम्राज्य बना रखा था। हाथी का बच्चा उनका पुत्रक था। भवभूति के अनुसार प्रकृति ने राम और सीता के लिए एक कुटुम्ब बना रखा था। यथा-

येनोद्गच्छद्विकसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण व्याकृष्टस्ते सुतनु लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः।।[5]

प्रकृति का प्रेम-व्यापार उसके मानवीकरण के लिए अभिव्यक्त है। हस्ति-दम्पती में कान्तानुवृत्ति-चातुर्थ का परिलक्षण इसी मानवीकरण के उद्देश्य का साधक है। राम ने वत्स हस्तियुवक के विषय में कहा है-

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामं पुन-र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।।3.16

वह एक नागरिक के समान प्रियानुवर्तन में निष्णात था।

हाथी के समान ही मयूर वधूसख था। राम ने उसके विषय में कहा है- **सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।।3.19** राम और सीता के प्रकृति-प्रेम ने पशु-पक्षियों से जो मैत्रीभाव स्नेह- सम्बन्ध के द्वारा स्थापित किया था, उसका प्रत्यक्ष और कार्य के माध्यम से परिचय नीचे के श्लोक में मिलता है-

ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः, स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।
कलमविरल रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः, पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः।।

यह है प्रेमिका प्रकृति के द्वारा राम का अभिनन्दन। यह वही प्रकृति है, जिसके सम्बन्ध में कभी यह सत्य था- **करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मैथिली यानपुष्यत्।3.25** भवभूति ने प्रथम दृष्टि में उत्पन्न स्नेह का वर्णन किया है। सुमन्त्र के शब्दों में ऐसे प्रेम की व्याख्या है- **भूयसा जीविधर्म एष यद्रसमयी कस्यचित् क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिका- नामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति। तमप्रतिसंख्येयमनिबन्धनं प्रेमाणमामनन्ति। अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया। स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति।।5.20**

यह प्रथम दृष्टिगत स्नेह महानुभाव से प्रतिफलित होता है। ऐसे महानुभाव के सम्पर्क में यदि शत्रुभाव से भी भले मानुष आ जायें तो उनकी स्थिति इस प्रकार होगी-

एतस्मिन्मसृणितराजपट्टकान्ते, मोक्तव्याः कथमिव सायकाः शरीरे।
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा- दुन्मीलत्पुलककदम्बमङ्गमास्ते।।5.18

जीवन-दर्शन

उत्तररामचरित में भवभूति ने मानव-जीवन का दर्शन स्थान-स्थान पर अंकित किया है। इसके अनुसार सबसे बड़ा सत्य है दैव का सर्वोपरि प्रभाव भागीरथी के शब्दों में- **को नाम पाकाभिमुखस्यजन्तो-र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे।।7.4** भवभूति गीता के कर्मयोग को जीवनी की सर्वोत्तम सफलता मानते थे उनके आदर्श राम थे, जिनका व्रत था-लोकाराधन। इस लोकाराधन में सदा प्रशंसा मिलेगी-यह निश्चित नहीं है। राम को ही अनेक स्थलों पर व्यक्त या अव्यक्त विधि से कर्तव्यपथ पर चलने के लिए खोटी-खरी सुननी पड़ी। तथापि- **सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।।1.5** जीवन को सफल और सुखी बनाने के लिए आवश्यक है अपने को अच्छा बना लेना और फिर सज्जनों का साथ करना। भवभूति के अनुसार सज्जनों का साथ मिल जाना आकस्मिक नहीं है। इसके लिए पुण्य होना चाहिए। मनुष्य को अपना चरित्र कैसा बनाना चाहिए ? भवभूति का मत है कि

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं-एक तो वे साधारण हैं-घिसे-पिटे मार्ग पर चलने वाले और दूसरे वे जो असाधारण हैं। असाधारण लोगों को भवभूति ने लोकोत्तर कहा है। ऐसे लोकोत्तर मानव की चित्तवृत्ति है-**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।** आवश्यकता पड़ने पर अति कठोर, अन्यथा कुसुम से भी कोमल। यदि ऐसा न हुआ तो गुड़ को खाने वाले इतने चीटें मिलेंगे कि अस्तित्व ही मिट जाय। तभी तो कहा है- **न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां बिसहते।** अपने व्यवहार से लोक में मधुरता आपादित करना महापुरुषों का काम होना चाहिए। इस उद्देश्य से सत्य और मधुर वाणी का प्रयोग अपेक्षित है। भवभूति के अनुसार ऐसी वाणी- **कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति। तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां, धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः।।5.30**

चित्र-दर्शन-प्रकरण

उत्तररामचरित का चित्र-दर्शन-प्रकरण भासकृत प्रतिमानाटक में भरत के द्वारा प्रतिमा-दर्शन के समान अंशतः पड़ता है। भास ने इस प्रतिमा-दर्शन को महत्त्वपूर्ण मानकर इस नाटक का नाम प्रतिमा दे डाला था। वीथिका-चित्र दर्शन का सबसे अधिक महत्त्व है परवर्ती अंकों में नाटक की कथावस्तु और पात्रों के चरित्र-चित्रण की भूमिका प्रस्तुत कर देना। किस प्रकार राम, लक्ष्मण आदि के चरित्र पर यह चित्र-दर्शन-प्रकरण प्रकाश डालता है, इसे पात्रोन्मीलन के प्रसङ्ग में देखा जा सकता है। इसमें प्रत्यक्ष ही राम के माहात्म्य की प्रतिष्ठा है और सीता का मनोरंजन होता है। इस चित्र-दर्शन में सीता और राम के परवर्तिवियोग की व्यञ्जना कलात्मक विधि से की गई है। पंचवटी में शूर्पणखा का चित्र देखते ही सीता चिल्ला पड़ीं- **हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं।** इस अवसर पर राम को कहना पड़ा- **अयि विप्रयोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।** इन वाक्यों के अर्थ की गम्भीरता देखिए। पाठक इनको देखकर भावी आशंका की कल्पना कर लेता है। इसी परिस्थिति में आगे चलकर राम कहते हैं-

विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः।।1.33

जैसा अन्य नाटकों में देखा जा सकता है, कवि का उद्देश्य है पात्रों के चरित्र को परिमार्जित रखना। राम को किन्हीं परिस्थिति में सीता को वनवास देना पड़ा। इस वनवास देने की बात को राम के चरित्र के ऊपर धब्बा न समझा जाये- इसके लिए कवि ने सीता के दोहद का उपन्यास इसी चित्र-दर्शन के माध्यम से सफलतापूर्वक किया है। सीता कहती है- **अज्जउत्त एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहदाए अत्थि मे विण्णप्पं। जाणो पुणो वि पसण्णगम्भीरासु वणराइसु विहरिस्सं पवित्तसोम्म सिसिरावगाहां च भअवदीं भाईरहीं अवगाहिस्सं।** अभी दुर्मुख की बात आने ही को है कि राम ने लक्ष्मण से कहा कि सीता को वन-दर्शन कराने की व्यवस्था कर दी। उत्तररामचरित में सीता के पुत्रों के सरहस्य जृम्भकास्त्र-युक्त होने का विशेष महत्त्व है। आत्रेयी ने वनदेवता से द्वितीय अंक में वाल्मीकि के द्वारा प्राप्त दारकद्वय का प्रभाव बताया- **तयोः किल सरहस्यानि जम्भकास्त्राण्या जन्मसिद्धानीति।** पञ्चम अङ्क में लव इस जृम्भकास्त्र का प्रयोग करता हुआ देखा जाता है। इस प्रसङ्ग की नीचे लिखी उक्तियाँ व्यञ्जक हैं-

लवः-कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि।

सुमन्त्रः-वत्स, मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्रमामन्त्रितम्।

कुतः-पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात्।

चन्द्रकेतुः-भगवतः प्राचेतसादिति मन्यामहे।

सुमन्त्रः-वत्स नैतदेवमस्त्रेषु विशेषतो जृम्भकेषु।

यतः कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात्कौशिकं गताः।

अथ तत्सम्प्रदायेन रामभद्रेऽपि स्थिताः।।5.15

इन दोनों प्रकरणों में प्रेक्षकों को यह व्यञ्जना द्वारा प्रकट हो जाता है कि ये राम के पुत्र हैं। इस व्यञ्जना का आधार चित्र-दर्शन-प्रकरण में है, जहाँ राम ने सीता से जृम्भकास्त्रों के विषय में कहा है-

रामः-वन्दस्व देवि दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परः सहस्राः शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन् गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।।1.15 सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

प्रेक्षकों को प्रत्यक्ष ही यह ज्ञात रहता है कि जृम्भकास्त्र राम के पुत्रों के ही हो सकते हैं। इस प्रकार प्रेक्षकों को स्थान-स्थान पर करुण का प्रभाव कम करने की योजना सफल बनाई गई है। षष्ठ अंक में लव के जृम्भकास्त्र-प्रयोग को देखकर राम ने उससे पूछा कि कैसे मिला तुम्हें जृम्भकास्त्र ? राम वही श्लोक प्रयुक्त कर रहे हैं, जो पहले अंक में उन्होंने चित्र-दर्शन-प्रकरण में किया था। इससे पुनः व्यक्त होता है कि राम का पुत्र लव है, जिसे उत्तराधिकार रूप में जृम्भकास्त्र पिता से प्रदत्त होकर सिद्ध है। अन्त में कुश और लव को देखते हुए जब उन्हें प्रायः विश्वास-सा हो चला कि ये दोनों मेरे पुत्र ही हैं तो एक बार और इन जृम्भकास्त्रों के सम्प्रदाय को अकाट्य प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है-

यदपि स्वतः प्रकाशान्यस्त्राणीति तत्र विमृशामि। अपि खलु तच्चित्रदर्श प्रासङ्गिकमस्त्रानुज्ञानमुद्भूतं स्यात्। न ह्यसाम्प्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामप्यनुशुश्रुम अय च संप्लवमानमात्मानं सुखातिशयो हृदयस्य मे विस्रम्भयते। सीता की शुद्धी को प्रमाणित करने वाले सर्वप्रथम ये जृम्भकास्त्रादि सातवें अङ्क में दिखाये गये हैं। यदि सीता पवित्र न होतीं तो वाचा-प्रद एवं गुरुक्रम से प्राप्तव्य कैसे ये शस्त्र लवकुश का उपस्थान करते। नेपथ्य से यह घोषणा होती है-

देवि सीते नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हिते। आलेख्यदर्शनादेव ययोर्दाता रघूद्वहः।7.10

चित्र-दर्शन प्रकरण में चित्र-लिखित गंगा से राम ने कहा था। **'सा त्वमम्ब स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।'**

उपर्युक्त प्रसङ्ग में सप्तम अंक में गंगा का नेपथ्य से कहना-

जगत्पतये रामचन्द्र स्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मनो वचनं यथा त्वमम्ब स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवेति तत्रानृणास्मि जाता।

शैली

पदावली

भवभूति की शैली भावानुरूप सरल या कठिन है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति करते समय सरल कान्त पदावली का प्रयोग साधारणतः सर्वत्र मिलता है। यथा-

जीवस्तु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः।।1.19

अथवा-

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनी भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि[6]।।1.27

कठोरीभूत दिवस का वर्णन करने में भाषा कठोर है। यथा-

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि-
र्धर्मस्त्र-सितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।

छायापष्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः। ।2.9

इस श्लोक में अनुप्रासालङ्कारमात्र है, पर व्यञ्जनावृत्ति के द्वारा उस प्रदेश की चतुर्दिक् सहानुभूति प्रकट होती है। कवि की भाषा नाटक में साधारणतः बोलचाल की होनी चाहिए किन्तु जहां किसी घनघोर दृश्य का स्मरण करना है, वहां भवभूति ने समाप्त बहुला संयुक्ताक्षर-प्रचुरा और बड़े शब्दों की संघटना प्रस्तुत की है। यथा-जन्मस्थान के बीच तक जानें वाले पर्वत प्रस्रवण का वर्णन लक्ष्मण के मुख से इस प्रकार है।

अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरी
-मुखरकन्दरः सततमभिष्यन्दमानमेघदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रसवणो नाम।

प्रेम की बातों के लिए स्निग्धाक्षरों का प्रयोग किया गया है। यथा-

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि। ।1.36

कवि की भाषा समान प्रकरण के लिए भी वक्ता के व्यक्तित्व के अनुरूप सरल या कठोर बनती गई है। वन का वर्णन लीजिये। द्वितीय अंक में शम्बूक द्वारा प्रस्तुत वर्णन कठोर भाषा में है और वहीं राम के द्वारा प्रस्तुत वर्णन अतीव सरल और मधुर भाषा में है। यथा-

शम्बूक :- दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना मनुरसितगुरूणिस्त्यानमम्बू कृतानि।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना- मभिदलितविकीर्णाग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः। ।2.21

राम :- एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा- स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि नीरन्ध्रनीरनिचुलानि सरित्तटानि। ।2.23

भवभूति को कुछ ही पदों के प्रयोग द्वारा एक बहुत बड़ी कथा को बिना कुछ छोड़े हुए कह देने में अनुपम लाघव प्राप्त है। उदाहरण के लिए देखिये लव का कहना- **अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसम्भवां सीतासन्नप्रसववेदनामे- काकिनीमरण्ये लक्ष्मणाः परित्यज्य प्रतिनिवृत्तः।** कभी-कभी किसी महापुरुष या उच्च भाव को प्रकट करने के लिए उस महत्त्व को मानो व्यक्त करने के उद्देश्य से लम्बे समास का प्रयोग किया गया है। कथा-

महापुरुषमाकारानुभावगाम्भीर्यसम्भाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरितातिशम्

यह लम्बा समास राम के व्यक्तित्व की लम्बाई की कल्पना कराता है।

डॉ. पी.वी. काने ने भवभूति की शैली का पर्यालोचन करते हुए कहा है-

Bhavabhuti had a great command over language and was master of style and expression. He often composes verses where sound is an echo to the sense.[7] The popularity of Bhavabhuti and his power of putting true in simple, trenchant and attractive language may be guaged from the fact that many of his verses and even some of his prose passage have a attained the rank of proverbs and Subhasitas.[7]

अलंकार

भवभूति की शैली को अलङ्कार से बोझिल नहीं कहा जा सकता, यद्यपि प्रायः कभी सुप्रचलित अलङ्कारों का रसोद्बोधक प्रयोग उत्तररामचरित में मिलता है। इन अलङ्कारों के प्रयोग में संयम देखकर यह

निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कवि अलङ्कारों को काव्य-चमत्कार का प्रमुख साधन नहीं मानते। भाव गाम्भीर्य की निर्झरिणी के प्रवाह को ही काव्य का प्रमुख उद्देश्य मानते हुए उन्होंने अलङ्कारों के द्वारा भाव-गाम्भीर्य को गंभीरतर बनाने का उपक्रम किया है। यथा-

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।।3.29

इसमें प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार के द्वारा राम के शोक और क्षोभ को प्रखरतर सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार की भाव प्रखरता नीचे लिखे श्लोक अलङ्कार प्रयोग के द्वारा अभिव्यक्त की गई है-

यथातिश्चीनमलातशूल्य, प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्क-मर्माणि कृतन्नपि किं न सोढः।।3.35

अलंकारों में उपमानों का चयन उच्च स्तर पर किया गया है। यथा-

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि। ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः।।6.6

इस श्लोक में उपमालङ्कार में उपमान की खोज ब्रह्मदर्शन से की गई है। उपर्युक्त उच्चता का प्रभावपूर्ण उदाहरण नीचे के श्लोक में देखिये-

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः, क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदः सञ्चया वा गुणाना-माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः।।6.9

उपमान के संचयन में कहीं-कहीं भवभूति ने भाव-सामञ्जस्य और साम्य का ध्यान रखा है। यथा-

वाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मंगलमाननम्। अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्।।6.29

भवभूति ने अलंङ्कारों के प्रयोग द्वारा प्रायः अपनी आख्यानात्मक उक्ति और वक्तव्यों में बल ला दिया है। नीचे के श्लोक के प्रथम पद में आख्यान की प्रामाणिकता तृतीय और चतुर्थ पाद के दृष्टान्तालङ्कार से सिद्ध हैं-

कष्टो जनः कुलधनैरनुञ्जनीय-स्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।1.14

उपर्युक्त श्लोक में राम का सीता के प्रति पूज्य भाव अभिव्यक्त है।

भवभूति ने अर्थान्तरन्यास के द्वारा सुभाषितों और सूक्तिरत्नों को स्थान दिया है। यथा-

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।4.11 पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।4.12
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।6.11
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।6.12
किमाग्नेयो आवा निकृत इव तेजांसि वमति।6.14
को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो-र्दाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे।7.4

भाषा

जहाँ तक भाषा-प्रयोग का सम्बन्ध है, नाटक में स्त्री आदि पात्रों को प्राकृत बोलना ही चाहिए। ऐसा लगता है कि भवभूति को यह नियम प्रिय नहीं था। उत्तररामचरित में तो बहुत सी स्त्रियों को देवीरूप में प्रारंभ करके उनसे संस्कृत का प्रयोग कराया गया है। प्रायः प्राकृत भाषा के वक्तव्य छोटे रखे गये हैं। भवभूति की दृष्टि में प्राकृत भाषा का स्थान बहुत उच्च नहीं था। वह इस बात से प्रकट है कि जिन स्त्रियों को संस्कृत बोलने

की सुविधा दी, वे तो श्लोकों के माध्यम से अपने भाव प्रायशः व्यक्त करती है, पर प्राकृत के पद्य किसी स्त्री के मुख से निस्सृत नहीं हुए। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि भवभूति प्राकृत को पद्यात्मक भाषा मानने में चिकते थे। भवभूति के उत्तररामचरित की उत्कृष्टता पर प्राचीन काल से ही आलोचक मुग्ध रहे हैं। कला की जिस उदात्त पृष्ठभूमि पर भवभूति ने इस नाटक का निर्वाह किया है, वहाँ संस्कृत नाट्य साहित्य में विरले ही दृष्टिगोचर होते हैं।

आधुनिक आलोचकों के मत

प्रोफेसर विल्सन - Brilliant thoughts occur-the justice and beauty of which are not surpassed in any literature.

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर - Noble and lofty sentiments abound in his work in a measure not to be seen in those of other poets.

भण्डारकर - He shows a just appreciation of the awful beauty and grandeur of Nature, enthroned in the solitudes of dense forests, cataracts and lofty mountains. He has an equally strong perception of stern grandeur in human character and is very successful in bringing out deep pathos and tenderness. He is skilful in detecting beauty even in ordinary things or actions and in distinguishing the nicer shades of feeling. He is master of style and his cleverness in adapting his words to the sentiment is unsurpassed.

एस.के.डे. - If he is a poet of human passion, having a strong perception of the nobility of human character and its deeply felt impulses and emotions, he is no less a lover of the overwhelming grandeur of nature, enthroned in the solitude of dense forests, sounding cataracts and lofty mountains. If he expresses his sensation with a painful and disturbing intensity and often strays into the rugged and formless, he thereby drinks deep at the very fountain of life; he realises the man's joy, even if he loses the serenity. His unevenness and inequality, even his verbosity solvenliness, are thus explicable. Bhavabhuti suffers from the exten of his qualities, but the qualities are those of great, but powerful sensitive, poetic mind.

प्राचीन आलोचकों के मत -

स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना।।[8]
भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।।[9]
भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।।[10]
सुकविद्वितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्त्रितयोऽनयोः।।[11]

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।।[12]
रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्तामसीमभोगस्य वचोमयस्य।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परं विभूषां भवभूतिरेव।।[13]
भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः।।[14]
मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः।
वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा जनः कवीनामनुपृष्ठमेति।।[15]

छन्द-योजना

भवभूति ने उत्तररामचरित में भी विविध प्रकार के बड़े-छोटे छन्दों में बहुसंख्यक श्लोकों को भरा है। पूरे श्लोकों की संख्या 255 है, जिनमें 19 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक प्रयुक्त अनुष्टुम् जो 89 श्लोकों में मिलता है। इनके अतिरिक्त शिखरिणी 30 श्लोकों में, वसन्ततिलका 26 श्लोकों में, शार्दूलविक्रीडित 25 में, मालिनी 16, मन्दाकान्ता 13 और हारिणी 9 श्लोकों में प्रयुक्त हैं। छन्दः शास्त्र के मर्मज्ञ मानते हैं कि इन छन्दों के प्रयोग से कवि की प्रौढ कवित्व-शक्ति अभिव्यक्त होती है। शिखरिणी और हारिणी छन्द करुण के लिए विशेष प्रभावशाली हैं।

रस

भवभूति की इस रचना में हास्यादि अगम्भीर रसों को स्थान मिलना साधारण सी बात होती किन्तु हास्य के बिना रामचरित को न पूरा करने ही के लिए मानो कवि ने वसिष्ठ की धार्मिकता से विषण्ण सौधातकि के द्वारा उनका ईषत् परिहास कराया है। बात यह थी कि सौधातिक जिस प्यारी बछिया को चराता था, उसी को दाढ़ीबाबा (वसिष्ठ) महर्षि ने अर्ध अवधि के अनन्तर खा डाला। बस देखिए सौधातकि को क्या कहना है। बछिया मरी तो उसको चराने से छुट्टी मिली और दूसरी छुट्टी मिली शिष्टाध्याय की। सौधातकि कहता है अपने साथी से-

सौधातकि-पढ़ाई से छुट्टी दिलाने वाले इन अनेक प्रकार के दढ़ियल लोगों का भला हो।
दाण्डायन-सौधातके, गुरुओं का यह घोर आदर प्रदर्शित करने का कोई बड़ा कारण अवश्य ही है।
सौधातकि-भो दाण्डायन, इस बड़े सठियाये हुए लोगों के झुण्ड का धुरन्धर नेता अतिथि कौन आया है?
दाण्डायन-धिक्कार है तुम्हारे प्रहसन को। ये वसिष्ठ हैं।
सौधातकि-मैंने तो समझा था कि यह कोई बाघ या भेड़िया आ गया।
दाण्डायन-क्या बकते हो ?
सौधातकि-आते ही तो बेचारी कपिला कल्याणी को मडमड़ा गये।
यह प्रसङ्ग भवभूति के इस नाटक में आवश्यक नहीं था। सम्भवतः हास्य के लिए ही इसे स्थान दिया गया है।

इस नाटक में रस की दृष्टि से करुण का सर्वाधिक महत्त्व है। प्रस्तुत अंक में करुण का प्रवाह अन्य अंकों की अपेक्षा विशेष प्रखर है। भवभूति के शब्दों में-**पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।** और-

करुणस्य भूतिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।3.4

भवभूति के अनुसार करुण ही सर्वोपरि रस है। उन्होंने वेदान्त दर्शन की पृष्ठभूमि लेकर इस अंक में कहा है कि करुण ही विभिन्न रसों का रूप ग्रहण करता है-

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विकर्तान्।
आवर्तबुद्बुद्तरङ्गमयान्विकारा-नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्। ।3.47

भवभूति का इस अङ्क का करुण लौकिक दृष्टि से निर्वारित पत्नी के मानसिक विक्षोभ को प्रशान्ति प्रदान करने के लिए है। सीता ने स्वयं कहा है- **जाणं पञ्चएण णिक्कालणपरिचाअसश्चिदो वि बहुमदी मह जम्मलाहो।** तृतीय अङ्क में करुण की निर्झरिणी को वेग प्रदान करने के लिए कहा गया है कि राम सीता को मरी हुई मानते हैं। इस अङ्क में वात्सल्य रस की निर्झरिणी भी प्रवाहित की गई है। करिकलमक, गिरिमयूर आदि के प्रकरण में इस रस का मनोरम निर्वाह किया गया है। इनके साथ ही लव-कुश का प्रकरण भी व्यञ्जना से अनुबद्ध है। इनके विषय में सीता कहती हैं-मेरे पुत्रों के कुछ-कुछ विरल-कोमल-धवल दर्शन के कारण उज्ज्वल कपोल वाले, सतत मुग्ध काकली और हास्य वाले, बँधे हुए काक शिखण्डक वाले, अमल मुख-कमलों के युग्म आर्यपुत्र के द्वारा नहीं चुम्बित हुए।

श्रृंगार और वीर रस का परिपोष भी इस अंक में यत्र तत्र हुआ है। मूर्च्छित राम का स्पर्श करती हुई सीता कहती हैं-

‘पर यह मेरा हाथ चिर सद्भाव से सौम्य और शीतल आर्यपुत्र के स्पर्श से दीर्घकालीन दारुण सन्ताप को शीघ्र ही दूर करते हुए मानो वस्त्रलेप से उपनिबद्ध किया हुआ पसीने से लथपथ निःसह और विपर्यस्त वेपनशील और अवश जैसा हो गया है। इसी अंक में अदृश्य सीता ने राम का जो स्पर्श किया तो-

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी, जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भः प्रविधूतसिक्ता, कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव। ।3.42

श्रृंगार रस का दूसरा उत्कृष्ट उदाहरण है-

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः, सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरी सैकते।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया, कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः। ।3.37

श्रृंगार रस की निष्पत्ति प्रासंङ्गिक वृत्त के करिकलभक के कान्तानु- वृत्तिचातुर्य में भी स्पष्ट है-

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूष-सङ्क्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्। ।3.16

वीर रस की निष्पत्ति करिकलभक के द्विरदपति से भिड़न्त के प्रकरण में होती है

वध्वा सार्धे पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा-दुद्दामेनद्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः। ।3.6

रौद्र रस की निष्पत्ति जटायु और रावण के युद्ध सम्बन्धी संस्मरणों में है। यथा-

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-स्ते चैते पुनः पिशाचवदनाः कङ्कालशेषां खराः।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह-अन्तर्व्यावृतविद्यदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः। ।3.43

ऊपर के निदर्शन से स्पष्ट है कि इस तृतीय अंक में यद्यपि करुण का ही एकमात्र क्षेत्र है, तथापि पूर्वानुस्मृति के प्रकर्ष से श्रृंगार, वात्सल्य, वीर रौद्र आदि रसों की सहचारिता सम्भव हुई है। यही देखकर भवभूति ने तमसा के मुख से कहलवाया है- **अहो संविधानकम् एको रस करुण एव निमित्तभेदात् आदि।**

सन्दर्भ -

1. *ऐसा ही दृश्य तृतीय अंक के अन्त में भी है, जहाँ राम सीता की प्रतिकृति की चर्चा करते हैं।*
2. *इस प्रसंग में उपाधियों की अनावश्यकता की चर्चा उत्तर. 22 में है।*
3. *उत्तर. 1.49*
4. *राम ने स्वयं कहा है-* ***यत्र द्रुमा मृगा अपि बान्धवो मे यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्। एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि गोदावरी परिसरस्थ-गिरेस्तटानि।।***
5. *महानुभाव का वर्णन भवभूति ने किया है-* ***आश्वासः स्नेहभक्तीनामेयकायतनं महत्। प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः।।6.10***
6. *एक अन्य उल्लेखनीय उदाहरण 3.27 है।*
7. *उत्तररामचरित के 1.40; 4.29 तथा 5.26 में उपर्युक्त गुण विशेष स्पष्ट हैं*
8. *धनपाल-तिलकमञ्जरी-प्रारम्भिक श्लोक 30*
9. *क्षेमेन्द्र-सुवृत्ततिलक 3.33*
10. *गोवर्धनाचार्य-आर्यासप्तशती 1.36*
11. *भोजप्रबन्ध श्लोक 191*
12. *विक्रमार्क*

13-14. जल्हण-सूक्तिमुक्तावली

15. *उदयसुन्दरी चम्प*

13

आचार्य भवभूति के राम

सुकदेव वाजपेयी

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।।'[1]

भवभूति (कवि तथा शिवजी) के सम्बन्ध से सरस्वती भी शैलाधिराजतनया पार्वती के समान सुशोभित हो रही है क्योंकि जब यह (भवभूति की वाणी अथवा पार्वती) करुण भाव की व्यंजना (अथवा विलाप) करने लगती है तब औरों की बात ही क्या पत्थर भी रो पड़ते हैं। इस प्रकार महाकवि भवभूति के नाम के द्वारा ही नाट्यरूप भव (शंकर अथवा जगत्) के दिव्य देह पर भूति दिव्य भस्म अथवा ऐश्वर्य का एक साथ स्मरण होता है। अतः स्वनामधन्य आचार्य भवभूति संस्कृत नाटकों के विशाल साहित्य क्षेत्र में रामनाटकों के प्राणसर्वस्व के रूप में तथा रामभक्त के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं, महावीरचरितम् में वे कहते हैं-

प्रचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाचस्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्।। '[2]

आदिकवि मुनिवर वाल्मीकि ने रघुपति का जो पावन चरित वर्णन किया है, भक्त होने के कारण हमारी वाणी भी उस पर अनुरक्त हो गई, विद्वान् लोग प्रसन्न हृदय से उसका आस्वादन करें। महावीरचरितम् के सप्तम अंक में भवभूति इसी भाव को अलका के मुख से अभिव्यक्त करते हैं-

इदं हि तत्त्वं पुरुषार्थभाजामयं हि साक्षात् पुरुषः पुराणः।
त्रिधा विभक्ता प्रकृतिः किलैषा त्रातुं भुविं स्वेन सतोऽवकीर्णा।। '[3]

अर्थात् बह्मज्ञानियों का परम तत्त्व, पुराणपुरुष, सत्त्वरजतमरूप तीन भागों में बंटी प्रकृति ही तो रामरूप से पृथिवी वर अवतीर्ण हुई है। यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते उत्तररामचरितम् के कथनानुसार आचार्य भवभूति का, वाग्देवता सरस्वती वशीभूत के समान अनुकरण करती है। और वह वश्यवाक् कवि का वाक्यसमूह है उसकी कथा रामाश्रय है - वश्यवाचः कवेर्वाक्यं सा च रामाश्रया कथा'[4] इस प्रकार आचार्य भवभूति रामभक्त तो हैं ही, साथ ही राम की उन पर अटूट कृपा भी है तभी उनका वैदुष्य अनेक शास्त्रज्ञ के रूप में दिखलायी देता है क्योंकि एक साथ सभी शास्त्रों में गति विरले, ईश्वरीय वरदानप्राप्त कश्चित् विपश्चित् को ही हो सकती है। यह रामाश्रया कृपा ही है कि कवि, भावना को पकड़कर मानव जीवन के उस उरस में प्रविष्ट हो जाते हैं जिस रसाधार से जीवन अनुप्राणित एवं रसाप्लावित होकर प्रवहमान रहता है। यही रसधारा जीवन को सरस बनाती है। वर्णन पक्ष की माधुरी में लिपटे हृदय पक्ष के उज्ज्वल चित्र विश्व विभूति महाकवि भवभूति के नाटकों में चित्रित मिलते हैं।

महावीरचरितम् हो अथवा उत्तररामचरितम् दोनों ही नाटकों में महाकवि ने राम का चित्रण आदर्शवाद की तरह किया है भवभूति के राम मानवोचित समग्र आदर्श गुणों का समाहार हैं। राम अखिल गुणों के आकार हैं। अनुपम सौन्दर्य के प्रतीक तथा साक्षात् विष्णु के अवतार राम के यथासम्भव सारे गुणों को वर्णित करने का आचार्य भवभूति ने प्रयास किया है। वे उनकी सुन्दरता का वर्णन करते हुये लिखते हैं अहो ! यह शिशु भूषण स्वरूप वाले घुंघराले बाल वाले, सुन्दर प्रगल्भ चेहरा, स्वाभाविक शोभा सम्पन्न तथा मनोहर रूप धारण करने वाले होने के कारण एक बार देख लेने पर अपने सौन्दर्य से हमारे हृदय को आकृष्ट कर रहा है।'[5] विकसित नूतन नीलकमल के सदृश कृष्ण वर्ण कोमल चिकने, सुन्दर और स्वस्थ शरीर के सौन्दर्य से सुभग मनोहर शोभा वाले तथा अनायास शिव के धनुष को तोड़ देने वाले अलंकृत मुखमंडल वाले आर्यपुत्र चित्रित हैं।'[6] इसका शरीर ऐसा मालूम पड़ता है कि सप्तभुवन को अभयदान दे सकेगा, इसमें लक्ष्मी, सत्त्वगुण से ज्वलित तेज, धर्म, मान, विजय और पराक्रम स्पष्ट झलकते हैं। '[7] राम का चित्रण भवभूति के नाटको में आदर्शवाद की तरह किया गया है। जब राक्षस सीता की मंगनी करता है, तब लक्ष्मण को यह बात बुरी लगती है परन्तु राम को इसमें अनौचित्य प्रतीत नहीं होता है वे कहते हैं-

'साधारण्यान्निरातङ्कः कन्यामन्योऽपि याचते। किं पुनर्जगतां जेता प्रपौत्रः परमेष्ठिनः।।'[8]

साधारणतः कन्या की मंगनी अन्य कोई भी कर सकता है, फिर ब्रह्मा के प्रपौत्र जगत् विजयी रावण की क्या बात! भवभूति के राम अत्यधिक विनम्र हैं। वे अपने सेवकों तक से रामभद्र कहने पर भी प्रसन्न होते हैं- **आर्य! ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य। तद् यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।'**[9] आर्य! पिताजी के सेवकों को मेरे लिये 'रामभद्र' इस शब्द से सम्बोधन करना ही शोभा देता है। इसलिये आपको जैसा अभ्यास है वैसा ही कहें। परशुराम के दमन के अनन्तर वे अतिविनीत होकर परशुराम से कह उठते हैं- एष वो रामशिरसा प्रणामपर्यायः '[10] राम आपको बारम्बार प्रणाम करता है। श्री राम धर्मज्ञ तथा धर्म के रक्षक हैं। राम के सम्बन्ध में उनके शत्रु भी धर्मरक्षक गुणों को बतलाते हैं। रावण का मंत्री माल्यवान् कहता है-

निसर्गेण स धर्मस्य गोप्ता धर्मदुहो वयम्। अर्थ्यो विरोधः शक्तेन जातो न प्रतियोगिना।।[11]

वह स्वभावतः धर्म का रक्षक है। और हम धर्मद्रोही हैं इस प्रकार प्रबल प्रतिपक्षी के साथ हमारा स्वाभाविक विरोध हो गया है। भवभूति के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं वे प्रजा की प्रसन्नता के लिये सर्वस्व त्याग देने में भी दुःख का अनुभव नहीं करते हैं। यहां राम की अदम्य लोकाराधन भावना की अभिव्यक्ति है -

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।'[12]

अर्थात् जनता की प्रसन्नता के लिये स्नेह करुणा, सुख, अथवा जानकी को भी मुझे छोड़ने में पीड़ा नहीं होगी। भवभूति के राम के हृदय में सीता के प्रति कोई भी सन्देह नहीं है। उनके हृदय की पवित्रता यहां दर्शनीय है-

उत्पत्तिपरिपूरितायाः किमस्याः पावनान्तरैः। तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।'[13]

अर्थात् उत्पत्ति से ही परिशुद्ध सीता को पवित्र कर्म तथा अन्य पदार्थों से क्या? तीर्थजल और अग्नि किसी अन्य से पवित्रता की अपेक्षा नहीं रखते हैं। इसी प्रकार राम के शंकारहित हृदय की झांकी उस समय भी दृष्टिगोचर होती है जब वे दूत द्वारा सीता विषयक अपवादन सुनते हैं-

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः। नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।।'[14]

अर्थात् तुमसे तीनों लोक पवित्र हैं। तुम्हारे सम्बन्ध में लोगों के कथन अपवित्र हैं। तुमसे संसार

सनाथ है किन्तु तुम स्वामी से रहित होकर विपत्ति में पड़ोगी। उत्तररामचरितम् के राम भाग्यवादी हैं उनकी भाग्यवादिता यहां स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्।।'[15]

अर्थात् इक्ष्वाकु का कुल जनता को अभिमत है। किन्तु दुर्भाग्य से लोकापवाद का कारण आविर्भूत हुआ है। अग्नि परीक्षा के समय जो अलौकिक घटना घटी वह यदि दूर हुई है तो कौन विश्वास करेगा? इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर भी राम की भाग्यवादी दृष्टि परिलक्षित होती है-

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं यद् वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत् पुनरपि दैवदुर्विपाकादलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्।।'[16]

अर्थात् हाय, हाय धिक्कार है, जानकी के दूसरे घर में निवास करने के जिस कलंक को प्रयासों से निर्वासित कर दिया गया था वह यह फिर से भाग्य की प्रतिकूलता के कारण पागल कुत्ते के विष के समान सर्वत्र फैल गया है। इस प्रकार राम असाधारण मनुष्य की भांति दुःख सुख, मान अपमान का अनुभव करते हैं। अतीत की अपमानजनक घटनायें उनके हृदय में शल्य सी चुभती रहती हैं। चित्र देखते समय राम का हृदय भी मानवीय धरातल पर कितना वास्तविक दृष्टिगोचर हो रहा है-

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवांछया विसोढः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो हृन्मर्मव्रण इव वेदनां करोति।।'[17]

अर्थात् प्रियतमा सीता के विरह से उत्पन्न शोकानल तीक्ष्ण होने पर भी बदला लेने की अभिलाषा के कारण उस समय सह लिया था किन्तु फिर मन में परिपक्व हुये हृदय के मर्म पर स्थित फोड़े के सदृश पीड़ा को उत्पन्न कर रहा है। महावीरचरितम् वे कहते हैं- हा प्रिये ! तुम कहां हो? मीठी वाणी तो सुनाओ अथवा हमारे सदृश कलंकी के लिये वार्तासुख भी दुर्लभ ही है। रावण प्रशंसनीय तथा मैं निन्दनीय हूं क्योंकि उसने बढ़े हुये वैर का उचित बदला लिया है। '[18] भवभूति के राम सौन्दर्य प्रेमी भी हैं। चित्र देखते समय राम को सीता के विवाहोपरान्त सौन्दर्य का स्मरण हो आता है-

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमैरकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमंगकैः।।'[19]

अर्थात् पतले, बिखरे कपोलों पर लहराते एवं मनोहर लगने वाले केशों से तथा कलियों के समान दांतों से सुन्दर मुख को धारण करती हुई लघु आयु वाली सीता, अत्यन्त सुन्दर चन्द्रिका सदृश स्वाभाविक विलासों से मनोज्ञ छोटे छोटे अंगों के द्वारा मेरी माताओं के मन की उत्सुकता को उत्पन्न करती थी। एक अन्य स्थान पर राम की सौन्दर्य प्रियता द्रष्टव्य है-

जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्। बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रममिहारविभ्रमः।।[20]

अर्थात् भय और आयास के कारण पसीने की बूंदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों के संस्पर्श से पिघलने वाली चन्द्रकान्त मणियों की माला के तुल्य विलास वाली तथा मुझे मेरी जीवनदात्रि सीते! अपनी भुजा को मेरे गले में डाल दो। भवभूति के राम दाम्पत्य जीवन में भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हैं। राम का मर्यादित दाम्पत्य जीवन दर्शनीय है -

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्याप्तैकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।'[21]

अर्थात् निकटता के कारण गालों को मिलाकर धीरे धीरे विना क्रम के वार्तालाप करते हुये एवं प्रगाढ आलिंगन में संलग्न एक एक बाहु वाले हम दोनों की बिना जाने व्यतीत प्रहरों वाली रात्रि ही बीत गयी। एक अन्य स्थान पर -

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।'[22]

अर्थात् हे कमलनेत्री! तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाये जीवन पुष्प को विकसित कर देने वाले, सर्वथा तृप्ति देने वाले , अखिल इन्द्रियों को मोहित कर देने वाले एवं श्रोत्रों को सुधा के सदृश तथा मन के पुष्टिकारक भेषज हैं। भवभूति् के राम अनन्य पत्नी प्रेमी हैं उन्हें अपनी सहधर्मिणी सीता अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। राम का उदात्त स्नेह अवलोकनीय है -

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयोरसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कंठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।[23]

अर्थात् यह सीता घर में लक्ष्मी है, नेत्रों में सुधा की शलाका है, यह इसका स्पर्श शरीर में गाढ़ चन्दन है यह गले में रखी इसकी भुजा शीतल और कोमल मोतियों की माला है। इसकी कौन सी वस्तु परम प्रिय नहीं है परन्तु इसका वियोग तो अत्यन्त असहनीय है। भवभूति के राम दयावान् तथा करुणावान् हैं परन्तु वे अपने धर्म को निभाना अपने जीवन का लक्ष्य समझते हैं। राम के मन की दुविधा उन्हें कभी ऐसा (सीता परित्याग) कार्य करने न करने की दिशा को भ्रमित कर देती हे। तब राम अपने को कोसते हुये अपने पूर्वजों के आचरण का स्मरण करते हैं - तत्किमत्र मन्दभाग्यः करोमि? अथवा किमन्यत्? तो मैं अभागा इस विषय में क्या करूं अथवा और क्या -

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्। तत् पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुंचता।।'[24]

अर्थात् किसी भी प्रकार से प्रजा का अनुरंजन सज्जनों का धर्म है। मुझे और प्राणों को छोड़ते हुये पिताजी ने उसे निभाया था। तत्पश्चात् राम की स्वयं की निष्ठुर एवं क्रूर धारणा उग्ररूप धारण करती है। राम उच्च आदर्शों वाले तथा कर्तव्य परायण राजा हैं वे अपने को धिक्कारने के अतिरिक्त कर भी क्या सकते हैं-

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रामुन्मुच्य प्रियगृहिणी गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि।।'[25]

अर्थात् क्रूर मैं विश्वास के साथ वक्षस्थल पर लेटकर सोई हुई तथा उद्वेग के कारण कम्पित पूर्ण गर्भ के भार से युक्त घर की लक्ष्मी प्रिय सीता को अलग करके मांसाहारी हिंसकों के लिये उपहार की भांति दे रहा हूं। इस प्रकार राम की ग्लानि पग पग पर दृष्टिगोचर होती है। शम्बूक वध के समय एक निर्दोष का वध करने में उनका हृदय झिझकता है तब वे अपने दाहिने हाथ को दया रहित बताते हुये कहते हैं -

रे हस्त दक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्नसीता विवासनपटोः करुणा कुतस्ते।।'[26]

अर्थात् हे दाहिने हाथ! ब्राह्मण के मरे हुये शिशु को जिलाने के लिये शूद्र मुनि के ऊपर तलवार चला (क्योंकि तू पूर्ण गर्भ के भार से खिन्न सीता को निर्वासित करने में कुशल राम का हाथ है। अतः तुझे दया कहां? राम की करुणा धैर्य के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर न होकर हृदयस्थ अमूल्य धन सी व्यंजित हो रही है राम का शोक पराकाष्ठा तक पहुंच जाता है -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।'[27]

अर्थात् गम्भीरता के कारण अव्यक्त भीतर छिपी हुई घनी पीड़ा से युक्त राम का करुण रस पुटपाक के सदृश है। उत्तररामचरितम् के राम प्रकृति प्रेमी भी हैं उनका प्रकृति प्रेम अनेकानेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। चित्रदर्शन के समय राम सीता से कहते हैं-

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमाः शमिनो भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।।'[28]

अर्थात् पर्वतीय नदियों के किनारे तथा वानप्रस्थियों से सेवित पादपों वाले, ये वे तपोवन हैं जिनमें अतिथि सत्कार हेतु नीवार धान की मुष्टि पकाने वाले संयमी गृहस्थ घर बनाकर रहते हैं। कहीं चिकने और श्यामल दूसरी और भयंकर विस्तार के कारण उद्वेग जनक स्थान स्थान पर झरनों के कल कल निनाद से प्रतिध्वनित दिशाओं वाले तीर्थ आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढे एवं दुर्गम मार्गो से युक्त ये परिचित भूमियों वाले दण्डकारण्य के प्रवेश परिलक्षित हो रहे हैं। इसी प्रकार पम्पा सरोवर का वर्णन करते हुये वे कहते हैं- कि इस पम्पा सरोवर में मद से मधुर ध्वनिकर्ता मल्लिकाक्ष हंसों से प्रकम्पित एवं रमणीय बड़े नाल वाले शुभ्रकमलों से युक्त नीलकमलों वाले प्रदेशों को मैंने अश्रुबिन्दुओं के गिरने और निकलने के मध्य देखा था। राम की प्रकृति प्रियता राक्षसों के वध तथा सीता अन्वेषण के समय भी प्रस्फुटित हुई है वे कहते हैं- कदम्ब विकासोन्मुख हो रहे हैं, मधुर स्वर वाले नीलकण्ठ नाच रहे हैं विकसित तथा प्रौढ़ तमाल वृक्ष की तरह श्याम वर्ण युक्त नये मेघ पर्वत की चोटी पर आ रहे हैं।'[29] भवभूति के राम की अनन्य वीर व पराक्रमी हैं। उनके पराक्रम का दिग्दर्शन ताड़का, सुबाहु वध, धनुषभंग एवं परशुराम के साथ युद्ध के समय होता है। विश्वामित्र के आश्रम का समाचार पाकर रावण मंत्री माल्वान् चिन्तित होकर राम के अतुलनीय पराक्रम का वर्णन करता है-

दूराद्दवीयो धरणीधराभं यस्ताटकेयं तृणं व्यधूनोत्। हन्ता सुबाहोरपि ताटकारिः स राजपुत्रो हृदि बाधते माम्।।'[30]

अर्थात् दूरातिदूर पर्वत के सदृश मारीच को जिसने घास की तरह परास्त कर दिया, तथा ताड़का और सुबाहु का भी संहार किया, वह राजपुत्र हमारे हृदय में चुभ रहा है। देवों के पराक्रमसार के द्वारा जिसको ब्रह्मा ने बनाया उस शैवधनुष का भंग राम ने किया, कृशाश्वशिष्य विश्वामित्र से अस्त्रविद्या की शिक्षा भी तो राम को मिल चुकी है। अश्वमेध यज्ञ के समय भी राम की वीरता परिलक्षित होती है -

योऽयमश्यवः पताकेयमथवा वीरघोषणा। सप्तलोकैकेकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः।।'[31]

अर्थात् वह जो अश्व है यह सातों भुवनों में अद्वितीय वीर तथा रावण वंश के शत्रु राम की विजय वैजयन्ती अथवा शौर्य की विज्ञप्ति है। इसी प्रकार पंचम अंक में राम की वीरता बताते हुये भवभूति सुमन्त के मुख से कहलवाते हैं- देवों तथा दानवों के प्रभाव को पार कर जाने वाले राम के समान आकृति वाले, इस बालक को देखकर मैं सुमन्त विश्वामित्र के यज्ञ विध्वंसकर्ता राक्षसों को विनाश करते समय धनुष को धारण करने वाले रामचन्द्र का स्मरण कर रहा हूं। भवभूति के राम पुत्र वत्सल भी हैं । उनका पुत्र प्रेम शम्बूक का वध करके लौटते समय लव से युद्ध के समय अवलोकनीय है। जहां राम युद्ध विराम कराकर चन्द्रकेतु का आलिंगन करते हैं -उत्थाप्य सस्नेहास्त्रं परिष्वज्य अर्थात् उठकर स्नेह तथा आंसुओं के साथ आलिंगन करके। इसी प्रकार राम का पुत्र प्रेम, लव को देखकर तत्पश्चात् उसके आलिंगन के समय दृष्टिगोचर होता है- आयुष्मन् एह्येहि (इति सस्नेहमालिंग्य) अपि वत्स! कृतं कृतमतिविनयेन। अनेक वार मपरिश्लथं परिष्वजस्व माम्।'[32] अर्थात् आयुष्मन्! आओ आओ (यह कहते हुये सप्रेम आलिंगन करते हुये) हे वत्स! बहुत अधिक नम्रता प्रदर्शित करने

की आवश्यकता नहीं है। अपने शरीर से दृढ़ता पूर्वक मेरा आलिंगन करो। भवभूति के राम शरणागतवत्सल तथा मित्र धर्म को निभाने वाले हैं। जब शबरी विभीषण का आत्मसमर्पण पत्र राम को देती है तब वहां राम की नीति निपुणता भी परिलक्षित होती है। राम कहते हैं - वत्स! ब्रूहि किं संदिश्यतामेवंवादिनः प्रियसुहृदो लंकेश्वरस्य महाराजविभीषणस्य'[33] भाई ! बताओ इस तरह सन्देश देने वाले प्रिय मित्र लंकेश्वर विभीषण को क्या उत्तर दें? यहां विभीषण को लंकेश्वर कहने में नीति निपुणता का पता चलता है। राम को भवभूति ने कठोर हृदय व समय पर क्रोध करने वाला भी कहा है-

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम्।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथय नाथं कथं बत मन्यसे।।'[34]

अर्थात् हे निर्दय! तुम्हें यश निश्चय प्यारा है किन्तु इससे बढ़कर भयंकर अपकीर्ति और क्या हो सकती है? हे नाथ मृगनयनी सीता का वन में क्या हुआ? बताइये आप क्या सोचते हैं?।

एष मूर्त इव क्रोधः शोकाग्निरिव जंगमः। कृच्छ्राद्बिभर्ति हृल्लेखलज्जासंवेगिनीं तनुम्।।'[35]

यह हमारे आर्य आजकल शरीरधारी क्रोध के सदृश जंग शोकाग्नि के तुल्य होकर कष्ट से जुगुप्सा और लज्जा से युक्त देह को धारण कर रहे हैं।

भवभूति के राम एक पत्नीव्रता हैं, सीता के परित्याग के बाद वे किसी को अपनी भार्या नहीं बनाते हैं - हिरण्यमयी सीता प्रकृति र्गृहिणीकृता। अर्थात् राम ने सीता के अभाव में सीता की स्वर्णप्रतिमा को गृहिणी बनाया है।

भवभूति के राम अनन्य भ्रातृप्रेमी है। भरत से मिले बिना वे वनगमन में उत्साहित भी नहीं होते तथा प्रवासयुक्त भरत को भी नहीं देखना चाहते हैं-

अपरिष्वज्य भरतं नास्ति मे गच्छतो धृतिः।
अस्मत्प्रवासदुःकार्तं न त्वेनं द्रष्टुमुत्सहे।।'[36]

राम कहते हैं भरत को मिले बिना जाने में उत्साह नहीं हो रहा है किन्तु हमारे प्रवास के दुःख से व्यथित भरत को देखने की इच्छा नहीं हो रही है। राम के हृदय में माताओं के विषय में आदर भरा स्नेह बालू के भीतर पानी की तरह छिपा है। वे माता पिता की आज्ञा मानना अपना सबसे बड़ा धर्म समझते हैं। माता कैकेयी के द्वारा वरदान रूप राजा दशरथ से राम वनगमन तथा भरत का राज्याभिषेक वे स्वयं मांगते हैं। एवं प्रसन्नता पूर्वक पिता के सत्यवचनों की रक्षार्थ तथा लोककल्याण हेतु दण्डकारण्य में लक्ष्मण और सीता के साथ चले जाते हैं -

तत्रैव गमनोदेशो यत्र पर्युत्सुकं मनः।
न चेष्टविरहो जातः स च वत्सोऽनुजोऽनुगः।।'[37]

भवभूति के राम कहते हैं कि बड़ी प्रसन्नता है, वहीं जाने की आज्ञा हो रही है जहां जाने के लिये दिल तड़प रहा है, इष्टजन का वियोग भी नहीं हुआ और लक्ष्मण भी साथ बने रहे।

भवभूति के राम में संवेगों की प्रबलता है। वे पिता की स्मृति कर अत्यधिक दुःखी होते हैं। यहां राम का पितृ प्रेम स्पष्ट परिलक्षित होता है-

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः।।'[38]

अर्थात् पूज्य पिता जीवित थे नया विवाह हुआ था तथा मातायें हमारे सुख की चिन्ता करती थीं। हमारे वे दिन चले गये।

भवभूति के राम राष्ट्रप्रेमी है। वे राष्ट्रहित के लिये अनेक राक्षसों का वध करते हैं तथा वन-वन भटककर अनेक कष्टों को सहते हैं। उनका राष्ट्रप्रेम उस समय चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता है जब राज्याभिषेक के बाद विश्वामित्र राम से वर मांगने को कहते हैं तब वे प्रजाहित में ही इच्छा व्यक्त करते हैं -

क्ष्मापालाः क्षीणतन्द्राः क्षितवलयमिदं पान्तु ते कालवर्षा,
वार्वाहाः सन्तु राष्ट्रं पुनरखिलमपास्तेति संपन्नसस्यम्।
लोके नित्यप्रमोदं विदधतु कवयः श्लोकमाप्तप्रसादं,
संख्यावन्तोऽपि भूम्ना परकृतिषु मुदं संप्रधार्य प्रयान्तु।।[39]

अर्थात् राजा लोग आलस्य छोड़कर पृथिवी की रक्षा करें, मेघ समय पर बरसें राष्ट्र में सत्य संपन्नरूप में हो, प्रसादगुणयुक्त कविता में कवियों की रुचि हो विद्वज्जन दूसरों की कृतियों का मनन कर प्रमोद प्राप्त करें। जानकीवल्लभ राम अतिशय कीर्तिवान् हैं। उनके तेज की अलौकिक छटा अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। वसिष्ठ विश्वामित्र को अपने गले से लगाकर राम के यश के सम्बन्ध में कहते हैं कि -

अस्माभिरप्यनाशास्यो रामस्य महिमान्वयः।
यत्कृतास्तेन कृतिनो वयं च भुवनानि च।।'[40]

इस तरह राम की महिमा होगी हमने भी ऐसी आशा नहीं की थी उसने तो हमें और त्रिभुवन को कृतार्थ कर दिया।

इस प्रकार भवभूति के नाटक महावीरचरितम् एवं उत्तररामचरितम् का सम्यक् अध्ययन करने पर यह निश्चित होता है कि भवभूति एक सिद्धहस्त नाटककार हैं अपनी गम्भीर प्रकृति के अनुरूप ही उन्होंने राम सीता जैसे परमपावन आदर्श चरित्र पात्रों को अपने नाटक के लिये चुना। राम को आदर्श पुरुष दिखलाने के उद्देश्य से भवभूति ने नाटक में राम के कितने ही दोषों को भिन्न रूप से प्रदर्शित किया है जैसे बाली रावण का सहायक बनकर राम से लड़ने आया था इसलिये राम ने उसका वध किया आदि आदि...। भवभूति के नाटक में श्री राम, मर्यादापुरुषोत्तम धैर्यशाली लोकाराधक, पत्नीप्रेमी, प्रकृतिप्रिय, पुत्रवत्सल, आध्यात्मिक, विनम्र, शोक संतप्त तथा अवतार के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर्महाकविः, उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।।

सन्दर्भ सूची -

1. आर्यासप्तशती 1.36

2 महा. 1.7

3 महा.7.2

4 महा.1.4

5 महा. 2.32

6 उत्तर 3. पृ. 128

7 महा.2.40

8 महा. 1.31

9 उत्तर.1. पृ. 26

10 महा. 4.165

11 महा. 2.7

12 उत्तर. 1.27

13 उत्तर. 1.36

14 उत्तर. 1.38

15 उत्तर. 1.41

16 उत्तर. 1.49

17 उत्तर. 2.10

18 महा. 5.28

19 उत्तर. 3.1

20 उत्तर. 3. पृ. 19

21 उत्तर. 1.36

22 उत्तर. 1.38

23 उत्तर. 1.41

24 उत्तर. 1.49

25 उत्तर. 2.10

26 उत्तर. 3.1

27 उत्तर. 1.25

28 उत्तर. 4.27

29 महा.5.4

30 महा. 2.1

31 उत्तर. 5 पृ. 241

32 उत्तर. 3.27

33 महा.5 पृ. 224

34 उत्तर. 3.27

35 महा. 5.20

36 महा. 4.43

37 महा.4.42

38 उत्तर. 1.19

39 महा. 7.42

40 महा. 4.13

14

महाकवि भवभूति के रूपकों में स्त्री : एक विमर्श

रश्मि यादव

नाट्यसाहित्य के विशाल आकाश में पद वाक्यप्रमाणज्ञ महाकवि भवभूति देदीप्यमान नक्षत्र के समान हैं जिनकी प्रतिभा व रचनाधर्मिता की रश्मियों से संस्कृत जगत प्रकाशमान है। महाकवि भवभूति की नवोन्मेषी प्रज्ञा नाट्यसाहित्य में नवीन मान्यताओं व धारणाओं को प्रतिष्ठापित करने में तत्पर रही है। उन्होंने रूपकों में करुणरस के अङ्गित्व को न केवल सिद्ध किया अपितु करुण को अन्य रसों के केन्द्रीय तत्व के रूप में स्थापित भी किया है। भवभूति की लेखनी कलापक्ष के साथ ही भावपक्ष का सूक्ष्म विश्लेषण करने में सिद्ध रही है। उनकी तीनों नाट्यकृतियों - महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् में रसानुकूल मानवीय भावों का परिस्फुटन दिखाई देता है। वस्तुतः नाटकीय पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण करने में भवभूति पूर्णतः सिद्धहस्त हैं। यद्यपि भवभूति के रूपकों में शान्त और उदात्त कोटि के नायकों का सर्वाङ्गीण चित्रण ही मुख्य प्रतिपाद्य है तथापि भवभूति संस्कृत जगत के अन्य कवियों की अपेक्षा स्त्रियों के मनोभावनाओं, चारित्रिक विशिष्टताओं और प्रवृत्तियों का मार्मिक विवेचन करने में अधिक सफल रहे हैं। तात्कालिक स्त्रियों की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, और शैक्षणिक स्थिति का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए भवभूति के रूपकों का स्त्री-विमर्श की दृष्टि से अनुशीलन अत्यावश्यक व उपादेय है। भवभूति ने उच्च, मध्य एवं निम्न वर्गीय स्त्रियों की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी कृतियों में सीता, मन्दोदरी, कौसल्या, मालती, मदयन्तिका जैसी राजकुलों की स्त्रियों के साथ ही अवलोकिता, बुद्धरक्षिता, लवङ्गिका और प्रतिहारी जैसी निम्न वर्गीय स्त्रियों की वस्तु स्थिति को भी रेखांकित किया गया है। स्त्री के प्रति भवभूति की दृष्टि आदर्शपरक और समतामूलक रही है। स्त्रियों और पुरुषों के लिए समान मानदण्ड निर्धारित करते हुए उन्होंने उत्तररामचरितम में - ''गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः''(4.11) की उद्घोषणा करके सम्मान व सत्कार का आधार गुण को स्वीकार किया है न कि लिङ्ग या आयु को। भवभूति लैंगिक समानता के प्रति सचेत और संवेदनशील है। उनकी कृतियों में स्त्रियों के उदात्त चरित्र को निरूपित करते हुए उन्हें महनीय व गौरवशाली पद प्रदान किया गया है। 'श्रीकण्ठ' की उपाधि से विभूषित भवभूति के रूपकों में स्त्रियाँ मुख्यतः कन्या, पत्नी, माता एवं तपस्विनी के रूप में परिलक्षित होती हैं। कन्या के रूप में तात्कालिक समाज में स्त्री के साथ किये जाने वाले भेदभाव का मार्मिक चित्रण उनकी कृतियों में समुपलब्ध है। कालिदासीय युग की ''अर्थो हि कन्या परकीय एव'' (अभिज्ञानशाकुन्तल,4.) की अवधारणा भवभूति के नाटकों में भी पुष्ट हुई है।

महावीरचरितम् (1.30) में कन्या को परार्थ अर्थात किसी दूसरे को देने की वस्तु माना गया है। जनक की सभा में रावण के द्वारा सीता के लिए अपना प्रस्ताव भेजने पर विचलित हुए लक्ष्मण को समझाते हुए राम कहते हैं कि कन्या की याचना कोई भी कर सकता है फिर ब्रह्मा के प्रपौत्र रावण की बात ही क्या है ?[1] इतना ही नहीं, किसी समर्थ व प्रभावशाली व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से भी कन्यादान कर दिया जाता था। जैसा कि रावण जनक के लिए सन्देश भेजता है कि कन्यादान से पुलस्य और पुलह जैसे प्रतिष्ठित वंश में उत्पन्न रावण उनका बन्धु हो जाएगा।[2] मालतीमाधवम् में भी नीति में कुशल चित्त वाला भूरिवसु, राजा के वृद्ध नर्मसचिव नन्दन से मित्रता करने के लिए अपनी कन्या मालती से उसका विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है (सुतादानान्मित्रं भवतु स भवान नन्दन इति, 2.7)। पिता का कन्या पर पूर्ण अधिकार होता था, वह किसी को भी कन्यादान कर सकता था। इस दृष्टि से लवङ्गिका का कथन -''प्रभवति निजस्य कन्यका जनस्य महाराज इति''[3] और कामन्दकी का कथन-''प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवं च''[4] विचारणीय है। इसी प्रकार महावीरचरित में राजा जनक सीता के स्वयंवर के पश्चात स्वेच्छा से लक्ष्मण के लिए अपनी पुत्री उर्मिला का दान कर देते हैं ''अस्मिन्नेवोत्सवे दत्ता लक्ष्मणाय मयोर्मिला''(1.56) और विश्वामित्र सीरध्वज और गौतम शतानंद से परामर्शोपरांत मांडवी को भरत के लिए और श्रुतकीर्ति को शत्रुघ्न के लिए मांग लेते हैं (पृ.सं.-52)। पिता पर आश्रित और पिता के अधीन होने पर भी कन्याएँ स्वभावतः चारित्रिक पवित्रता के प्रति दृढ प्रतिज्ञ हुआ करती थीं। मालती विदर्भराज के मंत्री के पुत्र माधव के प्रति प्रेमासक्त होने पर भी कुलमर्यादा के विपरीत साहस को हेय मानती है। उसे उच्चकुल में उत्पन्न माता-पिता का स्वाभिमान व सम्मान अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है।[5] कन्यादान में पिता की अनुमति के साथ ही प्रायः कन्या की स्वीकारोक्ति व इच्छा का भी सम्मान किया जाता था। अङ्गिरा ऋषि ने मन और नेत्र दोनों को प्रिय कन्या से ही विवाह को श्रेयस्कर माना है।[6] भवभूति का स्पष्ट मन्तव्य है कि पति और पत्नी का परस्पर प्रेम ही विवाह का परम आधार है -''इतरेतरानुरागो हि विवाहकर्मणि परार्ध्यं मङ्गलम्'' (मालती. द्वितीयोऽङ्क, पृ.सं.-84)। साथ ही, कन्या के लिए वर के चयन में वर की योग्यता को ही आधार बनाने की अपेक्षा की जाती थी। भवभूति की दृष्टि में अयोग्य वर को कन्यादान करने पर कन्या का शरीर और गुण दोनों ही निष्फल हो जाता है - ''इदमिह मदनस्य जैत्रमस्त्रं सहजविलासनिबन्धं शरीरम्। अनुचित वरसम्प्रदान शोच्यं विफलगुणातिशयं भविष्यतीति'' ।।[7] मालती की सखी लवङ्गिका गुणहीन, वृद्ध और कुरूपवर (पद्मावती नरेश के नर्मसचिव नन्दन) को कन्यादान करने पर भूरिवसु की निन्दा करती है - ''गुणापेक्षाशून्यं कथमिदमुपक्रान्तमथवा''(मालती 2.7)। इस कृत्य के लिए मालती भी अपने पिता को उलाहना देती है।[8] भारतीय संस्कृति में स्त्री के पत्नी रूप की आदर्श संकल्पना सीता के रूप में चरितार्थ हुई है। भवभूति की दो नाट्य-कृतियों महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् का वृतान्त रामाश्रित ही है जिसमें सीता के रूप में आदर्श पत्नी के समस्त गुण फलीभूत हुए हैं। पत्नी को 'गृहलक्ष्मी' और 'नेत्रों के लिए अमृतशालाका की उपाधि दी गई है -'इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो- रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः'(उत्तर.1.38)। राम की सीता के प्रति भावाभिव्यक्ति उस युग में पत्नी की गौरवपूर्ण स्थिति का चरम निदर्शन है। पत्नी पति का सर्वस्व, दूसरा हृदय, नेत्रों के लिए कौमुदी और अङ्गों के लिए अमृततुल्य कही गई हैं।[9] सीता के समान ही कौसल्या को भी गृहलक्ष्मी की संज्ञा दी गई है-''आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा''(उत्तर.4.6)। भवभूतियुगीन समाज में पत्नी पति की सहधर्मिणी हुआ करती थीं जिनकी धार्मिक अनुष्ठानों में उपस्थिति अनिवार्य थी। इसी कारण राम यज्ञीय अनुष्ठान में सीता की अनुपस्थिति में उनकी सुवर्णमयी प्रतिमा को स्थापित करते हैं।[10] पत्नी पति की शुभचिंतक और

श्रेष्ठ-परामर्शदात्री होती है। मन्दोदरी रावण को उचित और अनुचित का परामर्श देती हुई परिलक्षित होती है (महावीरचरितम् पृष्ठ संख्या-253)। पत्नी की मधुरवाणी पति के मुरझाए हुए पुष्पवत् जीवन को विकसित कर देती है। पत्नी पति को सर्वथा तृप्त करने वाली, इन्द्रियों को मुग्ध करने वाली, कर्णों के लिए अमृत और मन के लिए आनन्दस्वरूपा होती है।[11] पत्नी का स्पर्शमात्र पति के जीवन में प्राणशक्ति का संचार कर देता है। तमसा का सीता से कहा गया वक्तव्य ध्यातव्य है- ''संजीवय जगत्पतिम्। प्रियस्पशो हि पाणिस्ते तत्रैष निरतो जनः'' (उत्तर. 3.10)। सीता के कथन "अहमेवैतस्य हृदयं जानामि''[12] से सिद्ध है कि पत्नी पति के हृदयस्थ विचारों को भी जान लेती है। इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि भवभूति की कृतियों में पत्नी के रूप में नारी पति के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट है और पति के एकनिष्ठ प्रेम की भागी बनती है। उसके जीवन में पति का साथ ही सर्वस्व है। पति से वियुक्त हुई पत्नी करुणा की साक्षात् मूर्ति और शरीरधारिणी विरहव्यथा के समान हो जाती है-''करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी'' (उत्तर 3.4)। पत्नी का परित्याग करने वाला पति लोकनिन्दा का पात्र हुआ करता था। सीता का परित्याग करने वाले राम को वासन्ती उलाहना देते हुए कहती है- ''अयिकठोर ! यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम् । किमभवद्विपिने हरिणी–शः कथय नाथ! कथं बत मन्यसे'' (उत्तर.3.27)। भवभूति के रूपकों में स्त्री के प्रेयसी रूप का उदात्त स्वरूप प्रकट हुआ है। मालतीमाधवम् की नायिका मालती अपने प्रियतम माधव के प्रति एकनिष्ठ अनुराग रखते हुए भी कुलमर्यादा के प्रति दृढ़ है। वह नन्दन के साथ विवाह की अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर मानती है- ''यत्तस्य देवस्य परकीयत्वेनापराद्धमात्मानं परित्यज्य निर्वृता भविष्यामि।''[13] वह प्राणत्याग करने से पूर्व माधव के श्रीमुख के दर्शन की उत्कट अभिलाषा प्रकट करती है[14] और माधव को ''जीवितप्रदायिनो'' (जीवनदाता) मानती है। उसकी यही अभिलाषा है कि उसके परलोक गमन करने पर भी माधव उसकी स्मृति में लोकयात्रा शिथिल न करें (मालती.पृ.सं.-230)। वस्तुतः भवभूति के रूपकों में दाम्पत्य-प्रेम की चरम परिणति हुई है। पति-पत्नी का परस्पर प्रेम सुख-दुःख सभी अवस्थाओं में एक-सा ही रहता है। यह प्रेम समय के साथ बढ़ता जाता है और वृद्धावस्था में भी कम नहीं होता है। दाम्पत्य प्रेम अनिर्वचनीय है जो सभी को अभीष्ट होता है- ''अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु'' (उत्तर.1.39)। मालतीमाधवम् में भी पति-पत्नी के अन्तर्सम्बन्ध विषयक श्रेष्ठ व श्लाघ्य व्याख्या प्राप्त होती है। कामन्दकी मालती और माधव के माध्यम से मानो सम्पूर्ण दम्पती को यह सीख देती है कि पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रिय मित्र, बन्धु, पूर्णमनोकामना, समृद्धि और जीवन होते हैं- 'प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा। स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु।।' (मालती.6.18) पति-पत्नी को समान धरातल पर प्रतिष्ठित करने वाली भवभूति की यह विचारधारा आज भी स्वीकार्य एवं अनुकरणीय है।

स्त्री का माता के रूप में वात्सलमयी एवं करुणामयी चरित प्रदर्शित हुआ है, जो अपने सन्तान के साथ ही प्रकृति के सभी जीवों के प्रति भावपूर्ण एवं संवेदनशील है। भगवती पृथिवी का सीता के लिए प्रेम मर्मस्पर्शी है। राम के द्वारा परित्यक्ता सीता प्रसव-वेदना से पीडित होकर जब स्वयं को गङ्गा के प्रवाह में समर्पित कर देती है तब भगवती पृथिवी और भागीरथी माता के समान उनके प्राणों की रक्षा करते हुए उन्हें पाताललोक में स्थान देती हैं।[15] विश्वम्भरा होने पर भी पृथिवी सीता के दुःख से विचलित हो जाती हैं।[16] सीता का अपने पुत्र लव-कुश के प्रति असीम स्नेह को देखकर ही तमसा कहती है-''प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य'' (उत्तर., पृ. सं. -196)। उनका पशु-पक्षियों और वनस्पतियों के प्रति भी सहृदय माता जैसा स्नेह परिलक्षित होता है। सीता गजशावक को पुत्र कहकर संबोधित करती है और उस पर दूसरे हाथी के प्रहार करने पर उत्कण्ठित होकर

उसके रक्षार्थ राम का आह्वान करती है- ''आर्यपुत्र, परित्रायस्व मम तं पुत्रकम्'' (उत्तर.पृ.सं.-169)। वस्तुतः भवभूति अपत्यस्नेह को सर्वोपरि मानते हुए यह घोषणा करते हैं कि सर्वत्र अपत्यस्नेह की ही विजय होती है। यह अपत्यस्नेह सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है- 'जितमपत्यस्नेहेन। यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो-'' उत्तर. पृ.सं. 469।

भवभूति के नाटकों में स्त्रियों की परिस्थिति, शैक्षिक-स्तर और कलाभिज्ञता पर्याप्त रूप से भासित हुआ है। मालतीमाधवम् में कामन्दकी अत्यन्त मेधासम्पन्न और प्रतिभाशाली बौद्धभिक्षुणी है। वह भूरिवसु के साथ अनेक स्थानों पर निवास करके विद्यार्जन करती है- ''यदेव नो विद्यापरिग्रहाय नाना दिगन्तवास-साहचर्यमासीत'' (मालती.पृ.सं.-18)। इससे स्पष्ट है कि उस युग में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। स्त्रियाँ बिना किसी भेदभाव के पुरुषों के साथ अध्ययन किया करती थीं। कामन्दकी सर्वशास्त्र में निष्णात सन्यासिनी होने पर भी लोकव्यवहार में चतुर है। मालती-माधव का परिणय उसकी चातुर्यपूर्ण नीति से ही सम्भव हो सका। वह अपनी बुद्धिमता से राजाज्ञा और कापालिकों के उदण्ड अभिचार जैसी विषम परिस्थिति में मालती-माधव का पाणिग्रहण कराने में सफल हो जाती है। कामन्दकी अयोग्य वर नन्दन से मालती के विवाह का निर्णय करने वाले मंत्री भूरिवसु की निन्दा करती है। कामन्दकी धर्मशास्त्र की विशेषज्ञा है जो नीतिपरक मूल्यों का उपदेश करते हुए मकरन्द से कहती है- ''शास्त्रीय मर्यादाएँ धर्म और अधर्म की कारणभूत हैं जो सर्वथा वाणी में प्रतिष्ठित हैं। भूरिवसु ने नन्दन के लिए मालती का जो वाग्दान किया, वह अनुचित है क्योंकि मालती महाराज की अपनी कन्या नहीं है और कन्यादान में राजा प्रमाण हैं- ऐसा धर्माचार का सिद्धान्त नहीं है''।[17] मकरन्द ने कामन्दकी को महिमा से सर्वसमर्थ योगीश्वरी कहा है-''प्रभवति हि महिमा स्वेन योगीश्वरीयम्'' (मालती.10.8)। कामन्दकी शास्त्रीय रीति से रत्नों और अलंकारों का परीक्षण करने में दक्ष है।[18] सौदामिनी कामन्दकी की पूर्वशिष्या[19] और योगिनी[20] है, वह तात्कालिक विदूषियों की उन्नत अवस्था की द्योतक है। सौदामिनी अन्तेवासी शिष्या है जो गुरुकुल में विद्यार्जन हेतु निवास करती है। उसे तन्त्र-मंत्र और योगविद्या में सिद्धी प्राप्त है- 'गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्। इमामाकर्षिणीं सिद्धिमातनोमिशिवाय वः।'' (मालती 9.53) मकरन्द कामन्दकी के समान ही सौदामिनी को भी सर्वसमर्थ योगीश्वरी की संज्ञा से अभिहित करता है।[21] सौदामिनी मन्त्रसिद्धी का प्रभाव प्राप्त करने के लिए श्रीपर्वत पर निवास करते हुए कापालिक व्रत का अनुष्ठान करती है- ''सेदानीं सौदामिनी समासादिताश्चर्यमन्त्रसिद्धि प्रभावाश्रीपर्वते कापालिकव्रतं धारयति'' (मालती. पृष्ठ संख्या-25)। उसकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर कामन्दकी प्रसंशा करते हुए कहती है कि बोधिसत्त्वों को भी अतिक्रान्त करने वाले व्यापारों से स्पृहणीय सिद्धियों वाली तुम इस लोक की वन्दनीया हो - ''वन्द्या त्वमेव जगतः स्पृहणीयसिद्धिरेवंविधैर्विलसितैरतिबोधिसत्त्वैः''(मालती.,10. 21)। इसी प्रकार कामन्दकी की सखी बुद्धरक्षिता भी बौद्धभिक्षुणी है। उत्तररामचरितम् में आत्रेयी का वर्णन प्राप्त होता है जो दण्डकारण्य में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषियों से वेदान्तविद्या के अध्ययनार्थ निवास करने वाली तापसी है (उत्तर.2.3)। महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती भी तपश्चर्या में निरत है। भवभूति के रूपकों में वर्णित इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि तात्कालिक समाज में स्त्रियों को शिक्षा के पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। उन्हें शिक्षार्थ अनेक स्थानों पर निवास करने और गृहस्थ जीवन का त्याग करके योगविद्या और वेदान्त विद्या जैसे गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों का अनुशीलन करने के लिए संन्यास ग्रहण करने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। भवभूति ने सन्यासिनियों के साथ गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियों की कलाप्रियता को भी भलीभांति रेखांकित किया है। चित्रकला में निपुण मालती माधव की विरहवेदनाजन्य उत्कण्ठा के शमनार्थ माधव को

चित्रित करती है।[22] बुद्धरक्षिता और अवलोकिता जैसी स्त्रियाँ नृत्यकला में कुशल हैं।[23] लवङ्गिका इत्यादि सखियाँ कामशास्त्र की विशेषज्ञा हैं जो मालती-माधव और मकरन्द-मदयन्तिका के कामोद्दीपन में सहायिका और संयोजिका के रूप में निरूपित हैं।

भवभूति की कृतियों में स्त्री चरित का नकारात्मक पक्ष भी प्रकट हुआ है। कपालकुण्डला क्रूरस्त्री के रूप में दिखाई देती है। वह श्रीपर्वत के समीप श्मशान में निवास करने वाले अघोरघण्ट नामक कापालिक की शिष्या है जो नकारात्मक विद्या व शक्ति से सम्पन्न है।[24] हृत्कमल में प्रकाशमान शिवस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार करने वाली वह इडा-पिङ्गला आदि नाड़ियों के क्रम से पञ्चामृतात्मक शरीर के पञ्चभूतों का वशीकरण करने में समर्थ है।[25] वह कराला मन्दिर में मालती की बलि देने में अपने गुरु अघोरघण्ट की सहायता करती है[26] और अघोरघण्ट के वध का प्रतिशोध लेने के लिए मालती का अपहरण कर लेती है।[27] कपालकुण्डला के कृत्य को स्त्र्योचित न मानते हुए उसके इस राक्षसी एवं क्रूरकृत्य की निन्दा करते हुए माधव कहता है-" निर्माणमेव हितदा तव लालनीयं, मा पूतनात्वमुपगाः शशिवतातिरेव'' (मालती. 9.51)। क्रूरस्त्रियों में शूर्पनखा और त्रिजटा का भी उल्लेख मिलता है। भवभूति की नाट्यकृतियों में विपरीत प्रकृति के नारी पात्रों को स्थान तो मिला है किन्तु ऐसे पात्रों को तात्कालिक युग में आदर्श नहीं समझा जाता था। इसीकारण उन पात्रों की निन्दा की गई है। स्त्री को समाज में सम्मान व सुरक्षा प्राप्त थी। क्रूरकृत्य करने के पश्चात् भी उनका वध निषिद्ध था। मालतीमाधव में निर्दयतापूर्वक प्रहार करती हुई कपालकुंडला 'यह स्त्री है' ऐसा कहकर माधव के द्वारा क्षमा कर दी गई।[28] इसी प्रकार महावीरचरितम् में गुरु विश्वामित्र के द्वारा ताटका नाम की राक्षसी का वध करने का आदेश देने पर राम 'भगवन् ! स्त्रीखल्वियम' (महावीरचरितम्, प्रथमोऽङ्क, पृष्ठ संख्या-35) ऐसा कहकर उसका वध करने में संकोच करते हैं।

भवभूति के उद्धरणों और स्त्रीपरक धारणाओं से स्त्रियों की यथार्थ स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है। समाज में उनकी परिस्थिति संतोषजनक नहीं थी। पुरुषप्रधान समाज में जब राजकुलों की स्त्रियाँ सामाजिक न्याय, समानता व स्वतंत्रता से प्रायः वंचित थी तो सामान्य स्त्रियों की दयनीय दशा स्वयमेव समझी जा सकती है। जनता पुरुषवादी मानसिकता से ग्रस्त थी। जहाँ रावण अपनी बहन शूर्पनखा के अपमान के प्रतिशोध के लिए राम या लक्ष्मण पर आक्रमण न करके राम की स्त्री 'सीता' का हरण करता है वहीं सीता जैसी स्त्री को भी अपनी पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए अग्निशुद्धि[29] का सामना करना पड़ता है और इस अपमानजनक परीक्षा के उपरान्त भी प्रजा उनकी पवित्रता पर अविश्वास करती है। प्रजावत्सल्य राजा राम को गर्भावस्था में सीता का परित्याग करना पड़ता है।[30] स्त्री को मनोवांछित वर का चयन करने का अधिकार भी नहीं था। मालती को माधव से विवाह करने के लिए अनेक विरोधों का सामना करना पड़ता है। इन विसंगतियों के होने पर भी समाज प्रायः स्त्रियों के प्रति सहृदय व संवेदनशील था। स्त्रियाँ सम्माननीय व गौरवपूर्ण थी। सीता को जन्मना पवित्र माना गया है जिनकी पवित्रता को प्रमाणित करने की अर्हता तीर्थजल और अग्नि इत्यादि भौतिक पदार्थों में नहीं है- ''उत्पत्ति परिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः । तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।।'' (उत्तर. 1.13) भवभूति ने स्त्री की उपमा उन सुगन्धित पुष्पों से की हैं जिनको शिरोधार्य किया जाना स्वाभाविक है न कि पैरों से कुचला जाना-''नैसर्गिकी सुरभिणः कुमुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।''[31] भवभूति की स्त्रीविषयक दृष्टि उनकी कृतियों के मर्म में निहित है जिसकी गवेषणा व समालोचना आवश्यक है। उनके नाटकों में स्त्री-विमर्श के समस्त आयामों को विश्लेषित किया गया है। भवभूति का अन्तर्मन स्त्रियों के प्रति किये गये सामाजिक अन्याय व पूर्वाग्रह से उद्विग्न था इसी कारण उनकी लेखनी स्त्र्योचितसम्मान, प्रतिष्ठा, प्रस्थिति और अधिकार के लिए सजग, तत्पर व सचेष्ट रही है।

सन्दर्भ -

1. *महावीरचरितम् 1.31*
2. *तदैव 1.30*
3. *मालतीमाधवम् द्वितीय अंक, पृ.स. 70*
4. *तदैव द्वितीय अंक, पृ.स. 92*
5. *तदैव- मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वयः कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम्। 2.2*
6. *तदैव द्वितीय अंक, पृ.स. 84*
7. *तदैव 2.6*
8. *तदैव द्वितीय अंक, पृ.स. 100*
9. *उत्तररामचरितम्-त्वं जीवितो त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमगें। 3.26*
10. *तदैव-नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्। हिरण्यमय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे।। 7.20*
11. *तदैव 1.36*
12. *तदैव - पृ.स. 182*
13. *मालतीमाधवम् - षष्ठ अंक पृ.स. 223*
14. *तदैव षष्ठ अंक पृ.स. 228-229*
15. *उत्तररामचरितम् - तृतीय अंक पृ.सं. 161*
16. *तदैव पृ.सं. 469*
17. *मालतीमाधवम् - चतुर्थ अंक पृ.सं. 157*
18. *तदैव षष्ठ अंक पृ.सं. 226*
19. *तदैव - मम पूर्वशिष्यां सौदामिनीम् (प्रथम अंक पृ.सं. 25)*
   स एष चिरन्तो॰ न्तेवासी जनः प्रणति। पृ.सं. 405
20. *तदैव - सौदामिनी-वत्स ! योगिन्यस्मि, पृ.सं. 368*
21. *तदैव - 9.54*
22. *तदैव - कथय किमाह मन्दारिका माधवालेख्यप्रयोजनं मालत्याः। प्रथम अंक पृ.सं. 57*
23. *तदैव - पृ.सं. 410*
24. *तदैव - पृ.सं. 26*
25. *तदैव - 5.2*
26. *तदैव - पंचम अंक पृ0सं0 208*
27. *तदैव - कथमपि तदा॰ भवस्त्वं कमलमुखि ! कपालकुंडलाग्रस्ता। 9.50*
28. *तदैव - षष्ठ अंक पृ.सं. 212*
29. *उत्तरामचरितम् - प्रथम अंक पृ.सं. 25 एवं चतुर्थ अंक पृ.सं. 289*
30. *तदैव - 1.40*
31. *तदैव - 1.49*

15

भवभूति के रूपकों में नायिका विवेचन

कृष्णा जैन

नाटकादि रूपक में नायिका का भी ठीक उतना ही महत्त्व है जितना नायक का, विशेषकर श्रृंगार रस के रूपकों में। नायिका का वर्गीकरण तीन प्रकार से प्राप्त होता है -

- उसके तथा नायक के सम्बन्ध पर आधारित।
- एक ओर उसकी उम्र और अवस्था दूसरी ओर नायक के प्रतिकूलाचरण करने पर उसके प्रति नायिका के व्यवहार के आधार पर।
- उसकी प्रेमगत दशा के वर्णन के आधार पर।

नायिका को मुख्य रूप से तीन तरह का माना जाता है -

- स्वीया या स्वकीया, नायक की स्वयं की परिणीता पत्नी जैसे उत्तररामचरित की सीता।
- अन्या, वह नायिका जो नायक की स्त्री नहीं है वह या तो किसी व्यक्ति की अनूढा कन्या हो सकती है या किसी की परिणीता पत्नी। मालती माधव की नायिका मालती को अनूढा कन्या के रूप में देख सकते हैं।
- सामान्या, साधरण स्त्री या गणिका। कई रूपकों में विशेषतः प्रकरण, प्रकरणिका तथा भाण मे गणिका भी नायिका के रुप में चित्रित की जा सकती है। मृच्छकटिकम् की नायिका वसन्तसेना गणिका ही है।

महाकवि भवभूति के रूपकों में सीता और मालती दो नायिकायें है जिनका विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सीता - नायिका का लक्षण करते हुए साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि - **नायक-सामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता।**[1] अर्थात् नायिका भी नायक के समान गुणों, त्यागी कृती आदि से युक्त होती है। विनय सरलता आदि गुणों से युक्त गृहकर्म में तत्पर, पतिव्रता स्त्री स्वीया नायिका कहलाती है - **विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।**[2] महावीर चरित के आरम्भ में जब हम देखते हैं तो सीता हमें एक मुग्धा कन्या में रूप में प्रतीत होती हैं। जब वह प्रथम बार विश्वामित्र के आश्रम में राम का दर्शन करती है तो उनकी ओर आकर्षित हो जाती हैं। अहिल्या के उद्धार के प्रसंग में सौम्यदर्शन राम के प्रभाव से वह प्रभावित होकर उन्हें प्रेमपूर्वक देखती हैं और छिपकर ये वचन कहती हैं -

शरीरनिर्माणसदृशा नन्वस्यानुभावः[3]

जब ताड़का वध का प्रसंग घटित होता है तो वह राम के प्रति भय के भाव से भरकर अपनी भीरुता को इन शब्दों मे व्यक्त करती हैं -

अहो परागत एव। हा धिक् हा धिक्! उत्पातवातालिरिव हताशा महानुभावं अभिद्रवति।[4]

उनकी भीरुता शिवधनुष एवं परशुराम के आगमन पर देखी जाती है। राम के समक्ष शिवधनुष आया देखकर कहती है - **साम्प्रतं संशयितास्मि।**[5] तो वहीं क्रुद्ध परशुराम को आया हुआ देखकर वह राम को रोकने का प्रयास करती हैं - परित्रायस्व मा। **प्रियसाहसिक प्रसीद।**[6] वे राम की विजय के लिए संग्राम श्री से प्रार्थना करती हैं - **भगवति संग्रामश्रीरेष ते अंजलिः।**[7] महाकवि भवभूति सीता को पतिव्रताओं के लिए ज्योति मानते हैं जिनकी देवगण भी वन्दना करते हैं -

वस्वर्करुद्रसहितः स्वयमेष साक्षाद्, वृद्धश्रवाः समभिनन्दति साधुसाध्वीम्।
अग्नि-प्रवेशपरिनिर्गमशुद्धभावां, सीतां रघूत्तमभवत्स्थितिमाद्रियस्व।[8]

महावीर चरित में जब सम्पूर्ण रूप में हम नायिका सीता के चरित्र को देखते हैं तो उनके चरित्र का पल्लवन नहीं दिखाई देता है। रंगमंच पर भी उनकी उपस्थिति अत्यल्प ही है।

लेकिन विधि का विधान देखिए अभी विवाह के कंकण भी हाथ से नहीं छूटने पाये थे कि परिस्थिति ने मुग्धा को प्रौढ़ा के समान आचरण करने के लिए बाध्य कर दिया।

उत्तररामचरित की सीता अनेक गुणों से सम्पन्न हैं। वे कोमल, परिहासप्रिय, भावविह्वल, राममयी जीवन, सहज, सरल, स्नेहयुक्त, क्षमाशीलता, प्रेम की उदारता, मातृहृदय वत्सला आदि गुणों से युक्त हैं।

अष्टावक्र मुनि के आगमन पर वह अत्यन्त सम्मान पूर्वक मधुर वाणी में उनका स्वागत करती हैं - भगवन् नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्याश्च शान्तायाः।[9]

लोकाराधन के लिए राम जब प्रतिज्ञा करते हैं कि -

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।[10]

उनकी इस प्रतिज्ञा का भी वह अभिनन्दन करते हुए कहती है - **अतएव एष राघवकुलधुरन्धर आर्यपुत्रः।**[11] चित्रदर्शन के समय सीता चित्र देखने में खोयी रहती हैं लेकिन जब राम को रोता हुआ देखती हैं तो उनकी आंख में भी अश्रु भर आते हैं और कह उठती हैं - **अयि देवरघुकुलानन्द एवं मम कारणात्क्लान्त आसीः।** यहाँ पर महाकवि भवभूति आनन्द तथा क्लान्त इन दो शब्दों के द्वारा स्थिति का वैषम्य उपस्थित करते हैं। और सीता राम की स्थिति के लिए स्वयं को दोषी मानने लगती हैं। वहीं तीसरे अंक में भी जब राम पूर्वस्मृतियों से युक्त जनस्थान को देखकर बार बार मूर्च्छित होते हैं तो वहाँ भी सीता स्वयं को ही दोषी मानती हैं और चिन्ता करती हैं कि सकल जीवमंगल राम किसी दारूण दशा को प्राप्त न हों।[12] वासन्ती जब राम को उलाहना देती है तब भी वह आहत होकर अपनी सखी को ही डाँटती है - **किं त्वमेवंवादिनी भवसि। प्रिया हि खलु सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः। सखि वासन्ति! त्वमेव दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रं प्रलपन्तं प्रलापयसि।**[13]

सीता प्रेम की उदारता की मूर्ति है। किन्तु कहीं कहीं उनके परित्यक्ता के अभिमान की झलक दिखाई देती है। राम जब शम्बूक वध के लिए पुनः वन मे आते हैं तो सीता कह उठती हैं - **दृष्ट्या अपरिहीनराजाधर्मः खलु स राजा।**[14] राजा और राजधर्म इसी की ओर इंगित करते हैं। फिर भी वह राम के प्रति कठोर नहीं हैं। राम जब प्रिय जानकी की सम्बोधन करते हैं तो वह कहती हैं-

किमिति आर्य पुत्रस्योपरि निरनुकोशा भविष्यामि। अहमेतस्य हृदयं जानामि ममाप्येषः।[15]

राम जब जाने लगते हैं तो उनके लिए वह आकुल होने लगती हैं। राम के दर्शन को वह अपूर्व पुण्यजन्म मानती हैं। सीता के मातृहृदय के वात्सल्य को महाकवि भवभूति बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं।

चाहे वह गजशावक का वृतान्त हो जो उन्हें अपने लवकुश की याद दिला देता है - **भवगति तमसं अयं तावदीदृशो जातः। तौ पुनर्न जानामि कुशलवावेतावतः कालेन कीदृशो संवृतावविति।**[16] संतान स्मरण मात्र से उनके स्तनों से दूध बहने लगता है। बालकों के पिता का सान्निध्य उन्हें संसारिणी होने का अनुभव करा देता है। द्विजेन्द्र लाल राय ने भवभूति की सीता को निम्न प्रकार से अंकित किया है - भवभूति की सीता एक परिकल्पना है। उमडी हुई नदी नहीं, स्वच्छ सरोवर है। उसने आदि से अन्त तक केवल प्यार किया है। निर्वासन शल्य भी उसके अटल प्रेम को विद्ध न कर सका किंतु उस प्रेम ने कोई कार्य नहीं किया। वह प्रेम ज्योत्सना की तरह गतिहीन है, सूरज मुखी की तरह पर मुखापेक्षी है। विरह की तरह करुण है और हंसी की तरह सुन्दर है। भवभूति की सीता जैसे किसी हेमन्त ऋतु के उज्ज्वल प्रभात का शेफालि - सुरभित स्वप्न है।[17]

उत्तररामचरित की सीता शास्त्रीय दृष्टि से प्रौढ़ा स्वकीया नायिका है। वे कई वर्षों से अपने पति के सुख दुख में साथ रही हैं। वह देवों की यज्ञभूमि से उत्पन्न वसुन्धरा की पुत्री हैं। विदेहराज जनक उनके पिता एवं सूर्यकुल की वधू हैं। महाकवि भवभूति उनका परिचय निम्न पंक्तियों के माध्यम से देते हैं -

विश्वंभरा भगवती भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।[18]

सीता का जीवन दुःख की एक लम्बी कहानी है। राम के साथ चौदह वर्ष का वनवास और पुनः लोकापवाद के कारण कठोर गर्भा होते हुए वन में निवास उनके जीवन के दुःखद पल हैं। चित्रदर्शन के समय किये गए संवाद में उनकी असामान्य पति भक्ति अभिव्यक्त होती है जो उनके चरित्र की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है पत्रिका दीर्घकालीन वियोग उनका रूप बदल देता है। चित्रदर्शन में उन्हें रामचरित विषयक चित्र देखना ही अभिप्रेत है। वह एकक्षण भी राम से दूर होना नहीं चाहती किंतु दोहद के रूप में उनकी राजमहल से एक बार फिर वन के लिए विदाई हो जाती है। उन्हें देखकर यह कहना कठिन है कि वह करुणा की मूर्ति है अथवा शरीर धारिणी विरह व्यथा। छाया अंक में दोनों का आपस में वार्तालाप एक दूसरे के हृदयों को पहचानने में सहायक होता है और अंतरंग में भी छुपे क्षोभ के भाव विगलित हो जाते हैं। सीता सुख हो या दुःख हर परिस्थिति में राम का ही स्मरण करती है। उनकी असाधारण पतिभक्ति ही उन्हें पूज्यों में पूज्य बनाती है। भगवती अरुन्धती भी सीता के पूज्यत्व को इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है -

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा।
विशुद्धैरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।।[19]

मालती - मालती माधव प्रकरण की नायिका मालती कुलीन कन्या है। वह आचरण की पवित्रता, भाव की प्रगाढ़ता, वंश की मर्यादा एवं स्वभाव की उच्चता अपूर्व सुन्दरी, अत्यन्त गम्भीर, विनम्र भाव, संयमन आदि गुणों से युक्त है। मालती जब सर्वप्रथम माधव को देखती है तो उसमें अनुरक्त हो जाती है और धीरे धीरे कामाग्नि की दाह से विह्वल अवस्था को प्राप्त हो जाती है - **अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दाहविधुरा।**[20] मालती पद्मावती राज्य के मन्त्री भूरिवसु की इकलौती कन्या है। उच्चकुल में उत्पन्न होने के कारण शील और सौजन्य उसके चरित्र में स्पष्ट प्रतीत होते हैं। वह कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहती जिससे कि उसके कुल की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचे। वह सौन्दर्य की मूर्ति थी। उसके सौन्दर्य का वर्णन माधव ही नहीं कामन्दकी भी अनेक अवसरों पर करती है। यही कारण है कि उसके सौन्दर्य से आकर्षित होकर अमात्य नन्दन उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। और माधव भी उसके प्रथम दर्शन से उसकी ओर आकर्षित हो उठता है। वह अपने भावों को व्यक्त करने के लिए मालती का चित्र बनाता है। और उसके नीचे अपना सन्देश लिखता है।

मालती भी माधव के प्रति आकर्षित होती है किन्तु वह लज्जा के कारण शब्दों में अपने भावों को व्यक्त नहीं कर पाती केवल नेत्रों के द्वारा प्रेम को अभिव्यक्त करती है। उसका प्रेम कभी भी किसी भी रूप में शालीनता की सीमा का उल्लंघन नहीं करता। अष्टम अंक में माधव के लाख प्रयत्न करने पर भी नवविवाहिता मालती भारतीय नववधू के समान ही आचरण करती है और अपने उच्चकुलोत्पन्न, शिष्ट, सुसंस्कृत, लज्जा एवं विनम्रता के गुणों का परिचय देती है। मालती का यह आचरण भारतीय कुल वधुओं के लिए अनुकरणीय है। उसके यही गुण उसको सबकी प्रिय बनाते हैं। सभी प्रकार के अंगज, अयत्नज और स्वाभाविक अलंकारों तथा रूप, लावण्य आदि सभी गुणों से विभूषित परकीया, मुग्धा नायिका मालती का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। मालती का चरित्र एक ओर भारतीया कन्या का आदर्श प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर वह मुग्धा प्रेमिका के रूप में भी आदर्श है।

इस प्रकार महाकवि भवभूति की नायिकाओं में महावीर चरित की सीता जहाँ मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित की गई है। वह राम के कार्यों एवं राम के प्रति किये गये कार्यों से अपने भावों को अभिव्यक्त करती है।

उत्तररामचरितम् की सीता के चरित्र को महाकवि भवभूति ने विस्तार से वर्णित किया है। कहीं कहीं तो यह प्रतीत होता है कि यह सीता चरित ही है। सीता आदर्श दाम्पत्य की प्रतीक हैं। आधुनिक युग में बढ़ते तलाक के प्रकरण, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह में जिहाद का प्रवेश इन सबके लिए सीता चरित्र संजीवनी की तरह है। मालती माधव की मालती भी प्रेम विवाह करना चाहती है लेकिन बिना माता पिता की अनुमति के वह अपने प्रेम को प्रकट भी नहीं होने देती है। आज की बालिकाओं के लिए भी उसका मर्यादित जीवन समाज में आदर्श की प्रतिष्ठा कर सकता है।

सन्दर्भ -

1. सा. द. 3/56
2. सा. द. 3/57
3. म. च. 1/26 - 27
4. म. च. 1/38 - 39
5. म. च. 1/58
6. म. च. 2/26 - 27
7. म. च. 2/42 - 43
8. म. च. 7/3
9. उ. रा. च. 1/8 - 9
10. उ. रा. च. 1/12
11. उ. रा. च. 1/12 - 13
12. उ. रा. च. 3/38 - 39
13. उ. रा. च. 3/27 - 28
14. उ. रा. च. 3/7 - 8
15. उ. रा. च. 3/12 - 13
16. उ. रा. च. 3/16 - 17
17. कालिदास और भवभूति पृ. 77
18. उ. रा. च. 1/11
19. उ रा. च. 4/11
20. मा. मा. 2/3

16

भवभूति के रूपकद्वय में प्रतिबिम्बित सीताचरित

आशीष कुमार

संस्कृत रूपककारों में रूपक विधान मर्मज्ञ करुण रस सिद्ध कवि कुलभूषण महाकवि भवभूति अपनी नाटयदृष्टि, क्रान्तदर्शी कल्पना, अभिव्यक्ति कौशल एवं रसप्रस्रविणी वर्णनशैली के कारण अन्यतम स्थान रखते हैं। वह सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति के उपासक हैं। उनकी रचनाओं में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का जो प्रकर्ष अवलोकित होता है उससे कहीं अधिक त्याग, तप और तितिक्षा से समन्वित भारतीय संस्कृति के तत्त्व अभिव्यक्त हुए हैं। महाकवि भवभूति मानवीय भावनाओं के विलक्षण चित्रकार हैं। अपनी लेखनी से वह मानव-मन के विविध भावों का ऐसा सजीव चित्रण करते हैं कि सहृदय उन भावों से आप्लावित हो स्वयं ही उन घटनाओं का पात्र बन जाता हैं। वह क्रान्तदर्शी कल्पना के धनी हैं। उनके तीनों ही नाटक उनकी मौलिक कल्पना के अप्रतिम उदाहरण है। मालतीमाधवम् तो पूर्ण रूप से उनकी कल्पनाप्रसूत प्रकरण है। जबकि अन्य दो नाटकों- महावीरचरितम् एवं उत्तररामचरितम् के कथानकों में उन्होंने अपनी कल्पना से अनेक प्रयोग एवं परिवर्तन किये। उनके द्वारा कथानकों में किये गये मौलिक परिवर्तन न केवल स्वाभाविक एवं चित्ताकर्षक हैं, अपितु रूपक की नाटकीयता एवं रोचकता के उत्कर्षधायक भी हैं। उत्तररामचरितम् में घटनाओं का संयोजन अत्यन्त तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक है। यह भवभूति की नाट्यप्रतिभा का चमत्कार ही है कि उत्तररामचरितम् के काल्पनिक घटनाक्रमों ने यदा कदा रामायण की मूल कथा का अतिक्रमण सा कर लिया है; ऐसी प्रतीति होने लगती है। पात्रों के चरित्र को गढ़ने की कला में महाकवि भवभूति की प्रतिभा विलक्षण है। अपने रूपकों में उन्होंने वाल्मीकि के परम पावन आदर्श चरित्र राम और सीता के चरित को एक भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम को अत्यन्त गम्भीर, धैर्यशाली, समदर्शी, मर्यादापुरुषोत्तम, महावीर, सत्यपराक्रम, मनस्वी, दृढ़व्रती, मृदुभाषी आदि गुणों से युक्त आदर्श चरित्र के रूप में दिखाया है। वहीं भवभूति ने श्रीराम के वीर्यवान, प्रजानुरंजक, उदात्त, कर्त्तव्यनिष्ठ स्वरूप के साथ-साथ माता सीता के प्रति उनके प्रेम एवं कोमल भावों तथा कर्त्तव्यपालन हेतु सीता-परित्याग की विवशता को विशेष रूप से चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों यथा- सीता, अनसूया, कौशल्या, लक्ष्मण, रावण, माल्यवान, तमसा-मुरला, वासन्ती, वाल्मीकि, विश्वामित्र, जनक आदि का चित्रण भी कथा के प्रवाह के अनुरूप ही किया है।

महाकवि भवभूति के जीवनचरित के विषय में विद्वानों ने पर्याप्त विवेचन किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में भी अपने वंश एवं पूर्वजों के विषय में स्पष्ट रूप से सूचना दी है। महावीरचरितम् की प्रस्तावना में

उन्होंने स्वयं को दक्षिण भारत में पद्मपुर (आधुनिक विदर्भ) का निवासी बतलाया है। वह काश्यपगोत्रिय कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण थे। उनके पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नीलकण्ठ एवं माता का जतुकर्णी था। ज्ञाननिधि उनके गुरु थे। यदा कदा उन्हें प्रसिद्ध मीमांसाचार्य कुमारिलभट्ट के शिष्य उम्बेकाचार्य के रूप में भी उल्लेखित किया गया है। इस विषय में विद्वानों ने अनेक तर्क भी प्रस्तुत किये हैं। भवभूति भी स्वयं को 'वश्यवाचः कवि'[1] एवं 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ'[2] कहते हैं। मालतीमाधव की प्राप्त कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियों में 'कुमारिलस्वामिशिष्यउम्बेकाचार्यकृत' जैसे उद्धरण प्राप्त होते हैं। इस आधार पर उन्हें मीमांसाशास्त्र के विशेषज्ञ विद्वान् के रूप में भी मान्यता प्राप्त होती है। विभिन्न विद्वानों ने इस विषय पर अपने तर्क दिये हैं। वर्तमान युग के प्रसिद्ध मीमांसाचार्य आचार्य सोमनाथ नेने महोदय ने अपने एक शोधालेख में विभिन्न प्राचीन उद्धरणों एवं वर्तमान युग के विद्वानों डॉ. मिराशी, डॉ. पी. वी. काणे, आ. बलदेव उपाध्याय, आ. कुप्पुस्वामी शास्त्री आदि के मतों का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए भवभूति एवं उम्बेकाचार्य के ऐक्य पर अपना निर्णय दिया है। उनके अनुसार भवभूति को उम्बेकाचार्य से अभिन्न मानने के अनेक सन्दर्भ प्रमाणस्वरूप प्राप्त होते हैं। तथापि यदि उन्हें पृथक् भी माना जाता है तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भवभूति मीमांसाशास्त्र एवं वैदिक सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान् थे।[3] अपने स्थतिकाल एवं आश्रयदाता के विषय में भवभूति ने कुछ भी नहीं लिखा है। कल्हण एवं वाक्पतिराज आदि कवियों के विवरणों के आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भवभूति का समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।[4] महाकवि भवभूति का साहित्य एवं नाट्यशास्त्रीय वैग्ध्य विलक्षण है। इसके अतिरिक्त उनका वेद, व्याकरण, ज्योतिष, मीमांसा, योग, तन्त्र, कला आदि का वैदुष्य भी अद्भुत है। उनके नाटकों में उनके पाण्डित्य एवं विविध शास्त्रज्ञान के अनेक सन्दर्भ दृष्टिगत होते हैं। वैदिक सिद्धान्तों के प्रति उनकी निष्ठा के अनेक प्रमाण उनके रूपकों में प्राप्त होते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं- 'किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति। संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।'[5] प्रकृत पद्य में अग्निहोत्र की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रकार उत्पत्तिर्देवयजनात्[6], दीक्षिष्यमाणः कौशिकः[7], अयन्तु यजमानेन[8], दृष्टश्च तत्र यजमान, आदि सन्दर्भों में महाकवि ने क्रमशः सीता की यज्ञभूमि से उत्पत्ति, यागदीक्षा, यजमान अर्थात् यागकर्त्ता का उल्लेख करते हुए सम्पूर्ण यज्ञ के स्वरूप के विषय में अपनी अभिज्ञता का प्रतिपादन किया है। भवभूति योग एवं तन्त्र के प्रखर ज्ञाता थे। इस सन्दर्भ में मालतीमाधवम् के पंचम अंक का यह पद्य दर्शनीय है- 'षडधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थितात्मा'[9] यहाँ षोडश नाड़ियों के मध्य स्थित आत्मस्वरूप सदाशिव का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार विभिन्न स्थलों पर उद्धरणों के माध्यम से भवभूति अपने विविध शास्त्रज्ञान का निदर्शन कराते हैं।

भवभूति के रूपकत्रय उनकी विलक्षण नाट्यप्रतिभा के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। किन्तु उत्तररामचरितम् में उनकी काव्यकला अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में अभिव्यक्त हुई है। कथानक की रोचकता, घटनाक्रम का प्रवाह, संवादों की भावप्रवणता तथा भावों का स्निग्ध चित्रण सहृदय को रसानुभूति के चरमोत्कर्ष तक ले जाता है। नाटक में घटनाओं का संयोजन अत्यन्त स्वाभाविक है। सीता के दोहद की अभिलाषा और राम द्वारा उनका निर्वासन, यह दोनों घटनाएँ नैसर्गिक रूप से साथ साथ घटित होती हैं। छाया सीता का अदृश्य रूप में राम की मनोव्यथा एवं उनके पश्चाताप को देखना विलक्षण कल्पना है, यही आगे चलकर दोनों के पुनर्मिलन का हेतु बनती है। सप्तम अंक का 'गर्भनाटक' कवि की नवीन एवं मौलिक कल्पना है जो उन्हें अन्य कवियों से विशिष्ट बना देता है- 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।'

भवभूति अपनी भाषिक चमत्कृति हेतु प्रसिद्ध हैं। जैसा उन्होंने स्वयं भी उल्लेख किया है उनपर वाग्देवी की विशेष कृपा रही है।[10] भाषा एवं भाव का अद्भुत सामंजस्य भवभूति के नाटकों में परिलक्षित होता है। वीर रस प्रधान महावीरचरितम् में जहाँ उनके द्वारा ओजगुणविशिष्ट दीर्घसमासयुक्त भाषा का प्रयोग विशेषतया किया गया है, वहीं दूसरी ओर करुण रस प्रधान उत्तररामचरितम् में प्रसादगुणविशिष्ट भाषा द्वारा मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति में मार्मिकता एवं भावप्रवणता विशेषरूप से द्योतित होती है। चित्रदर्शन प्रसंग में श्रीराम के मनोभावों का वर्णन भावसौन्दर्य की अनुपम निदर्शना है-

'अयं ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो, विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया, परेषामुन्नोयो भवति च भराध्मातहृदयः।।'[11]

'आर्य यह आपका अश्रुसमूह टूटे हुए मुक्तामणियों के हार की भाँति फैलता हुआ, बिखरे हुए कणों वाला होकर पृथ्वी पर लोट रहा है। अतिशय भरे हुए गदगद शब्दयुक्त कण्ठवाला शोकावेग से निरुद्ध शब्द प्रकम्पित अधर और नासापुटों से अनुमेय है।' चित्रदर्शन-प्रसंग में वनवास के दृश्यों के देखते हुए श्रीराम के नेत्रों से बहती अश्रुधारा को देख कर लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन से श्रीराम के करुणार्द्र मन की दशा अभिव्यक्त हो रही है। भावशबलता के गहन अवलोकन की सूक्ष्मदृष्टि तथा वर्णन की अद्भुत क्षमता भवभूति के कवित्व में अद्वितीय रूप से विद्यमान है। उदाहरण के लिये तमसा तट पर शोकाकुल राम के वचनों को बारह वर्षों के वियोग के बाद अचानक सुनकर सीता के विचित्र मनोभावों का वर्णन दर्शनीय है-

'तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद् वियोगेदीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।'[12]

'तुम्हारा हृदय इस समय पुनः प्रिय समागम की आशा से शून्य होने के कारण उदासीन, किन्तु परित्याग से रोषयुक्त, दीर्घ अन्तराल के उपरान्त अप्रत्याशित मिलन से विस्मय के कारण स्तब्ध-सा, प्रसन्न-सा, प्रिय के शोक को देख कर शोकयुक्त एवं प्रेम के कारण आर्द्र-सा है।' यहाँ तमसा के इस कथन में वियोग के द्वादश वर्ष के उपरान्त भगवती सीता के द्वारा अनायास ही श्रीराम को दण्डकारण्य में शोकग्रस्त अवस्था में देखे जाने पर उनके विचित्र, परस्पर विरोधी एवं मिश्रित मनोभावों का जो चित्रण महाकवि भवभूति ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भवभूति रससिद्ध कवि हैं। श्रृंगार, वीर एवं करुण रसों के साथ साथ वीभत्स तथा भयानक रसों की उद्भावना भी उनके नाटकों में यथास्थान परिलक्षित होती है। वह मूलतः करुण रस के कवि हैं। वह करुण रस को प्रधान रस मानते हैं- एको रसः करुण एव।[13] उनके नाटकों में करुण रस अत्यन्त गम्भीर एवं मर्मस्पर्शी स्वरूप में निष्पन्न हुआ है। उन्हें भली प्रकार ज्ञात है कि शोकातिरेक की अवस्था में एकान्त में रोना चित्त को हल्का कर देता है। तृतीय अंक में तमसा का कथन इसी तथ्य को उद्घाटित करता है-

'पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।'[14]

'तालाब में अधिक जल भर जानें पर नालिका द्वारा उसे निकाल देना ही उचित है। उसी प्रकार शोक के आवेग से पूर्ण हृदय भी प्रलाप के द्वारा ही विश्रान्ति पाता है।' इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का भवभूति ने अपने पात्रों के भावशोधन के लिये यथास्थान प्रयोग किया है। इस प्रसंग में छठे अंक में श्रीराम की मनोदशा का वर्णन करने वाला यह पद्य उल्लेखनीय है -

'चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्मायपुरतः प्रवासेऽप्याश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च विकल्पव्युपरमे कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव।।'[15]

'वियोगावस्था में एकान्त में दीर्घकाल तक प्रिया के बारम्बार स्मरण से ऐसी प्रतीति होती है मानों वह स्वयं उपस्थित हो आश्वस्त कर रही है, किन्तु अगले ही क्षण संकल्प की निवृत्ति होते ही यह जगत् जीर्ण अरण्य हो जाता है और तब हृदय मानों भूसे की आग में निरन्तर शनैः शनैः पकता रहता है।' इन पंक्तियों में विप्रलम्भ की दुस्सह वेदना का जैसा चित्रण हुआ है वह केवल भवभूति की लेखनी से ही सम्भव है।

सीता का चरित :

महाकवि भवभूति शब्दचित्र के विलक्षण चित्रकार हैं। पात्रों का चरित्र गढ़ने की उनकी प्रतिभा अद्‌भुत है। संस्कृत साहित्य में कवियों द्वारा सीतारामचरित का अनेक बार अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। सभी ने प्रायः उनके उन्हीं गुणों का वर्णन अपनी रचनाओं में किया जो आदिकवि द्वारा कहे गये हैं। किन्तु भवभूति ने महर्षि वाल्मीकि के लोकविश्रुत, समाराधनीय एवं पुरातन पात्र- प्रभु श्रीराम एवं माता सीता के चरित को नूतन आयामों के साथ प्रदर्शित किया। उन्होंने नवीन अवधारणाओं के साथ सीता और राम के चरित्र का निर्माण किया। यह उनकी अलौकिक प्रतिभा का ही चमत्कार है कि सीता-राम के जिस स्वरूप का उन्होंने अपने नाटकों में प्रदर्शन किया उसका दीर्घकालिक प्रभाव जनमानस पर परिलक्षित हुआ। श्रीराम के चरित का निर्माण करते हुए उनके नायकत्व पर लगने वाले आक्षेपों के निराकरण हेतु वह सतत प्रयत्नशील रहे। इस कारण ही उन्होंने 'महावीरचरितम्' एवं 'उत्तररामचरितम्' दोनों ही नाटकों के कथानकों में अनेक काल्पनिक परिवर्तन किये। उत्तररामचरितम् में महाकवि ने श्रीराम के सीतापरित्याग रूपी कलंक का परिहार करने हेतु अभिनव परिस्थितियों का संयोजन किया। यहाँ उन्होंने राम को लोकाराधन हेतु स्वसौख्य एवं प्रेम की आधार, पावन चरित्र वाली अपनी प्रियतमा पत्नी के परित्याग हेतु विवश एक प्रजावत्सल राजा के रूप में दर्शाया है। यह सम्पूर्ण नाटक राम की हृदयगत पीड़ा की करुणामयी अभिव्यक्ति है।

भवभूति के नाटकों में माता सीता का चरित भी नवीनता के साथ प्रकट हुआ है। महर्षि वाल्मीकि ने सीता को ओजस्विता, तेजस्विता, गम्भीरता एवं आत्मगौरव से परिपूर्ण कान्तिमयी, सशक्त नारी के रूप में चित्रित किया है। उनके व्यक्तित्व में आधुनिक प्रबुद्ध नारी का चरित्र प्रतिबिम्बित हुआ है। वह भारतीय नारी का गौरव और आदर्श हैं। श्रीराम के प्रति उनका प्रेम और समर्पण एकनिष्ठ एवं सनातन है। भवभूति के प्रकृत दोनों नाटकों की नायिका सीता शील, सौन्दर्य, त्याग तितिक्षा, समर्पण एवं कर्त्तव्यपरायणता की मूर्त्ति हैं। वाल्मीकि से तुलना करने पर हमें भवभूति की सीता में तरलता, कोमलता एवं लोकोत्तरता अधिक दिखलाई देती है, जिसका कारण सम्भवतः नाटक का सुखान्त होना है। वीर रस प्रधान होने के कारण महावीरचरितम् में यद्यपि सीता का चरित बहुत अधिक मुखरित नहीं हो पाया है। किन्तु इसमें उनके लावण्य, कान्ति, कोमलता, शील, सदाचरण, तेजस्विता एवं श्रीराम के प्रति उनके लोकोत्तर अनुराग की झलक अवश्य दिखलाई देती है। उत्तररामचरितम् के सम्पूर्ण कथानक की धुरी सीता ही हैं। नाटक के अन्त तक सामाजिक के हृदय में उनके प्रति जिज्ञासा बनी रहती है। प्रत्येक अंक में घटनाएँ सीता के साथ किसी न किसी रूप में सम्बद्ध हैं। यदा कदा ऐसी प्रतीति भी होती है मानों नायिका ने नायक के चरित का अतिक्रमण सा कर लिया है। उत्तररामचरितम् में माता सीता का व्यक्तित्व प्रखरता के साथ मुखरित हुआ है। महाकवि भवभूति के नाटकों में प्रतिबिम्बित भगवती सीता के चरित्र का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

अलौकिकता :

भवभूति ने महर्षि वाल्मीकि के समान ही भगवती सीता के अलौकिक चरित का वर्णन अपने नाटकों में किया है। सीता अयोनिजा हैं, जगत् का पोषण करने वाली पृथिवी उनकी माता हैं, उनका जन्म देवों की

यज्ञभूमि से हुआ है- **'अयि मातर्देवयजन सम्भवे।'**[16] प्रजापति सदृश विदेहराज जनक उनके पालक पिता हैं, वह सूर्यवंश की कुलवधू हैं-

'विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।'[17]

महाकवि भवभूति के नाटकों में सीता मानुषी होती हुई भी लोकोत्तर गुणों से युक्त हैं। उनका जीवन धैर्य, त्याग, पातिव्रत्य और कर्तव्यपरायणता की पराकाष्ठा है। महाकवि उनके इन गुणों पर श्रद्धावनत दिखलाई देते हैं। उत्तररामचरितम् में अनेक स्थलों पर वह विविध पात्रें के माध्यम से देवी सीता की दिव्यता का वर्णन करते हैं।[18]

लोकोत्तर सौन्दर्यशालिनी :

भवभूति यद्यपि गम्भीर प्रकृति के कवि हैं। इस कारण उनकी कविता में शृंगार का वह स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता है जो महाकवि कालिदास आदि के काव्यों में उपलब्ध है। दूसरी ओर अपने नाटकों में वह देवी सीता की जगद्वन्द्या नारीमूर्त्ति के रूप में अभ्यर्थना कर रहे हैं। इस कारण उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वह उनकी गरिमा का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं। सीता अयोनिजा हैं, वह पृथिवी देवी की पुत्री हैं, अत एव उनका सौन्दर्य भी अलौकिक होना स्वाभाविक है। महावीरचरितम् में श्रीराम द्वारा सीताजी के प्रथम दर्शन के समय उन्हें अमृतवर्ति की भाँति नेत्रों को सुख देने वाली कहा गया है- **'तत्किमियममृतवर्तिरिव मे चक्षुराप्याययति।'**[19] उनका लावण्य मधूकपुष्प के समान सुन्दर और सुकोमल है।[20] श्रीराम उनके दोनों ही बाह्य एवं अन्तः सौन्दर्य पर मोहित हैं। उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में राम कहते हैं- 'यह घर में लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिये अमृतवर्त्ति है। इसका स्पर्श चन्दन का रस एवं इसकी बाहें मोतियों की माला की जैसी शोभित हैं। इसमें ऐसा क्या है जो मुझे प्रिय नहीं है'-

'इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिर्नयनयो, रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः, किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।'[21]

महावीरचरितम् के छठे अंक में रावण द्वारा सीताजी के अंगप्रत्यंग का वर्णन करते हुए उन्हें पृथिवी से उत्पन्ना अनुपम निधि कहा गया है।[22]

श्रीराम की एकनिष्ठ और पतिव्रता भार्या :

भगवती सीता का श्रीराम के प्रति एवं श्रीराम का माता सीता के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है। प्रथम दर्शन में ही दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। यहाँ श्रीराम उनके शील, सौन्दर्य एवं अलौकिकता से प्रभावित हो कर कहते हैं- 'उज्ज्वल मूर्त्ति ब्रह्मज्ञानी पिता, यज्ञभूमि से उत्पत्ति यह सब मुझे इस पर स्नेह करने के लिये प्रेरित कर रहे हैं।'

'उत्पत्तिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी नृपः पिता। सुप्रसन्नोज्ज्वला मूर्त्तिरस्यां स्नेहं करोति मे।।'[23]

सीता को देखना उन्हें प्रिय है- **'तत्किमियममृतवर्तिरिव मे चक्षुराप्याययति।'**[24] उनकी भुजाएँ किसी अन्य स्त्री द्वारा सर्वथा अप्रयुक्त हैं- **'स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया।'**[25] सीता के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री की कल्पना भी उन्हें स्वीकार नहीं है। अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा ही उनकी सहधर्मचारिणी है- **'अश्वमेधाय सहधर्मचारिणी मे। .....हिरण्यमयी सीताप्रतिकृतिः।'**[26] इसी प्रकार देवी सीता भी श्रीराम के प्रति एकनिष्ठ प्रेम रखती हैं। श्रीराम के प्रति उनके हृदय में अनन्य भक्ति एवं श्रद्धा है। प्रथम मिलन में ही वह

श्रीराम के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं- **'शरीरनिर्माणसदृशोऽस्यानुभावः।'**[27] अर्थात् इनकी आकृति के समान ही इनका प्रभाव भी है। वह पुनः कहती हैं कि नेत्रों को आनन्द देने वाले इन पर मेरी दृष्टि क्यों ठहर गई है- **'किमिति सज्जतेऽस्मिन्लोचनानन्दे मे दृष्टिः।'**[28] श्रीराम उनके गौरव है। तभी तो उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में जब राम प्रजानुरंजन हेतु सीता के भी परित्याग की प्रतिज्ञा लेते हैं तो वह प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करती हैं- **'अत एव राघवधुरन्धर आर्यपुत्रः।'**[29] वह राम की तनिक भी निन्दा अथवा अपयश नहीं सुन सकतीं। वासन्ती द्वारा सीता परित्याग हेतु राम को उलाहना देने पर उसे रोकती हुई कहती हैं कि वह बहुत कठोर है जो इस अवस्था में राम को रुला रही हैं।[30] उत्तररामचरितम् का सम्पूर्ण तृतीय अंक राम और सीता के परस्पर प्रेम को ही समर्पित है। सीता पतिव्रता नारियों का अभिमान हैं। उनके पातिव्रत्य की प्रशंसा भवभूति अपने दोनों ही नाटकों में करते हैं। महावीरचरितम् के सप्तम् अंक में देवी अरुंधती का कथन है-

'लोपामुद्रानसूयाहमिति तिस्रस्त्वया सह। पतिव्रताश्चतस्रोऽत्र सन्तु जानकि साम्प्रतम्।।'[31]

'अब तक संसार में लोपामुद्रा, अनसूया तथा अरुंधती तीन ही पतिव्रता नारियाँ प्रसिद्ध थी, किन्तु अब सीता सहित चार हो गई हैं।' सीता पतिव्रत धर्म की साक्षात् प्रतिमा हैं, इसके तेज से ही उनकी कीर्ति सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है- 'पतिव्रतामयं ज्योतिः।'[32]

कोमल हृदया

देवी सीता का व्यक्तित्व अत्यन्त सुकोमल है। वह किसी के प्रति भी कठोर व्यवहार नहीं करती हैं। सदैव सावधान रहती हैं कि उनके कारण किसी को कोई कष्ट न हो। दण्डकारण्य में राम के शोक को देख कर व्यथित हो जाती हैं। वियोगावस्था में श्रीराम के विलाप के विषय में जानकर वह कहती हैं कि यह सब उनके ही कारण हुआ- 'अहो! दिनकरकुलानन्दन एवमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्।'[33] विश्वामित्र द्वारा ताडकावध हेतु श्रीराम को आज्ञा दिये जाने पर चिंतित हो जाती हैं।[34]

परम पावन एवं निर्मल चरित्र

देवी सीता का चरित्र परम पावन है। उनके स्मरण मात्र से प्राणी अपने सकल दोषों से मुक्त हो जाता है। जीवनपर्यन्त उन्होंने व्रतमय जीवन व्यतीत किया।[35] श्रीराम का सतत चिन्तन, गुरुजनों की सेवा, दीनजनों पर दयाभाव उनका स्वभाव है। देवी वसुन्धरा भी उन्हें जन्म देकर पवित्र हो गई, वह अग्नि, वशिष्ठ एवं अरुंधती द्वारा प्रशंसित शीलवाली हैं- 'देवि देवयजनसम्भवे! ...स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे! ...पावक वशिष्ठारुंधती प्रशस्त शीलशालिनी।'[36] भवभूति ने उनके पावन चरित्र की उपमा तीर्थजल एवं अग्नि से की है-

'उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः। तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।'[37]

गंगा और पृथिवी भी उनका स्पर्श पाकर स्वयं को पवित्र मानती हैं- 'अवयोरपि यत्संगात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते।'[38] अपने पावन स्वभाव से उन्होंने जनक एवं रघुकुल सहित सम्पूर्ण वसुन्धरा को पवित्र किया है।[39]

विमर्श :

इस प्रकार महाकवि भवभूति द्वारा महावीरचरित तथा उत्तररामचरित दोनों ही नाटकों में माता सीता के परम पावन लोकोपकारक, सुकोमल, जगत्वन्द्य लोकोत्तर चरित की वन्दना की गई है। उन्होंने अपने नाट्य की फलश्रुति के अनुरूप रामायण की कथा और पात्रों के चरित में किंचित् परिवर्तन कर उसे रोचक बनाने का प्रयास किया है। अपनी कल्पना से उन्होंने पात्रों के चरित्र को नवीन आयामों के साथ गढ़ा है। विशेष रूप से राम और सीता के चरित में जिन नूतन आयामों को उन्होंने प्रमुखता से प्रदर्शित किया है वह वाल्मीकि रामायण

में गौण हैं अथवा उनका अभाव है, किन्तु उनका व्यापक प्रभाव बाद के युग में दिखलाई दिया। उदाहरणार्थ उत्तररामचरितम् में श्रीराम के महावीर, दृढ़व्रती, सत्यपराक्रमी, धीर-गम्भीर, मनस्वी एवं संयमी व्यक्तित्व के स्थान पर उन्हें प्रेयसी के वियोग में विकल और विवश साधारण मानव के रूप में प्रदर्शित किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। दूसरी ओर भवभूति के प्रकृत दोनों नाटकों की नायिका सीता शील, सौन्दर्य, त्याग तितिक्षा, समर्पण एवं कर्त्तव्यपरायणता की मूर्त्ति हैं। वाल्मीकि से तुलना करने पर भवभूति की सीता में तरलता, कोमलता एवं लोकोत्तरता अधिक है। उत्तररामचरितम् में माता सीता के चरित को सीमित करते हुए उसे पति द्वारा त्याग दी गई अबला एवं पीड़िता स्त्री का रूप दिया गया है। इसका कारण तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था हो सकती है। भवभूति सीता को अलौकिक गुणों से सम्पन्ना बोलकर उनकी अभ्यर्थना भी करते हैं साथ ही कोमल स्वभाव की आड़ में उन्हें अबला एवं भीरु स्त्री के रूप में चित्रित करते हैं। जबकि महर्षि वाल्मीकि ने सीता के चरित को ओजस्विता, तेजस्विता, गम्भीरता एवं आत्मगौरव से परिपूर्ण कान्तिमयी, सशक्त नारी के रूप में निर्मित किया है। वह राम से तर्क भी करती हैं, उनका विरोध भी करती हैं, उन्हें सहारा भी देती हैं। उनके व्यक्तित्व में हमें प्रगतिशील प्रबुद्ध सशक्त नारी का चरित्र प्रतिबिम्बित होता दिखलाई देता है। वह भारतीय नारी का गौरव और आदर्श हैं। उनका जीवन सैकड़ों वर्षों से मानव मात्र को पीढी दर पीढी सत्य, सदाचार, शील, त्याग, तप, तितिक्षा, प्रेम, संयम की शिक्षा देता आ रहा है।

सन्दर्भ -

1. *भवभूति (2005). महावीरचरितम् (व्या. रामचन्द्रमिश्र). चौखम्भा विद्याभवन : वाराणसी. 1/4*
2. *महावीरचरितम् एवं उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना.*
3. *समाज धर्म एवं दर्शन (भवभूति एवं मीमांसा दर्शन- प्रो. सोमनाथ नेने). वर्ष 11. अंक 4. इलाहाबाद. पृ. 19-30.*
4. *उपाध्याय बलदेव. (1978). संस्कृत साहित्य का इतिहास. शारदा निकेतन : वाराणसी. पृ. 545*
5. *भवभूति (2009).उत्तररामचरितम् (व्या0रमाशंकर त्रिपाठी).चौखम्भा कृष्णदास अकादमी :वाराणसी. 1/8*
6. *महावीरचरितम् 1/21*
7. *महावीरचरितम् 1/7 सूत्रधार का कथन*
8. *महावीरचरितम् 1/15*
9. *भवभूति (2002).मालतीमाधवम् (व्या. गंगासागर राय). चौखम्भा विद्याभवन : वाराणसी. 5/1*
10. *'वश्यवाचः कविः' महावीरचरितम् एवं उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना*
11. *उत्तररामचरितम् 1/29*
12. *उत्तररामचरितम् 3/13*
13. *उत्तररामचरितम् 3/47*
14. *उत्तररामचरितम् 3/29*
15. *उत्तररामचरितम् 6/38*
16. *उत्तररामचरितम् 4/3*
17. *उत्तररामचरितम् 1/9*
18. *उत्तररामचरितम् 1/9, 1/21, 1/42 के अनन्तर श्रीराम का कथन, 4/11 आदि.*

19. महावीरचरितम् 1/29, के पूर्व श्रीराम का कथन.
20. महावीरचरितम् 2/21,
21. उत्तररामचरितम् 1/38
22. महावीरचरितम् 6/9
23. महावीरचरितम् 1/21
24. महावीरचरितम् 1/29, के पूर्व श्रीराम का कथन.
25. उत्तररामचरितम् 1/37
26. उत्तररामचरितम् पृ. 284
27. महावीरचरितम् पृ. 25
28. महावीरचरितम् पृ. 28
29. उत्तररामचरितम् 1/12
30. उत्तररामचरितम् पृ. 244
31. महावीरचरितम् 7/36
32. महावीरचरितम् 7/4
33. उत्तररामचरितम् पृ. 68
34. महावीरचरितम् पृ. 35-36
35. उत्तररामचरितम् 7/18
36. उत्तररामचरितम् पृ. 100
37. उत्तररामचरितम् 1/13
38. उत्तररामचरितम् 7/8
39. उत्तररामचरितम् 1/51

17

आधुनिक स्त्री विमर्श के आलोक में भवभूति की सीता

अरविन्द कुमार

भारतीय साहित्य विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और विमर्शों का देश है। यहाँ पर विभिन्न भाषाओं के साहित्य की अपनी एक पहचान है। कोई भी साहित्य अपनी साहित्यिक अस्मिता के लिए जानी जाती है और उनमें पौराणिक कथाएँ भी प्रचलित होती हैं। पौराणिक कथाएं और विमर्श दोनों की चर्चा हमेशा से होती रही है। आधुनिक स्त्री विमर्श वर्तमान समय पर चरम सीमा पर है। किसी भी साहित्यिक विमर्श में स्त्री विमर्श की चर्चा प्रमुख हो गयी है। पौराणिक कथाओं और नवसाहित्यिक विमर्श के लिए संस्कृत समृद्ध साहित्य है। भवभूति कवि संस्कृत के मूर्धन्य कवि माने जाते है। महाकवि भवभूति एक सफल और एक प्रासंगिक नाटककार हैं। उन्होंने अपने साहित्य में एक ऐसे नायक-नायिका का चयन किया है जो भारतीय संस्कृति की आत्मा कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस शोध पत्र में आधुनिक स्त्री विमर्श के आलोक में भवभूति की सीता का मूल्यांकन किया गया है। आधुनिक स्त्री विमर्श के अन्तर्गत स्त्री जीवन की यथार्थ अनुभूति की अभिव्यक्ति का चिन्तन करते हैं। जिसमें पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की हैसियत, अस्मिता, अस्तित्व और अधिकार का अध्ययन करते हैं। आधुनिक स्त्री विमर्श वस्तुतः स्त्री को मानव के रूप में देखने की अपेक्षा करता है। यहाँ न लिंग भेद के लिए स्थान है और न वर्चस्व के लिए। स्वतंत्रता, समानता, आत्मनिर्भरता, वर्चस्व और वर्ण-व्यवस्था के बंधनों से मुक्ति ही स्त्री-विमर्श के आधार स्तम्भ कहे जा सकते हैं। यदि देखा जाय तो स्त्री विमर्श एक व्यापक संकल्पना है, जो विशेषकर स्त्रीवाद के एक अंग के रूप में उभर कर आई है। साहित्य और विमर्श का आन्तरिक सम्बन्ध है। आधुनिक काल में सभी भाषाओं के साहित्य में स्त्री विमर्श सवाल खड़ा करती है, जो भारतीय साहित्य में परम्परागत चली आ रही सामाजिक व्यवस्था एवं पौराणिक कथाओं का पालन करती है, उसको आधुनिक काल का स्त्री विमर्श नकारता है।

महाकवि भवभूति का साहित्य कालिदास के साहित्य के समतुल्य माना जाता है। महाकवि भवभूति पौराणिक कथाओं में कुछ मूलभूत परिवर्तन करके भारतीय साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की है। भवभूति द्वारा रचित तीन रूपक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं, जिसमें पौराणिक कथा और संस्कृति परम्परा का पालन किया गया है। मालतीमाधव, महावीरचरितम्, उत्तररामचरितम् प्रमुख रूप से साहित्य की कथा को समृद्ध किया है। भवभूति ने अपने नाटकों में सीता को भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाया है तथा भवभूति के साहित्य की नायिका भी सीता ही हैं। सीता अपने समय और समाज के साथ चलती है। महाकवि भवभूति ने

सीता को आदिशक्ति के साथ-साथ मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम की पत्नी के रूप में दिखाया है। यहाँ सीता भारतीय समाज के सम्पूर्ण स्त्रियों की करुणा की पात्र हैं। जितना कष्ट, संघर्ष और अपमान सीता सहती हैं, शायद आधुनिक काल की स्त्रियों के बस की बात नहीं है। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी कहते हैं कि ''भवभूति के उत्तररामचरित से उस समय की सामाजिक आस्था का पर्याप्त विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। उत्तररामचरितम् में जिस समाज और संस्कृति का वर्णन है, वह प्रायः रामायण कालीन संस्कृति है।''[1] भवभूति के नाट्य साहित्य में सीता पृथ्वी की पुत्री और राजा जनक की कन्या तथा श्री राम की अर्धांगिनी हैं। सीता का शील-सदाचार विश्व साहित्य में अनूठा है। सीता करुणा की साक्षात प्रतिमूर्ति है। सीता जी श्री रामचन्द्र के साथ अपने आपको सुखानुभूति का अनुभव कराती है। इसीलिए सीता राम में कोई दोष नहीं देखती हैं बल्कि राम में गुण सहित अनुभूति करती हैं। महाकवि भवभूति कहते हैं कि-

''सस्वेदरोमाञ्चितकाम्पताङ्गी, जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नावाम्भः परिधूतसिक्ता, कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव।।''[2]

महाकवि भवभूति के नाटक में सीता एक मुग्धा नायिका हैं। वे भारत की ही नहीं विश्व की एक आदर्श स्त्री हैं। उत्तररामचरितम् नाटक में सीता का निर्वासन दिखाया गया है और यह प्रसंग भारतीय समाज के लिए बहुत मार्मिक स्थिति में दिखाया गया है। इस निर्वासन से सीता दुःखी तो है, पर विरोध करने की स्थिति में नहीं है और खुलकर विरोध भी नहीं करती है। हम यह कह सकते हैं कि स्त्री समाज ने हजारों वर्षों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक समाज का विरोध नहीं किया, शायद सीता इसी मर्यादा का पालन करती है और मर्यादित समाज का निर्माण करती हैं। जबकि आधुनिक स्त्री विमर्श पितृसत्तात्मक समाज का खुले तौर पर विरोध करती है। महाकवि भवभूति के काव्य नाटक उत्तररामचरितम् में वाल्मीकि रामायण का उत्तरार्द्ध भाग दिखाया गया है। इस नाटक में राम के वन जाने के पश्चात् राजगद्दी पाने से लेकर सीता के वन जाने तक और सीता तथा राम मिलन तक की कथा का वर्णन किया गया है। यह कथा भारतीय समाज में व्याप्त है। लोक जीवन में समाज के व्यक्ति उसे जीते भी हैं, पर आधुनिक स्त्री विमर्श इस कथा को भी आधुनिकता के कसौटी पर देखता है। आज का स्त्री विमर्श वैज्ञानिक सिद्धान्त और तार्किक सिद्धान्त का पालन करती है।

महाकवि भवभूति ने पूरे साहित्यिक नाटक में राम को मर्यादा पुरुषोत्तम और धीरोदात्त नायक तथा सीता को स्वकीया नायिका के रूप में स्थापित किया है। संस्कृत साहित्य में राम को एक आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श रक्षक के रूप में दिखाया गया है, तो दूसरी ओर सीता को एक आदर्श पत्नी, आदर्श पुत्री, आदर्श बहु के रूप में चित्रित किया गया है। सीता के जीवन संघर्ष से भारतवर्ष के सम्पूर्ण स्त्री समाज को प्रेरणा जरूर मिलती है कि वह एक आदर्श परिवार की स्थापना कर सके। डॉ. शीला रजवार कहती हैं कि ''जब तक नारी केवल नारी है। व्यक्ति नहीं, तब तक वह पुरुष की दासता के लिए अभिशप्त है।''[3] आज सम्पूर्ण साहित्य में स्त्री विमर्श की चर्चा जोरों पर हो रही है। आज की स्त्रियाँ घर, परिवार और समाज से अपने आपको प्रताड़ित होती हुई दिखाती हैं। लेकिन महाकवि भवभूति की सीता से किसी से कोई शिकायत नहीं है। चाहे वह समाज हो या परिवार अपने आपको सभी स्थानों पर उसके अनुकूल जीवन यापन करती है। वे संघर्ष करती है, सीता का राम के प्रति प्रेम, स्नेह उतना ही है जितना निर्वासन के पहले था। भवभूति अपने साहित्य में राम का प्रेम सीता के प्रति कहीं कम दिखाई नहीं देता। सीता का त्याग करने के बाद राम उन-उन स्थानों पर जाते हैं जहां सीता के साथ समय बिताया था और उन स्थानों को देखकर द्रवित हो जाते हैं, सीता का आभासी दृश्य का अनुभव करके राम बहुत दुःखी होते हैं। ''साहित्य को समाज के नैतिक सत्य की चिंता। लेकिन जहाँ समाज में

सही दिशाओं के चिंतन के बदले परिणामों की त्वरता हावी होने लगती है, वहां साहित्य और समाज दोनों के रिश्ते की क्षमता क्षीण होती है। फिर भी साहित्य समाज की दूरगामी विपत्तियों का न केवल प्रतिरोधक बल है, बल्कि रक्षक तत्व भी है। यही कारण है कि इतनी कशमकश के बाद यह रिश्ता रहता आया है। चाहे समाज उन तत्वों से लबालब भरा हो, जो साहित्य विरोधी है।''[4] महाकवि भवभूति के नाटक उत्तररामचरित के प्रथम अंक में राम सीता से कहते हैं कि -

''विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा, प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणे, विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।।''[5]

अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम सीता से संवाद करते हुए कहते हैं कि सीता आपके स्पर्श करने से विकार मेरे चैतन्य को विक्षुब्ध और उल्लासित करता है। यह सुख है या दुःख, प्रमोद है या निद्रा है। विष का प्रसार है या मद है, मैं यह निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ। यहाँ सीता का आकर्षण राम को मोहित करता है, ये गुण आधुनिक स्त्री में भी विद्यमान है। यहाँ भवभूति की सीता बहुत धीर और गम्भीर नायिका के रूप में परिलक्षित होती है। सीता अपने पति परमेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम का अपमान किसी भी हालत में सहती नहीं है। सीता अपने सहेलियों और प्रजा के बीच में राम को सदैव उत्तम ही रखती हैं, सीता पतिव्रता है। राम में कोई दोष नहीं देखती है, सीता कहती है कि-

''हा दैव! एष मया विनाऽहमप्येतेन विनेति, स्वप्नेऽपि केन सम्भावितमासीत।
तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादिव लब्धदर्शनं, वाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद् वत्सलमार्यपुत्रम्।''[6]

अर्थात् इस श्लोक में महाकवि भवभूति सीता से कहलवाते है कि यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मैं राम के बिना रह सकूँ। या मैं जब कभी श्री राम को अकेले में देखता हूँ, तो वे बहुत दुःखी और दमनीय स्थिति में रहते हैं। इससे यह साबित होता है कि राम के बिना सीता नहीं रह सकती हैं और राम भी सीता के बिना नहीं रह सकते हैं। यहाँ पर कवि ने नायक और नायिका को एक दूसरे पर समर्पित दिखाया है। किसी में कोई दोष नहीं है, जबकि आधुनिक स्त्री विमर्श एक दूसरे के दोष को बर्दाश्त नहीं करती है। आधुनिक काल की स्त्री सीता से अलग सोच रखती हैं। भवभूति की सदैव राम के प्रेम में लीन रहनेवाली सीता है। इसका उदाहरण उत्तररामचरितम् में वर्णित किया गया है। सीता उत्तररामचरितम् नाटक की नायिका है, उनका चरित्र सर्वगुण सम्पन्न है, सीता राम से शिकायत नहीं करती है बल्कि राम को नाथ के रूप में स्थापित करती है। उनके लिए राम पति परमेश्वर है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम है। सभी दुःखों का निवारण करने वाले राम हैं।

राम लोकलाज का निर्वाहन करते हुए सीता को निर्वासित करते हैं। लेकिन सीता के मन में राम के प्रति मलीनता कभी नहीं आती है। सीता राम को देखकर अपने सम्पूर्ण दुःख को विस्मृत कर जाती है। यथा-

''भवतु। अस्मै कोपयिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा, आत्मनः प्रभविष्यामि।''[7]

महाकवि भवभूति ने अपने साहित्य में दिखाया है कि सीता अपनी वाणी से सभी जीव जगत्, प्रजा, पेड़ पौधे और मानव जीवन को सुखानुभूति की अनुभव कराती है। सीता के संदर्भ में राम कहते हैं कि-

''म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि, सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहक्षि, कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।''[8]

भवभूति की सीता प्रेम की प्रतिमूर्ति है। उनके चरित्र में करुणा रस की प्रधानता स्थापित है। सीता सम्पूर्ण नाटक में प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित हुई है। इसी कारण संस्कृत नाट्य साहित्य में राम और सीता का नायकत्व सम्पूर्णता के लिए स्मरणीय है। देशवासियों और लोकजीवन के लिए सीता और राम की कथा

प्रेरणादायी है। भवभूति का साहित्य सीता की अदृश्य स्थिति का अनुभव राम को कराता है। राम जब सीता से अलग होते हैं फिर उन स्थानों का विचरण करते है, जहां सीता के साथ कभी पल बिताया था। उस स्थान पर सीता के अदृश्य उपस्थिति का अनुभव करते हैं। भवभूति की सीता संघर्षशील, धैर्यवान और अपने कठिन समय में हिम्मत न हारने वाली नायिका है। सीता का संघर्षशील और बुद्धिमत्ता तब देखी जाती है जब लक्ष्मण द्वारा सीता को गर्भावस्था की स्थिति में जंगल में छोड़ा जाता है और कालान्तर में दो बच्चों लव-कुश का अपने साथ पालन-पोषण करती है। एक समय ऐसा भी आता है, जब लव-कुश को राम देखकर विस्मृत और चिंतित होने लगते है। उस समय राम को उन दोनों बच्चों में अपनापन तथा सीता को अपने निकट सादृश्य अवलोकन करते हैं। बच्चों में संस्कार देने वाली सीता का अनुभव सभी लोग करते हैं। अन्ततः सीता लोक मर्यादा को ध्यान में रखते हुए धरती में समा जाती है। जबकि महाकवि भवभूति इसी रामायण कथा को संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियमों को ध्यान में रखते हुए सुखान्त में परिणित किया। इसको कवि भवभूति का साहित्य कला कही जा सकती है। भवभूति ने समय और समाज को ध्यान में रखते हुए साहित्य में नवीनता लाने की भरपूर कोशिश की है। आधुनिक स्त्री विमर्श को देखते हुए भवभूति की कथासाहित्य कुछ सीमा तक प्रासंगिक कही जा सकती है।

हमारे भारतीय धर्म ग्रन्थों में सभी को अधिकारहीन तथा अपमानित करने की धारणा जो रही है, उसको आज का आधुनिक स्त्री विमर्श उसे तोड़ने तथा नकारने का काम किया है और वे पितृसत्ता की गुलामी को भी नकारने की साहस दिखाती है। भवभूति अपने संस्कृत साहित्य में समन्वयवादी दृष्टिकोण सीता के द्वारा स्थापित किया है। जिससे आज भारतीय समाज में भवभूति द्वारा स्थापित सीता का चरित्र कहीं भी धूमिल नहीं होता है। कवि ने सीता को पूज्यनीय बनाया है। यह कवि की महानता कही जा सकती है कि कवि किसी के चरित्र को समाज में ऊपर उठा सकता है और मलीन भी कर सकता है। यही कारण है कि भवभूति की सीता का लोकधर्मी कर्म समाज और परिवार में अतुलनीय है तथा वर्तमान में समाज को नवीन दृष्टिकोण प्रदान करती है।

सन्दर्भ -

1. *उत्तररामचरितम् : महाकवि भवभूति, प्रणेता पद्मश्री डॉ. कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक रामनारायण लाल, विजय कुमार एवं विक्रेता इलाहाबाद, 2011, पृ.62*
2. *वही, पृ.244*
3. *स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ : डॉ. शीला रजवार, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, पृ.74*
4. *भाषा साहित्य और संस्कृति : डॉ. अमर सिंह वधान, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ.116*
5. *उत्तररामचरितम् : महाकवि भवभूति, प्रणेता पद्मश्री डॉ. कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक रामनारायण लाल, विजय कुमार एवं विक्रेता इलाहाबाद, 2011, पृ.67*
6. *उत्तररामचरितम् : डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, पृ.181*
7. *उत्तररामचरितम् : डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, पृ. 116*
8. *उत्तररामचरितम् : महाकवि भवभूति, प्रणेता पद्मश्री डॉ. कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक रामनारायण लाल, विजय कुमार एवं विक्रेता इलाहाबाद, 2011, पृ.69*

18

महावीरचरितम् का नाट्यशिल्प-विमर्श

शशिकुमार सिंह

संस्कृत-साहित्य की सुप्रसिद्ध नाट्यरचना महावीरचरितम् महाकवि भवभूति की अप्रतिम रचनाशीलता का रोचक उदाहरण है। सीतापति मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के जीवनवृत्त को रेखांकित करने वाली यह कृति श्रीरामचन्द्र के महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में आगमन से लेकर लंका विजय के पश्चात् अयोध्या में उनके राज्याभिषेक तक की कथा को समाहित करती है। अन्य रसों की सुमधुर रसान्विति के साथ-साथ वीररस की मुख्य रूप से अनुभूति कराने वाला यह नाटक संस्कृत नाट्य-साहित्य के स्वनामधन्य काव्य-सर्जक कविवर भवभूति की आद्या रचना के रूप में ख्यात है। यद्यपि महावीरचरितम् नाटक महर्षि वाल्मीकिकृत आदि महाकाव्य रामायण से प्रेरित है परन्तु नाट्यकला के नदीष्ण विद्वान् महाकवि भवभूति की नवनवोन्वेषी काव्य प्रतिभा के परिणामस्वरूप महावीरचरितम् में प्रयुक्त अभिनव उद्भावनाएं रामायण में वर्णित राम के चारित्रिक गुणादर्शों को समधिक व्यवस्थित एवं तार्किक रुप में प्रस्तुत करती हैं।

महावीरचरितम् के आरम्भ में ही कवि भवभूति कहते हैं कि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में जो रघुपति का पावन चरित्र अभिवर्णित किया है उस पर हमारी वाणी भी अनुरक्त होकर महावीरचरित के रुप में प्रकट हुई है; विद्वज्जन प्रसन्न हृदय से इसका आस्वादन करें।

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां
यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाचस्
ततसुप्रसन्न मनसः कृतिनो भजन्ताम्।।[1]

रामायण में वर्णित कथानक के महाकाव्य-रूप का नवीन कल्पनाओं के साथ महावीरचरितम् में नाटकीय रूपान्तरण श्री रामचन्द्र के जीवन को अत्यधिक सुरुचिपूर्ण और आह्लादकारी बना देता है। कहा भी गया है- ''काव्येषु नाटकंरम्यम्'' अर्थात् काव्यकला की समस्त विधाओं में नाट्यकला की विधा सर्वाधिक रमणीय होती है। जिसमें मात्र श्रवण द्वारा ही भावों का अधिग्रहण नहीं होता है अपितु आंगिक, वाचिक, आहार्य सात्विक अभिनयों एवं नृत्य, गीत, ताल, लास्य, ताण्डव आदि कलाओं का सुन्दर समन्वय होता है और वह आबाल-वृद्ध सामाजिकों को आनन्द सरणि में निमज्जित कर देता है।

नाट्य शास्त्र में नाटक को नाना प्रकार के भावों से सम्पन्न नाना प्रकार की अवस्थाओं और लोक व्यवहारों का अनुकरण करने वाला बताया गया है -

नाना भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।[2]

आचार्य भरतमुनि ने नाट्य को समस्त विधाओं का आश्रयस्थल कहा है।[3]

नाटक संस्कृत-नाट्य का प्रमुख प्रकार है। यह एक सामाजिक कला के रूप में अनुभव किया जाता है। नाटककार स्वानुभूत सामाजिक जीवन के आधार पर विविध रंगों, अभिनय-संकेतों तथा कथोपकथनों का प्रयोग करके नाटक की सृष्टि करता है, जिसकी सफलता रंगमंच पर चरितार्थ होती है।

नाटक की सफलता के लिए आवश्यक होता है नाटक में प्रयुक्त श्रेष्ठ एवं सुव्यवस्थित नाट्यशिल्प विधान जो सदा ही कवियों के लिए श्रम साध्य कर्म रहा है। प्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्त ने अपनी ख्यात नाट्यकृति मुद्राराक्षस में नाटक के संविधानक का उल्लेख करते हुए कहा है-

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्
बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदकश्च।
कुर्वन् बुद्ध्याविमर्शं प्रसृतमपि पुनः संहरन् कार्यजातं
कर्ता वा नाटकानामिदमनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।।[4]

अर्थात् मन्त्री राक्षस कहता है कि हम राजनीतिज्ञों के सामने नाटककार भी अपनी रचना प्रक्रिया में अनेक प्रकार के कष्ट उठाता है। यथा- प्रारम्भ में स्वल्प कार्योपक्षेप करता है तत्पश्चात् उसके विस्तार की इच्छा से बीज और गर्भ में गहन फलों को रहस्योद्भेदन कर पुनः बुद्धिपूर्वक सभी का विमर्श एवं विश्लेषण कर समस्त कार्य व्यापार का फल प्राप्ति की इच्छा से उपसंहार करता है। ये सभी कार्य अत्यन्त कष्टसाध्य होते है।

नाट्य शिल्प के विधान में आवश्यक प्रमुख तत्त्व हैं- पूर्वरंग, कथा, कथा योजना, पात्र एवं रस। प्रस्तुत शोध पत्र में महावीरचरितम् नाटक के नाट्य शिल्प विधान का विमर्श इन्हीं प्रमुख तत्त्वों को दृष्टिगत रखते हुए किया जाएगा।

पूर्वारंगविधान - सामाजिकों एवं नटों के अन्योन्य अनुरंजनस्थल को रंग कहते हैं। सामाजिकों के अनुरंजन के लिए नाट्य प्रयोग के पूर्व में प्रयोज्य क्रियाएं पूर्वरंग कहलाती हैं।[5]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रंग अथवा नाट्यमण्डप के विघ्नों की शान्ति के लिए नटों द्वारा किए जाने वाले मांगल्यादि क्रिया व्यापार पूर्वरंग कहलाते हैं-

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते।।[6]

द्वाविंशदंगात्मक पूर्वरंग में नाट्यकारों के द्वारा नान्दी एवं स्थापक प्रमुख रूप से प्रयोग किए जाते हैं।

नान्दी - नाट्य के आरम्भ में देवता द्विज अथवा राजा आदि के लिए नटों के द्वारा कहा जाने वाला आशीर्वचन नान्दी कहलाता है।

आशीर्वचन संयुक्ता नित्यं यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।[7]

महावीरचरितम् में देवता विषयक आशीर्वचन का प्रयोग करते हुए ज्ञानस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार किया गया है-

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने।
त्यक्तकर्मविभागाय चैतन्यज्योतिषे-नमः।।[8]

स्थापकः- विघ्नशान्ति के लिए ईष्ट स्तवन रूप नान्दी के पश्चात् नट मंच से प्रस्थान कर जाता है। तत्पश्चात् जो नट मंच पर प्रवेश करता है उसे स्थापक कहा है।

नान्दी प्रयुज्य निष्क्रामेत्सूत्रधारः सहानुगः।
स्थापकः प्रविशेत्पश्चात् सूत्रधार गुणाकृति।[9]

सूत्रधार नटी अथवा पारिपार्श्विक से संवाद के माध्यम से कथावस्तु के बीज अथवा पात्र आदि की सूचना संस्कृत भाषा सम्पन्न वाग्व्यवहारवाली भारतीवृत्ति के द्वारा देने वाला पात्र स्थापक कहलाता है। भार ही वृत्ति के चार अंग बताए गए हैं- 1. प्ररोचना 2. वीथी 3. प्रहसन 4. आमुख। संस्कृत नाटकों में आमुख का प्रयोग समधिक रूप में किया जाता है। इसे प्रस्तावना भी कहते हैं। नाट्यशास्त्र में प्रस्तावना या आमुख के पांच प्रकार बतलाए गए हैं 1. उद्घातक 2. कथोद्धात 3. प्रयोगातिशय, 4. प्रवर्तक 5. अवलगित।[10] महावीरचरित में प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना का प्रयोग हुआ है। प्रयोगातिशय प्रस्तावना का लक्षण करते हुए दशरूपककार धनञ्जय कहते हैं-

एषोडयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगतः।
पात्रप्रवेशो यत्रैव प्रयोगातिशयो मतः।।[11]

अर्थात् सूत्रधार के वाक्य प्रयोग से जब किसी पात्र विशेष के मंच पर पहुँचने की सूचना दी जाती है और वह पात्र मंच पर प्रवेश करता है तो वहाँ प्रयोगातिशय नामक आमुख या प्रस्तावना होती है। यहाँ सूत्रधार द्वारा यह कहकर मंच से प्रस्थान कर जाने पर कि यज्ञ में व्यस्त होने के कारण स्वयं राजा जनक ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ में उपस्थित नहीं होने पा रहे हैं। राजा जनक के प्रतिनिधि के रूप में उनके अनुज कुशध्वज जनकपुत्रियों सीता एवं उर्मिला सहित विश्वामित्र के यज्ञ में पधार रहे हैं। स्थापक या सूत्रधार के प्रस्थान के ठीक पश्चात् सीता-उर्मिला सहित राजा कुशध्वज मंच पर प्रस्तुत होते हैं और कहते हैं-

आयुष्मत्यौ सीतोर्मिले। अद्य-भगवान् विश्वामित्रः
कौशिकः श्रद्धानेन चेतसा वंत्साभ्यां प्रणन्तयः।।[12]

अर्थात् आयुष्मती सीता और उर्मिला तुम लोग श्रद्धाभाव से युक्त होकर ऋषि विश्वामित्र को प्रणाम करो।

कथावस्तु - कथावस्तु नाटक के महत्त्वपूर्ण घटकों में से एक है। दशरूपककार धनञ्जय कहते हैं **''वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः।।**[13] अर्थात् वस्तु, नेता एवं रस दशविधि रूपकों के भेदक तत्त्व होते हैं। वस्तु से आशय रूपक के सम्पूर्ण इतिवृत्त से है। नेता रूपक के नायकादि पात्रों का संसूचक होता है जबकि रस रूपक में विद्यमान आनन्द तत्त्व का परिचायक होता है।

''वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुखयमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः''।[14] के माध्यम से दशरूपककार ने नाटक की वस्तु अथवा इतिवृत्त के दो भेद बतलाए हैं आधिकारिक (मुख्य कथावस्तु) तथा प्रासंगिक (गौड़ कथावस्तु) । नाटक के फल के अधिकारी (स्वामी) को फल प्राप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण इतिवृत्त को प्रस्तुत करने वाली वस्तु आधिकारिक कथावस्तु तथा फल प्राप्ति के अधिकारी (स्वामी) की प्रसंगानुसार सहायता करने वाली वस्तु प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है। प्रासंगिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है - पताका एवं प्रकरी। **'सानुबन्धां पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेश भारक'**[14] अनुबन्ध सहित अर्थात् आधिकारिक कथावस्तु के साथ दूर तक अनुगमन करने वाली वस्तु पताका तथा एक प्रदेश मात्र तक सीमित रहने वाली वस्तु प्रकरी कहलाती है। इस प्रकार आधिकारिक, पताका,

प्रकरी नामक तीन प्रकार की कथावस्तुयें प्रख्यात, कविकल्पित एवं मिश्र भेद से तीन-तीन प्रकार की होकर पुनः नायक के दिव्य , अदिव्य एवं दिव्यादिव्य भेद के आधार पर विभक्त होकर कुल 27 प्रकार की हो जाती हैं।

महावीरचरितम् नाटक की कथावस्तु आदिकाव्य रामायण पर केन्द्रित होने के कारण प्रख्यात कथावस्तु है तथा दिव्य नारायण के मानव के रूप में साक्षात् अवतारस्वरूप श्रीरामचन्द्र के नाटक का नायक होने के कारण यह दिव्यादिव्य प्रख्यात कथावस्तु है। महावीर चरितम् की आधिकारिक कथावस्तु के रूप में श्री रामचन्द्र का सम्पूर्ण जीवन वृत्त है जो यज्ञीय कार्य के निमित्त राम एवं लक्ष्मण के आचार्य विश्वामित्र के आश्रम में आगमन से लेकर दण्डकारण्य के भयानक राक्षसों का वध करते हुए देवी सीता का हरण करने वाले राक्षसराज रावण का वध कर पुनः भगवती सीता को प्राप्त कर पुष्पक विमान से अयोध्या पहुँचकर अयोध्या के राज सिंहासन को श्रीराम के द्वारा समलंकृत करना समाहित है। सुग्रीव, विभीषण एवं शबरी की भूमिकाओं से संबंधित वर्णन पताका के रूप में तथा परशुराम, जटायु, बालि आदि का विवेचन प्रकरी नामक कथावस्तु के रूप में वर्णित है।

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से नाटक की वस्तु दो प्रकार की बतायी गई है - दृश्य तथा सूच्य। मंच पर पात्रों के द्वारा अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत की जाने वाली वस्तु दृश्य तथा कथा का जो भाग केवल सूचना से ही अपने अर्थ को देने में समर्थ होता है उसे सूच्य कथावस्तु कहते हैं। दशरूपककार धनञ्जय के अनुसार जो वस्तुयें नीरस होती हैं उन्हें मंच पर प्रदर्शित नहीं किया जाना चाहिए।

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तारः।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभाव निरन्तरः।।[16]

सूच्यवस्तु को अर्थोपक्षेपक भी कहा जाता है। अर्थोपक्षेपक के पाँच प्रकार होते हैं 1. विष्कम्भक 2. प्रवेशक 3. चूलिका 4. अंकमुख तथा 5. अंकावतार। महावीरचरितनाटक में भवभूति ने सूच्य वस्तु का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उनका यह प्रयोग नाट्य कला को नवीन एवं रोचक रूप में प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास प्रतीत होता है। कुल सात अंकों के नाटक महावीर चरित में भवभूति ने पाँच स्थानों पर विष्कम्भक नामक अर्थोपक्षेपक प्रयोग किया गया है - नाटक के द्वितीय अंक के अन्त में अंक मुख या अकास्य नामक अर्थोपक्षेपक प्रयुक्त हुआ है तथा नाटक में अनेकत्र चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक भी प्रयुक्त है। विष्कम्भक का लक्षण करते हुए दशरूपककार कहते हैं-

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपर्थस्तु विषकम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।[17]

अर्थात् मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा भूत और भविष्य के कथांशों की संक्षेप में सूचना देने वाला अर्थोपक्षेपक विष्कम्भक कहलाता है। यह शुद्ध एवं संकीर्ण (मिश्र) नाम से दो प्रकार का होता है। एक या अनेक मध्यम पात्रों द्वारा अभिनीत विष्कम्भक शुद्ध तथा अधम एवं मध्यम पात्रों द्वारा अभिनीत विष्कम्भक संकीर्ण अथवा मिश्र कहलाता है। **''एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः''।।**[18]

विष्कम्भकों का प्रयोग सर्वदा अंकों के आरम्भ में होता हे। द्वितीय अंक के आरम्भ में प्रयुक्त विष्कम्भक मिश्र विष्कम्भक है। इसमें रावण के सचिव एवं उसके मातामह माल्यवान् (मध्यम पात्र) तथा रावण की बहन शूर्पणखा (अधमपात्र) के मध्य वार्तालाप के माध्यम से श्रीराम द्वारा शिवधनुर्भंग की सूचना देते हुए राम के पराक्रमी स्वरूप के प्रति चिन्ता व्यक्त की जाती है। राम के पराभव के लिए परम पराक्रमी माहेश्वर शिष्य परशुराम के मन में राम के प्रति आक्रोश को भड़काने की योजना का निर्माण किया जाता है।

यदि पद्येत धनुः प्रमाथौ शिष्यस्य शम्भार्ने तिहिक्षते सः।।[19]

और यह भी कल्पित कर लिया जाता है कि राम और परशुराम में युद्ध होने पर युद्ध में राम और परशुराम दोनों ही मारे जाते हैं तो यह राक्षस कुल के लिए नितान्त शुभ एवं मंगलकारी होगा।

आयोधने चेदुभयो निघातः संरम्भयोगादति हि प्रियं नः।।[20]

द्वितीय विषकम्भक चतुर्थ अंक के आरम्भ में प्रयुक्त हुआ है यह भी मिश्र विष्कम्भक है। यहाँ पर भी रावण के सचिव माल्यवान् (मध्यम पात्र) और रावण की भगिनी शूर्पणखा (अधम पात्र) के मध्य राक्षस कुल की भावी रणनीति पर विचार विमर्श किया जाता है, भूत और भविष्य की चर्चाएँ की जाती हैं। माल्यवान एवं शूर्पणखा के द्वारा एक षडयन्त्र पर विचार किया जाता है कि कैसे ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि राक्षस के हन्ता राम को राक्षस बहुल दण्डकारण्य में वनवासी के रुप में जीवन व्यतीत करने की स्थिति निर्मित की जाय ताकि राम से उसका प्रतिकार लिया जा सके। इस हेतु राम से मिलने मिथिला जा रही मन्थरा के शरीर में माया के प्रयोग से शूर्पणखा के परकाया प्रवेश करने की योजना बनायी जाती है जिस कारण से स्वयं की अभीष्तित मंशा को मन्थरा के मुख से कैकेयी के द्वारा मांगे गए दो वरदान के रूप में कहलाया जा सके कि कैकेयी पुत्र भरत को अयोध्या का राजा बनाया जाय तथा राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दे दिया जाय। राम के वनवास में आने पर राक्षस कुल द्वारा समवेत रूप से योजनाबद्ध होकर राम का विनाश किया जा सके।

माल्यवान्- या सा राज्ञा दशरथेन प्राकूप्रतिश्रुत वरद्वया राज्ञी भरत माता कैकेयी तथा मन्थरा नाम परिचारिका दशरथस्य वार्ताहारिणी मिथिलामयोध्यातः प्रेषिता-मिथिलोपकण्ठे वर्तते इति सम्प्रत्येव मम निवेदितं चारैः। तस्यास्त्वया शरीरमाविश्यैवमेवं च कर्तव्यम्।[21]

इसी प्रकार पंचम अंक के प्रारम्भ में भी सम्पाति और जटायु के संवाद रूप शुद्ध विष्कम्भक का सुन्दर प्रयोग भवभूति के द्वारा महावीरचारित में किया गया है। जिसमें रामचंद्र के चित्रकूट, पंचवटी आदि से सम्बन्धित विविध प्रसंगों का उल्लेख करते हुए लक्ष्मण के द्वारा शूर्पणखा के नासिका और कर्ण विच्छेदन की भी सूचना दी जाती है।

जटायु :- तस्यां च कर्ण नासोष्ठ कर्तनेन न्यवीविशत्। दशाननतिरस्कारप्रशस्तिमिव लक्ष्मणः।।[22]

मृगाकृष्ट श्रीराम, उनके पीछे लक्ष्मण का प्रस्थान तत्पश्चात् रावण द्वारा सीता का हरण तथा जटायु द्वारा सीता के रक्षार्थ रावण के प्रति ललकार की जानकारी विष्कम्भक के द्वारा दी जाती है।

षष्ठ अंक के आरम्भ में मिश्र विष्कम्भक की योजना माल्यवान् एवं त्रिजटा के मध्य वार्तालाप के माध्यम से की जाती है इसमें राक्षस पक्ष के द्वारा राम के पराक्रम के लिए की गयी समस्त योजनाओं की विफलता पर चिन्ता प्रकट की जाती है और रावण की पाप बुद्धि पर निराशा व्यक्त करते हुए उसके विनाश की सम्भावना तथा विभीषण के कुल वंशधर के रूप में बचे रहने के अनुमान के साथ इस विष्कम्भक की समाप्ति होती है।

माल्यावन् - कथमद्यापि विप्रकृष्टतमः किल प्रबोधकालः। (संस्करणम्) विमृश्यमाने तु दिष्ट्या कनिष्ठवर्ती एव दूरदर्शी यस्थ विमृश्यकारिता शुभादेर्कासुबहुशोऽयभिसन्धीयमाने कुलप्रतिष्ठातन्तुं तमेवोत्पश्यामि।।[23]

सप्तम् अंक के प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक के दो नगरियों लंका और अलका के संवाद को प्रयुक्त किया गया है। एक नवीन लंका के द्वारा अपने स्वामी रावण के इस नासमझी पर दुःख व्यक्त किया जाता है कि रावण ने यह क्यों नहीं समझा कि ब्रह्म ज्ञानियों का परमतत्त्व पुराणपुरूष, सत्त्वजतम तीन भागों में बंटी प्रकृति

ही रामरूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई है। अलका रावण के लिए कहती है कि शाप द्वारा रावण की मति मारी गयी थी इसमें रावण का कोई दोष नहीं है।

लंका - कथमस्माकं स्वामिना राक्षसनाथेनेदं नावधारितम्?

अलका - अयि सरले। शापमहिम्नाकिल मूर्च्छन्मोहसोऽपि नाप्राध्यति।।[24]

इस प्रकार पाँच स्थानों पर विष्कम्भक का प्रयोग कर भवभूति ने महावीरचरितम् नाटक में सूच्य वस्तु के आधार पर रोचकता के उन्मीलन का सुन्दर उद्योग किया है।

नाटक में मंच पर अप्रयुज्यमान परन्तु सूचना के द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली वस्तु की उपस्थापना के लिए अनेकानेक स्थानों पर चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक का भी सुन्दर प्रयोग किया है। जवनिका के भीतर रहने वाले पात्रों के अर्थ की सूचना देने वाला अर्थोपक्षेपक चूलिका कहलाता है।

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना[25]

महावीरचरित नाटक में अंकास्य या अंकमुख नामक अर्थोपक्षेपक को भी सूचनात्मक वस्तु के उपस्थापन के लिए उपयोग में लाया गया है। किसी अंक के अन्त में आने वाले पात्रों के द्वारा जब पूर्व अंक से असम्बद्ध अग्रिम अंक के अर्थ की सूचना दी जाती है तो उसे अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपक कहते हैं।

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्य छित्राङ्कस्यार्थसूचनात्[26]

महावीर चरितम् के द्वितीय अंक की समाप्ति पर सुमन्त के द्वारा राम से ही यह कहने पर कि महाराज, वशिष्ठ तथा विश्वामित्र, भार्गव समेत आप लोगों को बुलाते हैं; तभी तृतीय अंक के आरम्भ में मंच पर वशिष्ठ विश्वामित्र, जामदम्य परशुराम तथा शतानन्द का प्रवेश हो जाता है। यहाँ पर अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार महावीर चरित में प्रख्यात इतिवृत्तात्मक दिव्यादिव्य नायकपरक कथावस्तु के अधिकारिक एवं प्रासंगिक अंशों का सुन्दर विवेचन महावीरचरित में प्राप्त होता है। कथावस्तु की बोधकता और सरसता को सुरुचिपूर्ण बनाए रखने के लिए विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपकों का सुन्दर प्रयोग कवि भवभूति के द्वारा महावीर चरितम् में किया गया है।

कथावस्तु योजना - नाटक की कथावस्तु के आयोजन नाटक के नाट्यशिल्प का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्म होता है। जिसमें नाटक का नायक अपने विविध फलोपायों (अर्थप्रकृतियों) का उचित अवस्थाओं में प्रयोग कर अभीष्ट फल की प्राप्ति करता है। कथावस्तु को रोचक, सुगठित एवं प्रभावशाली बनाने के लिए नाटककार नाटक में पांच प्रकार की अर्थप्रकृतियों का प्रयोग करता है। पंच अर्थ प्रकृतियाँ हैं- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य। ये पाँचों अर्थप्रकृतियाँ पाँच प्रकार की अवस्थाओं में प्रयोग की जाती हैं जिन्हें पंच कार्यावस्थाएं कहते हैं। पंचकार्यावस्थाएं हैं - आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्तिऔर फलागम।

कार्यावस्थाओं का सीधा सम्बन्ध नायक के मन, वचन तथा क्रिया सम्बन्धी व्यापारों से होता है क्योंकि नायक के व्यक्तित्व का उत्तरोत्तर विकास ही कार्यावस्थाओं का मुख्य प्रयोजन होता है।

बीज अर्थ प्रकृति - नाटक के आरम्भ में प्रयुक्त होती है। इसके माधुर्य से अल्पनिर्दिष्ट तत्त्व ही अभीष्टफल का कारण होता है और इतिवृत्त में विस्तार को प्राप्त करता है। **''स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुबीजंविस्तार्थनेकधा''**[27]

महावीरचरित में विश्वामित्र की वह उक्ति जो उनके द्वारा यज्ञ में राजा जनक के आह्वान के समय स्वगत और प्रकाश रूप में कही जाती है वह बीज का उदाहरण है।

विश्वामित्र - (स्वगत्) रक्षोध्नानि च मङ्गलानि सुदिने कल्प्यानिदारक्रिया[28]

अर्थात् शुभ दिवसों में श्री रामचन्द्र के लिए रक्षोध्वज मंगल का विधान करना है, सीता के साथ राम का विवाह कराना है, यज्ञ का संकल्प करना है, संसार की भलाई के लिए दैत्यादि रामचन्द्र के वह आश्चर्यजनक कार्य कर्त्तव्य ही है, उस व्यग्रता में आनन्द प्रतीत होता है।

इस कथन में संसार की भलाई ही दैत्यादि रामचन्द्र का कर्तव्य है। यही वीर योद्धा श्री रामचन्द्र के जीवन का इस नाटक के माध्यम से फल भी है कि दैत्यों का विनाश कर निर्विघ्न यज्ञादि कर्म के वातावरण का निर्माण कर सकें।

बिन्दु :- नाटक की कथावस्तु में जब अवान्तर कारणों के वृत्त विच्छेद हो जाता है तो उसको जोड़ने के लिए जिन अर्थप्रकृति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है वह बिन्दु कहलाती है। **अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छदेकारणम्**[29]

महावीरचरितम् में जब राम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के विवाह क्रमशः जनकपुत्रियों सीता, उर्मिला, माण्डवी श्रुतकीर्ति से करने का प्रसंग विश्वामित्र के संवाद में कहा जाता है तो उसी समय राक्षस सुन्दोपसुन्द के पुत्र सुबाहु तथा मारीच के द्वारा कोलाहल किए जाने पर विश्वामित्र के द्वारा उनका बध किए जाने का आदेश

एतौ सुबाहुमारीचौ पुत्रौ सुन्दोपसुन्दयोः।
तद्वत्सौ। हन्यतामेष यज्ञप्रत्यूहः।[30]

विवाहादि अवान्तर प्रसङ्ग में राक्षस हनन आदि प्रमुख कर्तव्य की ओर नायक राम को उन्मुख कराने वाला यह संवाद बिन्दु नामक अर्थप्रकृति का उदाहरण है।

महावीरचरितम् में प्रयुक्त पताका एवं प्रकरी की चर्चा प्रस्तुत आलेख के कथावस्तु विवेचन के क्रम में की जा चुकी है। **कार्य -** आधिकारिक कथावस्तु के प्रयोग के लिए जो समारम्भ होता है उसे कार्य कहते हैं।

यत्राधिकारिकं वस्तु सम्पन्न प्राज्ञैः प्रयुक्ते।
तदर्थो यः समारंभस्तत्कार्यं परिकीर्तितम्।।[31]

महावीरचरितम् में मिश्र विष्कम्भक के पात्रों के रूप में लंका और अलका नामक नगरीद्वय के मध्य संवाद की योजना की गई है। इसी क्रम में अलका के द्वारा यह सूचना दी जाती है कि-

रघुकुलतिलकेऽस्मिन् भ्रातृमात्रद्वितीये किमपि पितृनिदेशाद्दण्डकां संप्रविष्टे।
यदुचितममुना ते राक्षसानां विनेत्रा विहितमयमशेषः कर्मणस्तस्य पाकः।।[32]

अर्थात् श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण को साथ लेकर पिता की आज्ञा से दण्डकारण्य में आए उनके साथ राक्षसराज ने अनुचित व्यवहार किया और रघुपति ने उनका बिनाश कर दिया यह पूरा काण्ड इसी कृत्य का परिणाम है। इस प्रकार यहाँ पर कार्यनामक अर्थप्रकृति की योजना दृष्टिगोचर होती है।

पंचकार्यावस्था - आरम्भ कार्यावस्था में विश्वामित्र के आश्रम में राम लक्ष्मण के आगमन तथा यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सीता उर्मिला सहित राजा कुशध्वज के विश्वामित्र के यज्ञ में उपस्थित होने के समय का वर्णन है।

प्रयत्न कार्यवस्था में जटायु वार्तालाप के पश्चात् राम और लक्ष्मण द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए किया जाने वाला प्रयास है।

प्राप्त्याशा के रूप में शबरी के साथ मिलकर सुग्रीव हनुमान् सभी के सहयोग से रावण के युद्ध करने के सामर्थ्य को सुव्यवस्थित करना है। नियताप्ति में बालिवध के पश्चात मेघनाद कुम्भकर्ण सभी का वध हो जाने पर नियताप्ति की अवस्था आती है रावण के वध के साथ ही नायक राम को सीता की प्राप्ति तथा राक्षसों के भय से मुक्ति रुप करने की प्राप्ति हो जाती है। अतः यहाँ फलागम नामक कार्यावस्था है।

नाटक के पात्र - संस्कृत नाटकों में नायक का व्यक्तित्व सर्वत्र व्यापक होता है। इसीलिए नायक के लिए नेता, शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस नायक शब्द में नायक के अतिरिक्त प्रतिनायक, नायिका तथा अन्य सहायक पात्रों का अन्तर्भाव होता है।

नायक - संस्कृत शास्त्रकारों ने नायक को विविध गुणों से समन्वित माना है। वह विनीत मधुर (सुन्दर) त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, रक्तलोक, शुची, वाग्मी, रूढ़वंशी, स्थिर तथा यौवन से सम्पन्न होता है। कृतज्ञता, उत्साह, सुश्रीकृत तेजस्वित, शील, वैदध्यमार्ग उसके लक्षण हैं। नाटक में चार प्रकार बताए गए हैं - 1. धीरादात्त 2. धीरोद्धत 3. धीरललित धीर प्रशांत। **'भेदैश्यतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धततैरयम्'**[33]

महावीरचरितम् के नायक श्री रामचन्द्र धीरोदात्त कोटि के नायक हैं। क्योंकि धीरोदात्त कोटि के नायकों के सभी गुण श्रीरामचन्द्र में परिलक्षित होते हैं। धीरोदात्त नायक का लक्षण करते हुए दशरूपककार धनञ्जय कहते हैं कि-

महासत्त्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।[34]

धीरोदात्त नायक अविकत्थन (अनात्मश्लाघी) क्षमाशील, गंभीर, महासत्त्वसम्पन्न, दृढ़व्रती, स्थिर तथा प्रकृतस्थ होता है। महवीरचरितम के नायक राम भी कभी भी अपने शक्ति और पराक्रम की श्लाघा अपने मुख से नहीं करते हैं अपितु दैव और असुर ही उनके सच्चरित का गान करते हैं :

उत्पत्त्यैव हि राघवः किमपि तद्भूतं जगत्यद्भूतं
मर्त्यत्वेन किमस्य यस्य चरितं देवासुरैगीयते।।[35]

राम अत्यन्त क्षमाशील नायक हैं। माहेश्वर धनुष के भंजित कर देने पर माहेश्वर शिष्य परशुराम के द्वारा क्रोधित होकर समस्त क्षत्रिय वंश के इक्कीस बार संहार की आत्मश्लाघा बारम्बार की जाती है, इसे सुनकर सीता की सखियों के द्वारा जब श्रीरामचन्द्र के सम्मुख इसका उल्लेख किया जाता है तब राम बिल्कुल क्रोधित नहीं होते हैं अपितु उन सखियों से कहते हैं कि परशुराम के पराक्रम का आंशिक रूप से उल्लेख करना उनके पराक्रम का अनादर करना है। श्रीराम कहते हैं कि वे अपने वल से पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय विहीन ही नहीं किए अपितु इस पृथ्वी को कश्यप मुनि के हाथों में दक्षिणा के रूप में सौंपकर स्वयं शस्त्र द्वारा तपाए गए समुद्र के द्वारा दी गई भूमि में रहकर तपस्या भी करने लगे। **उत्खातसिसतिथालवंशगहनास्तिः सप्तकृतो दिशः।**[36] इससे श्री रामचन्द्र व्यक्तित्व में क्षमाशीलता का भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

क्रोध वश परशुराम के द्वारा राम का नाम लेकर आह्वान करने पर राम सद्यः ही परशुराम के समक्ष विनम्रतापूर्वक उपस्थित हो जाते हैं। परशुराम राम के सुन्दर और गम्भीर स्वरूप को देखकर चकित हो जाते हैं और उनका क्रोध शान्त होने लगता है उन्हें अपनी वीरव्रत भी क्रूर प्रतीत होने लगता है-

चञ्चत् पञ्चशिखण्डमण्डननमसौ मुग्धप्रगल्भं शिशु।[37]

कुंचित केशों वाला यह रामरूपी शिशु सुन्दर मुखमण्डल और स्वाभाविक शोभा को उत्थान करने वाली गम्भीरता से युक्त होने के कारण अत्यन्त आकर्षक लग रहा है। राम को एक बार देख लेने के बाद भी हृदय तृप्त नहीं हो रहा है उसका सौन्दर्य बार-बार हमारे हृदय को आकर्षित कर रहा है। परन्तु मेरा प्रण है कि मुझे इसका वध करना है। धिक्कार है ऐसी वीर व्रत की क्रूरता पर।

श्री रामचन्द्र महासत्त्वशाली नायक के रूप में महावीरचरितम् में दिखाए गए हैं। महावीर चरित के द्वितीय अंक में राम-परशुराम प्रसंग के राम के आया व्यवहार को देखकर परशुराम कहते हैं- **जामदग्न्य**

(स्वगतम्) **अप्राकृतस्य चरितातिशयस्य भावैरत्यद्भुतैर्मम हतस्यतथाप्यनावस्था कोऽप्येष वीरशिशुकाकृतिरप्रमेद सामर्थ्यसार समुदायमयः पदार्थः ।।**[38]

अर्थात् परशुराम कहते हैं मैं राम के असाधारण चरित के उत्कर्ष पर इतना आकर्षित हो गया हूँ कि हमारी अहंकार पर अनास्था हो गयी है। यह वीर बालक अनन्त सामर्थ्य का सारभूत है। इसका शरीर सप्त भुवन को अभयदान देने में समर्थ है। इस बालक राम में लक्ष्मी, सत्त्व गुण से ज्वलित तेज, धर्म, मान और पराक्रम स्पष्ट झलकते हैं।

श्री रामचन्द्र दृढ़व्रती भी हैं। जटायु के वीर गति को प्राप्त हो जाने पर नाटक में पंचम अंक में राम राक्षस वंशोच्छेद के संकल्प के प्रति अपनी दृढ़ता का परिचय देते हुए कहते हैं-

प्रागेवराक्षसवधाय मतिः कृता-मे, वध्याहिते बहुभिरेव यतो निमित्तैः।
तन्मात्रके त्विह कृतेऽपि कुतः शमो मे, कृत्यं कुल शमनात्परतश्च नान्यत।।[39]

अर्थात् राक्षसों को विनष्ट करने की प्रतिज्ञा पहले ही ली जा चुकी है, जिसके पीछे अनेकानेक अन्य कारण भी हैं। इतने भर से हमें शांति नहीं मिलने वाली है। उनको वंशोच्छेद करके ही शांन्त नहीं होंगे। यहाँ राम का दृढ़वती स्वभाव स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त, लक्ष्मण, भरत, वशिष्ट, विश्वामित्र, परशुराम, माल्यावान् सुमन्त, दशरथ, शतानन्द, युधाजित सम्पाति, जटायु, बालि, सुग्रीव, विभीषण, अंगद एवं रावणादि पुरुषपात्रों का यथावसर सुन्दर प्रयोग किया गया है।

नायिका - नाटक के शिल्प में नारी का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। यद्यपि वीररस प्रधान नाटकों की तुलना में श्रृंगार रस प्रधान नाटकों में नायिकाएं अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। फिर भी वीररस प्रधान महावीरचरित में सीता के रुप में नायिका का प्रयोग नाटक के आनन्द को अभिवादित कर देता है।

नायिका मूलतः तीन प्रकार की होती है- स्वकीया, परकीया, सामान्य स्वान्या साधारण नीति तद्गुणा नायिका त्रिजटा।[40] स्वकीया नायिका शील आर्जव, तथा लज्जा आदि गुणों से युक्त होती है। परकीया नायिका किसी अन्य पुरूष की विवाहिता अथवा कोई अन्य विवाहिता कन्या हो सकती है। सामान्या नायिका प्रायः गणिका होती है यह अत्यनत प्रगल्भा, चतुर तथा धूर्त प्रकृति की होती है।

शील और सरलता से युक्त स्वकीया नायिका कुल तीन परिवार की होती है 1. मुग्धा 2. मध्या 3. प्रगल्भ। **मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्**[41]

मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि[42] धनञ्जय ने मुग्धा नायिका को नवीन काम भावना वाली रतिक्रीड़ा में लज्जावाली और क्रोध करने में कोमल भाव वाली बताया है।

सीता अपने पति श्री राम के प्रति प्रगाढ़ प्रेम करती है जिसका सुन्दर वर्णन कवि भवभूति ने निम्न श्लोक में किया है। राम के द्वारा की गई धर्नुभंग की सूचना को पाकर जब क्रोध के उन्मत्त परशुराम के द्वारा श्रीराम का नाम लेकर कटुवचन कहते हुए ललकारा जाता है, उसे सुनकर श्रीराम कहते हैं कि महान् पराक्रमी परशुराम यद्यपि दर्शनीय हैं परन्तु भय में शालीनता से लिपटा हुआ सीता का प्रेम मुझे बांधा हुआ है-

माहाभाग्यमहानिधिभर्गवतो देवस्य दग्धुः पुरा-माम्नायेन विशुद्धसत्त्वचरितः शिष्यो भृगूणां पतिः।
द्रष्टव्यः स च मा दिदृक्षुरपि च त्यक्त्वा हियं मुग्धया सन्त्रासादयमाभिजात्यनिभृत स्नेहो मयि द्योत्यते।।[43]

यहाँ सीता के भय के कारण क्रोध करने पर भी सीता के अत्यन्त कोमल स्वभाव का परिचय प्राप्त होता है। सीता की कोमलता को देखकर श्रीराम कहते हैं कि सीता की कोमलता पुष्प के समान है वह

लावण्यमयी है उसके कटि प्रान्त पर पड़ने वाली त्रिवली को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि भय, श्रम तथा लज्जा के संयोग से उठने वाले श्वास-प्रश्वास के कारण सीता के वक्षस्थल के भार को यह कटिप्रदेश सहन नहीं कर पा रहा है-

आतङ्कश्रमसाध्वसव्यतिकरोत्कम्पः कथं सह्याता। मङ्गैर्मुग्धमधूकपुष्परूचिभिर्लावण्य सारैरयम्।
उन्नतद्धस्तनयुग्मकुड्मलगुरूश्वासावभुग्नस्य ते मध्यस्य-त्रिवलीतरङ्गकजुषो भङ्गः प्रिये मा च भूत्।।[44]

इस प्रकार महावीर चरितम् की नायिका सीता मुग्धाकोटि की स्वकीया नायिका सिद्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त मन्दोदरी शूर्पणखा, त्रिजटा, अरुन्धती आदि अन्य स्त्री पात्र भी महावीरचरितम् के कथानक के प्रवाह में यथावसर पात्र के रुप में उपस्थित होकर इस नाटक के सैष्ठव एवं रोचकता को संतुलित करते रहते हैं।

प्रतिनायक - नायक को फल प्राप्ति में जो पात्र सर्वाधिक विघ्न उपस्थित करता है, संघर्ष के बाद नायक उस पर विजय प्राप्त कर अपने फल को प्राप्त करने में सफल होता है वह प्रतिनायक कहलाता है। प्रतिनायक का लक्षण करते हुए दशरुपककार आचार्य धनञ्जय कहते हैं-**''लुब्धः धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः**[45] अर्थात् लोभी, धीरोद्धत, कठोर दुराग्रही, पापकर्म करने वाला, व्यसनी और प्रधान नायक का शत्रु प्रतिवायक कहलाता है।

महावीरचरितम् में लङ्कापति रावण प्रतिनायक के रूप में वर्णित किया गया है। वह अहंकारी और दुराग्रही प्रकृति वाला पराक्रमी राक्षस राजा है। वह गर्व से उन्मत्त होकर कहता है कि मैं अगर चाहूँ तो ब्रह्माण्ड को पीसकर नवीन ब्रह्माण्ड बना दूँ, जिसका कोई तोड़ ही न हो। सूर्य और चन्द्रमा को मैं अपने प्रताप और कीर्ति के संवाहक के रूप में नियुक्त कर दूँ; परन्तु आलस्य के कारण मैं ऐसा नहीं करता हूँ।

पिष्ट्वा ब्रह्माण्डमस्मादथ भुवनविभागादुदस्यापि किञ्चिद्, ब्रह्माणं चातिकृत्याप्रतिमरूचितरं स्वं प्रतापं यशश्च।
सूर्येन्दू संविधाय स्वयमधिकतरं निर्वृतः स्यामहं चे,न स्यादालस्यदोषः सकरूणमथवा कोऽबुकम्प्येषु कोपः।।[46]

रावण का सचिव और उसका मातामह माल्यवान् रावण के विनयहीनता पर चिन्ता व्यक्त करता है और कहता है कि लंका का राजा एक अविनय के वृक्ष के समान है जिसका कोटक चारों ओर फैल रहा है। सीता की प्रार्थना इस वृक्ष का बीज है, शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण को धोखा देने के लिए उनके पास जाना उस बीज का अंकुर है और मारीच के द्वारा स्वर्ण-मृग की काया धारण करना इस अंकुर के नये पत्ते हैं। सीता हरण इसकी शाखा और अक्षय कुमार का वध एवं विभीषण का राम से मैत्रीस्थापन कोटक के समान हैं। इस वृक्ष में शीघ्र ही फल, लगेगें और लंका का विनाश हो जाएगा।

बीजं यस्य विदेहराजतनयायाच्ञाङ्कुरोऽपि स्वसु र्यात्रा तौ परिवञ्चितुं किसलयं मारीचमायाविधिः।
शाखाजालमयोनिजापहरणं तस्य स्फुटं कोरकाः कीशाधीशवधोऽनुजस्यगमनं सख्यं तयोस्तेन च।।[47]

मन्दोदरी के द्वारा राम के चमत्कारिक कृत्यों के उल्लेख के माध्यम से रावण को युद्ध से रोकने का प्रयास किया जाता है तो रावण उसकी बातों पर उसके विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और सदा राम से युद्ध के लिए उद्यत रहता है। अन्त में रावण सहित राक्षस सेना का वध कर राम के द्वारा सीता की प्राप्ति कर ली जाती है।

रसयोजना

रस नाटक का अनिवार्य अंग होता है। रस से अनपेक्ष रह कर नाटक में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। रस नाटक की इतिवृत्त रूपी शरीर में आत्मा के रूप में अवस्थित होता है। महाकवि भवभूति विरचित महावीरचरित नाटक में विविध रसों की अत्यन्त सुन्दर योजना की गयी है। वीर रस इस नाटक का

प्रधान रस है। नाटक के प्रथम अंक में विश्वामित्र के आश्रम में रावण के द्वारा प्रेषित राक्षस रावण की वीरता का वर्णन करते हुए कहता है -

सर्वप्राणप्रवणमघवन्मुक्तमाहत्य वक्षस्तत्संघट्टाद्विघटितबृहत्खण्डमुच्चण्डरोचिः।
एवं वेगात् कुलिशमकरोद्-व्योम विद्युत्सहस्रै- र्भर्तुर्वक्त्रज्वलनकपिशास्ते च रौषाट्टहासाः।।[48]

अर्थात् रावण की छाती पर इन्द्र द्वारा सम्पूर्ण शक्ति से जब वज्र से प्रहार किया गया तो आकाश में सर्वत्र विद्युत प्रकाश व्याप्त हो गया। जैसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रहार से रावण के अट्टहास करने के कारण ही यह तीव्र विद्युत प्रकाश विकीर्णित हो रहा है।

राम के शौर्यशाली स्वरूप को देखकर जामदग्न्य परशुराम कहते हैं कि ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे मानों सकल भुवन की रक्षा के लिए अस्त्रवेद शरीर धारण कर राम के रूप में प्रकट हो गया है। ऐसा मालूम पड़ता है ब्रह्माण्ड की रक्षा के लिए मूर्तरूप धारण कर क्षात्रधर्म के रूप में प्रकट हुआ हो, सामर्थ्य का समूह राम के गुणों का संचय लगता है। मानो जगत् का सम्पूर्ण पुण्य कर्म मानव रूप धारण कर प्रकट हो गया हो।

सम्भाव्यसप्त भुवनाभयदानपुण्यसम्भारमस्य-बपुरत्रहि विस्फुरन्ति।
लक्ष्मीश्च सात्त्विकगुणज्वलितं च तेजो धर्मश्च मानविजयौ च पराक्रमश्च।।[49]

राक्षस सेना और वानर सेना के मध्य युद्ध का वर्णन करते हुए भवभूति कहते हैं कि राक्षस और वानर सेना के आपस में मुक्का-मुक्की और अस्त्र प्रहार से परस्पर कटे हुए रुण्डों से पृथ्वी पट सी गई है, वहां चलना फिरना कठिन सा लगने लगा है। यहाँ पर भी वीररस का सुन्दर संयोजन किया गया है।

इसी प्रकार शृंगारादि आदि रसों का भी प्रयोग महावीरचरितम् में भवभूति ने पर्याप्त रुप में किया है परन्तु वह गौड़ रूप में किया है। सीता को देखकर श्रीराम कहते हैं कि **'तत्किमियममृतवर्तिरिव मे चक्षुराप्याययति'**[50] अर्थात् यह कौन हैं जो अमृतवर्ति के समान हमारी आंखों को आनन्दित करती है? दूसरी ओर सीता भी कहती हैं कि **''किमिति सज्जतेऽस्मिंल्लोचनानन्दे मे दृष्टिः''** क्या बात है कि जिन्हें देखकर नेत्र हर्षित हो रहे हैं और बार-बार उन्हें देखने की इच्छा हो रही है? यहाँ पर श्रृंगार रस की योजना दृष्टिगोचर होती है, वीभत्स रस का प्रयोग राम के द्वारा ताड़का वध के क्रम में द्रष्टव्य है -

हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटकङ्कपत्रसंवेगतत्क्षणकृतस्फुटतदङ्गभङ्गा।
नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्यदुद्बुद्बुदध्व नदसृक्प्रसरा मृतैव।।

अर्थात् राम के तीव्र प्रहार से ताड़का के अंग कट रहे हैं बुलबुले रूप में खून गिर रहा है। इसी प्रकार अन्य रसों का प्रयोग भी गौड़ रूप से महावीरचरित में किया गया है।

अस्तु महावीर चरितम् संस्कृत साहित्य के नाट्य-नदीष्ण, विलक्षण विद्वान् भवभूति के द्वारा महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण की कथा को केन्द्र में रखकर उसे महाकाव्य से नाटक के रूप में प्रस्तुत करने का श्लाघनीय साहित्यिक सतकर्म है। यद्यपि इस नाटक के निर्माण में कवि भवभूति ने कथानक में पर्याप्त परिवर्तन तो किया है परन्तु भवभूति की यह नवीन उद्भावनाएं महावीरचरित को सहृदयों के मन में चमत्कार का सृजन में सफल होती है। नाटक में नायक-नायिका सहित अन्य सहायक पात्रों का भी रोचक प्रयोग किया गया है। वीर रस की प्रभावशाली योजना को अन्य रसों की अन्विति से परिपुष्ट किया गया है। नाटक के संवाद भवभूति के प्रकृति के अनुसार विद्वतापूर्ण होने के कारण यद्यपि गम्भीर हो गए हैं फिर भी सहृदय जन के अर्न्तमन को आहलादित करने को पूर्ण समर्थ हैं। महावीरचरित का नाट्यशिल्प विधान में महाकवि भवभूति के द्वारा नाट्यशास्त्रीय उपादानों में सम्यक् निर्वहण किया गया है।

सन्दर्भ -

1. महावीरचरितम् 1/7
2. नाट्यशास्त्र-1/112
3. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
   नासौ योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिव् यन्न दृश्यते।। नाट्यशास्त्र 1 /116
4. मुद्राराक्षस-4/3
5. यस्माद्रङ्गे प्रयोगोऽयं पूर्वमेव प्रयुज्यते।
   तस्मादयं पूर्वरङ्गो विज्ञेयो द्विजसत्तामः।। नाट्शास्त्र-5/7
6. साहित्यदर्पण-6/22
7. नाट्शास्त्र 5/24
8. महावीरचरितम 1/1
9. नाट्शास्त्र 1/149
10. उद्घातककथोद्धातः प्रयोगतिशयस्तथा।
    प्रवर्तकावलगिते पंचांगान्यामुखस्य तु।। नाट्यशास्त्र 20/33
11. दशरूपकम् 3/11
12. महावीरचरित 1/पृ. 9
13. दशरूपकम् 1/11
14. दशरूपकम् 1/11
15. दशरूपकम् 1/13
16. दशरूपकम् 1/57
17. दशरूपकम् 1/59
18. दशरूपकम् 1/60/I
19. महावीरचरितम् 21/12/(1)
20. महावीरचरितम् 2/12(2)
21. महावीरचरितम् 4, पृष्ठ 143
22. महावीरचरितम् 5/12
23. महावीरचरितम् 6/पृष्ठ 251
24. महावीरचरितम् 7/पृष्ठ- 300
25. दशरूपकम् 1/61/I
26. दशरूपकम् 1/62/I
27. दशरूपकम् 1/16/I
28. महावीरचरितम्, 1/13
29. दशरूपकम् 1/17/I
30. महावीरचरित 1/60-I
31. नाट्यशास्त्रम् 19/25
32. महावीरचरितम् 07/1
33. दशरूपकम् 2/3/I
34. दशरूपकम् 2/4
35. महावीररचितम् 2/61
36. महावीरचरितम् 2/19
37. महावीरचरितम् 2/32
38. महावीरचरितम् 2/39
39. महावीरचरितम् 5/25
40. दशरूपकम् 2/15/I
41. दशरूपकम् 2/15/II
42. दशरूपकम् 2/16/I
43. महावीरचरित 2/18
44. महावीरचरित 2/21
45. दशरूपकम् 2/9
46. महावीरचरितम् 6/10
47. महावीरचरितम् 6/1
48. महावीरचरितम् 1/45
49. महावीरचरितम् 2/40
50. महावीरचरितम् 1/पृष्ठ-27
51. महावीरचरितम् 1/पृष्ठ-28
52. महावीरचरितम् 1/39

19

उत्तररामचरितम् का नाट्य वैशिष्ट्य

अमरेश यादव

भवभूतिकृत उत्तररामचरित नाटक का संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इनके द्वारा विरचित महावीरचरित, मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित इन तीनों नाटकों में उत्तररामचरित इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसलिए कहा गया है- 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'। यह करुण रस प्रधान नाटक है। भवभूति ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जीवन के पूर्वभाग की कथा का वर्णन महावीरचरित में तथा उत्तर भाग की कथा का वर्णन अर्थात् रावणवध के बाद राज्याभिषेक से प्रारम्भ करके सीता-निर्वासन एवं बाद में पुनः समागम तक की कथा का वर्णन उत्तररामचरित में किया है। इस नाटक में कुल सात अंक हैं, जिनमें प्रथम अंक सबसे बड़ा और सातवाँ अंक सबसे छोटा है। इस नाटक के कथावस्तु का मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण है। रामायण के उत्तरकाण्ड में राम के जीवन के उत्तर भाग की कथा दी गई है, वह दुःखान्त है। परन्तु भवभूति ने वाल्मीकि रामायणके प्रसिद्ध कथा को ही अभिनय विशिष्ट रचना में परिवर्तित करके उत्तररामचरित नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसा इस नाटक के अन्त में दिये गये भरतवाक्य के अभिनय से प्रतीत होता है।[1] वाल्मीकि रामायण के कुछ श्लोकों को भवभूति ने उसी प्रकार रख दिया है।[2] अभिनय योग्य बनाने के लिए भवभूति रामायण की कथा में कुछ परिवर्तन भी किए हैं। इसलिए उत्तररामचरित का कथानक राम-सीता का मिलन, दण्डकारण्य में अदृश्य रूप में सीता द्वारा राग की मूर्च्छा दूर किया जाना, वसिष्ठ, अरुन्धती, राम की माताओं का वाल्मीकि आश्रम में निवास, लव-चन्द्रकेतु युद्ध तथा नाटक के अंत में राम-सीता का मिलन वाल्मीकि रामायण की कथानक से भिन्न है। कथानक की दृष्टि से उत्तररामचरित एक सफल कृति है। वाल्मीकि रामायण में कथा का अन्त दुःखद है। सीता के निधन से कथा का समापन होता है। परन्तु नाट्यशास्त्र के अनुसार कथा का समापन सुखद होना चाहिए।[4] संस्कृत साहित्य में दुःखान्त नाटकों का सर्वथा अभाव दिखलाई पड़ता है। इसलिए कवि ने कथावस्तु में परिवर्तन करके राम-सीता के सुखद मिलन से कथा का समापन किया है। नाट्यकला के इस परम्परा का भवभूति ने सर्वथा पालन किया है। इस नाटक के कथानक में गतिशीलता सर्वथा विद्यमान है। कथानक के सभी अंश, सभी घटनाओं का परस्पर सम्बन्ध है। प्रथम अंक से लेकर सातवें अंक तक कहीं भी कथानक में विच्छेद नहीं है। प्रथम अंक का चित्र दर्शन अतीत की घटनाओं से समन्वित करता है तो द्वितीय अंक में वासन्ती-आत्रेयी संवाद से कुश-लव की जन्म कथा का परिचय मिलता है। तृतीय में तपसा-सीता, राम-वासन्ती का वार्तालाप, चतुर्थ में वसिष्ठ, अरुन्धती, जनक,कौशल्या का मिलन लव दर्शन, पाँचवें में लव-चन्द्रकेतु का

युद्ध के लिए आह्वान, छठें में लव-चन्द्रकेतु युद्ध, राम-कुश का आगमन, सातवें में सीता को निर्दोष बताना, राम-सीता का मिलन इस प्रकार भवभूति ने सात अंकों के कथानक को गतिशील और अन्वित किया है। प्रस्तुत रूपक में पाँच अर्थ प्रकृतियों बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी व कार्य, पाँच अवस्थाओं- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम, पाँच सन्धियों- मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श व निर्वहण इन तत्वों का समावेश उचित रूप से हुआ है। कथा का अतिसूक्ष्म रूप से निर्देशन ही बीज कहलाता है।[4] उत्तररामचरित के प्रस्तावना में बीज का निर्देशन प्राप्त होता है। सूत्रधार कहता है कि कर्तव्य पालन के विषय में लोकनिन्दा से कैसे बचा जा सकता है। स्त्रियों के पातिव्रत्य के विषय में लोग शंकालु ही रहते हैं।[5] सूत्रधार के इस कथन में सीताविषयक जनापवादरूप भावी अर्थ की सूचना देता है। बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति इस नाटक के तृतीय अंक में ही प्राप्त हो जाती है। क्योंकि जहाँ कथा का विच्छेद होता है वही बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति की उपस्थिति होती है, जिससे कथा आगे बढ़ती है।[6] सीता को राम की विरह व्यथा का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। राम के मुख से अश्वमेध यज्ञ में अपनी हिरण्यमयी प्रतिकृति को सहधर्मिणी के रूप में नियुक्त की हुई बात को सुनकर राम के प्रति उनका सारा क्षोभ दूर हो जाता है ओर उनके हृदय से परित्याग, लज्जा, आदि निकल जाता है, जिससे नाटक के अन्त में होने वाले समागम के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है।[7] इस प्रकार बीज के उद्गम से उत्पन्न राम की स्थिति बिन्दु है। उत्तररामचरित के पाँचवें अंक में हमें पताका का उल्लेख प्राप्त होता है। नाटक में दूर तक चलने वाली प्रासंगिक कथा पताका कहलाती है।[8] पाँचवें अंक में रामविप्लव ओर लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु का वीर संवाद आरम्भ होता है। यह कथा पूरे पाँचवें अंक तक चलती है। अतः लवचन्द्रकेतु प्रसंग पताका है। जो कथा कुछ समय के लिए ही आती है, उसे प्रकरी कहते हैं।[9] नाटक के दूसरे अंक में शम्बूकवृत्तान्त आता है जो प्रकरी का साक्षात् निदर्शन है ओर नाटक के अन्त में राम-सीता का पुनर्मिलन कार्य है।[10] पञ्च-अवस्थाओं का वर्णन भी कवि ने बखूबी किया है। प्रथम-अंक में ही रंगमंच पर राम सीता को सान्त्वना देते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रजानुरंजन के निमित्त वे सीता निर्वासन का वचन भी देते हैं। यही नाटक का आरम्भ है। राम का दण्डक यात्रा करना सीता प्राप्ति का यत्न है। दण्डक वन में राम की मूर्च्छा-अवस्था में सीता के हाथ का स्पर्श प्राप्त्याशा है। राम सीता कालीन स्थानों को देखकर मूर्छित हो जाते हैं। सीता अदृश्य होते हुए भी अपने शीतल हाथ स्पर्श से राम को चेतना लाभ कराती हैं।[11] सीता की पवित्रता का घोषणा करना नियताप्ति है। राम-सीता का पुनर्मिलन फलागम है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भवभूति एक सफल नाटककार हैं। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम के उदात्त चरित को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। राम का चरित्र बड़ा ही उदात्त, आदर्श तथा परम्परा के अनुकूल है। राम कर्तव्यनिष्ठ शासक हैं। प्रजानुरंजन के सामने वे स्वयं के सुख को तुच्छ समझते थे। सीता परित्याग में उनकी निःस्वार्थ भावना निहित है। स्नेह, दया, सौख्य, यहाँ तक कि पवित्र चरित्र जनकनन्दिनी को भी छोड़ते हुए राम को व्यथा नहीं है- **स्नेहं दया च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।**[12]

इस तरह का पवित्र उद्गार जिस राजा के मुख से निकलता हो उसके चरित की महानता का वर्णन किन शब्दों में किया जा सकता है? वे सीता के चरित्र के विषय में अपरिचित नहीं थे, लेकिन लोकाराधना की वेदी पर अपनी स्वयं के सुख को छोड़ देना राम की कर्तव्यनिष्ठता व आदर्श पतित्व का साक्षात् निदर्शन है।

सीता भी एक पवित्र पीड़िता सी की प्रतीक हैं। वे राम के द्वारा गर्भावस्था में भी परित्यक्त होने पर अपनी पति के सामने एक शब्द भी प्रतिवाद नहीं करती। वह राम के भाव को भली-भाँति जानती हैं राम एक ओर निजी जीवन के लिए व्यस्त हैं तो दूसरी ओर प्रजानुरंजन उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। सीता भी अपने दुःख से दुःखित नहीं हैं परन्तु राम के विषम दशा के चिंतन से चिंतित हैं। उत्तररामचरित में ऐसे पवित्रता का वर्णन

मिलना अन्यत्र दुर्लभ है। राम की मूर्च्छा को देखकर वे स्वयं संज्ञाहीन हो जाती हैं। राम-सीता का यह आदर्श चित्रण भवभूति के नाट्यकला का चरमोत्कर्ष है। नाट्य सिद्धांतों के अनुसार दृश्य काव्य में श्रृंगार व वीर रस अंगी होना चाहिए और अन्य रस गुण रूप से रहें।[13] इस सिद्धान्त के अनुसार अभिज्ञान शाकुंतलम्, मृच्छकटिक, रत्नावली, महावीरचरित, वेणी संहार आदि ऐसे अनेक रूपक हैं जो श्रृंगार अथवा वीर रस प्रधान हैं। परन्तु भवभूति का उत्तररामचरित इस नियम का अपवाद है। प्रस्तुत नाटक में श्रृंगार अथवा वीर रस को प्रधानता न देकर करुण रस को प्रधानता दी गयी है। संस्कृत साहित्य में भवभूति ही ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने करुण को अंगी बनाया। इस दिशा में परम्परानुसार समर्थन प्राप्त न होने पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं था। क्योंकि इनके पूर्व किसी भी लक्षण ग्रन्थ में रस-विशेष को अंगित्व के एकाधिकार का निर्देश नहीं था। कोई भी रस अंगी हो सकता है परन्तु अंगी रस एक ही हो सकता है चाहे श्रृंगार, वीर या कोई अन्य हो-

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने। एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता।।[14]

जहाँ तक उत्तररामचरित का प्रश्न है इसमें करुण अंगी रस है। कुछ विद्वान् इस नाटक में करुण विप्रलम्भ स्वीकार करते हैं। परन्तु करुण करुणविप्रलम्भ से पूर्णतया भिन्न है। करुण विप्रलम्भ श्रृंगार रस का एक भेद है। इसका स्थायीभाव रति है। करुण एक स्वतंत्र रस है परन्तु करुण विप्रलम्भ में दिवंगत व्यक्ति से पुनर्मिलन की आशा सदैव बनी रहती है[16], जो कि करुण में नहीं रहती। उत्तररामचरित में करुण ही अंगी रस है क्योंकि वहाँ विभाव, अनुभव, सात्विक और व्यभिचारी भावों से अभिव्यक्त होकर शोक ही स्थायिभाव है, जो चवर्णा दशा में करुण रस में परिणित हो जाता है। करुणरस की अभिव्यंजना में भवभूमि सिद्धहस्त है- ''कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते''। आचार्य गोवर्धनाचार्य भी अपने आर्या सप्तशती में इसका समर्थन करते हैं।[17] आर्या का अन्तिम पाद भवभूति के शब्दों की ही आवृत्ति है।[18]

प्रस्तुत नाटक में करुण रस प्रथमांक से ही प्रारम्भ हो जाता है। बन्धुजनों के घर लौट जाने पर सीता उद्विग्न हैं। राम के सान्त्वना देने पर वह दुःखी हैं। राम से कहती हैं- ''जानामि आर्यपुत्र! जानामि किन्तु सन्तापकारिणो बन्धुजन-विप्रयोगा भविन्त।'' भगवान् श्रीराम स्वभावतः बहुत धीर हैं। जन सेवा में निरन्तर व्यस्त होने के कारण उनका हृदयगत शोक प्रकट नहीं होता, भीतर ही जलता रहता है।[19] उनके दारुण व्यथा का उन्हीं के शब्दों द्वारा इस प्रकार हृदय कट रहा चूर्णित नहीं होता, शोकाकुल शरीर मूर्च्छित हो रहा है चेतना को नहीं छोड़ता। अन्तर्वेदना शरीर को जला रही है, भस्म नहीं करती। मर्मघाती दैव प्रहार कर रहा है पर, जीवन को नहीं छोड़ता।[20] राम समझते हैं कि सीता नहीं रही। उनको मरे हुए बारह वर्ष हो गये। उनका नाम भी अब नहीं रहा। राम के धैर्य का क्या कहना? वे अब भी जीवित हैं।[21]

राम के करुण क्रन्दन, दीर्घोच्छ्वास, परिदेवन तथा मोहागमन से सीता के हृदय में ही नहीं समाजिकों के अन्तःकरण में भी राम के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति उत्पन्न होती है तथा राम निर्दोष सिद्ध होते हैं। इसी दशा को इंगित करते हुए कवि ने इस नाटक में करुण रस को प्रकृति और अन्य रसों को विकृति के रूप में चित्रित किया। ये विकृतियाँ अन्ततोगत्वा अपनी प्रकृति में समा जाती हैं उसी प्रकार जैसे आवर्त, तरंग, बूँद-बूँद अपनी प्रकृति जल में समा जाते हैं।[22] कवि ने वैदर्भी और गौड़ी दोनों रीतियों का प्रयोग उचित एवं मर्यादित ढंग से किया है। करुण रस की अभिव्यंजना में भवभूति ने वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है। कोमल भावों को व्यक्त करने के लिए इस रीति का प्रयोग उचित ही है।[23] भवभूति सरल-कोमल और लघु शब्दों का प्रयोग करते हैं। कोमल भावों के अभिव्यंजक संवादों में भी कवि ने इस शैली को अपनाया है। वीर रस के प्रयोग में ओज गुण का प्रयोग परम्परा के अनुकूल है। प्रस्तुत नाटक के पाँचवें अंक के लव-चन्द्रकेतु संवाद में इसकी झलकियाँ

देखने को मिलती हैं। कवि के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में एक नवीनता प्रकट होती है। कवि ने सुकुमार रूप के चित्रण में भी गौड़ी रीति का आश्रय लिया है। साहित्यिक क्षेत्र में कवि की यह अपूर्व देन है।[24] कवि भवभूति के उत्तररामचरित में भाषा में स्वाभाविकता है। इन्होंने प्रचलित शब्दों में ही साहित्य का निर्माण किया है। इस नाटक में केवल चार ही पात्र सीता, कौशल्या, सौधातकि और दुर्मुख ही प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इनका भाषा पर अधिकार था। वे सरल व गम्भीर भावों को व्यक्त करने में समर्थ हैं। उनके श्लोकों से संगीत की ध्वनि निकलती है। इन्होने अनेक स्थलों पर अमूल भावों को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है।[25] कई स्थलों पर दो पात्र मिलकर एक ही वाक्य अथवा श्लोक को एक दूसरे के प्रति बोलते हैं जैसा कि छठें अंक में लव-चन्द्रकेतु दोनों एक ही साथ एक दूसरे के प्रति बोलते हैं, जो अस्वाभाविक सा लगता है।[26]

इस प्रकार उत्तररामचरित का संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट स्थान है। प्रायः सभी आलोचकों ने भवभूति के इस कृति को सर्वश्रेष्ठ माना है। इसमें कवि ने अपनी ऊँची कल्पना, उर्वरा प्रतिभा, मानव हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों के परिज्ञान, प्रकृति की गुरुता तथा महत्ता के प्रति संवेदना के भाव तथा चरित्र-चित्रण के कौशल का प्रचुर परिचय दिया है। यह उत्कृष्ट नाटक होते हुए भी दोष मुक्त नहीं है। सबसे बड़ा दोष यह घटना प्रधान न होकर वर्णन प्रधान है। भवभूति छोटे-छोटे प्रसंगों का भी लम्बा और विस्तृत वर्णन करते हैं, जिससे कथावस्तु के विकास में शिथिलता आ गई है। यथा- द्वितीय और तृतीय अंक में। इन दोनों अंकों ने कथावस्तु के विकास में बहुत कम ही सहायता दी है। कुछ शैलीगत दोष भी है। भवभूति प्रायः कठोर व अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा उनकी रचना लम्बे समासों वाली तथा प्रसाद गुण रहित है। परन्तु उत्तररामचरित के ये दोष इसके उत्कृष्ट गुणों के सामने छिप जाते हैं। अतएव यह नाटक करुण रस का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। साहित्यशास्त्र के नियमों के अनुसार नाटक प्रधान रस श्रृंगार अथवा वीर होना चाहिए लेकिन भवभूति ने इस नियम के विपरीत करुण प्रधान नाटक की रचना कर नाटक के क्षेत्र में एक अपूर्व क्रान्ति की है।

सन्दर्भ -

1. *उत्तररामचरित 7/20.*
2. *वही 6/31, 32 36*
3. *साहित्यदर्पण, 6/3-15*
4. *दशरूपक 1/17*
5. *उत्तररामचरित 1/5*
6. *दशरूपक 1/17*
7. *उत्तररामचरित 2/7*
8. *दशरूपक 1/13*
9. *वही 1/12*
10. *उत्तररामचरित 7/19*
11. *वही 3/19*
12. *वही 1/12*
13. *साहित्यदर्पण 6/10*
14. *ध्वन्यालोक 3/77*
15. *साहित्यदर्पण 3/222*
16. *वही 3/226*
17. *आर्यासप्तसती 1/36*
18. *उत्तररामचरित 1/28*
19. *वही 3/1*
20. *वही 3/28*
21. *वही 3/28*
22. *वही 3/33*
23. *वही 3/31*
24. *वही 2/20*
25. *वही 6/9, 10, 19*
26. *वही 6/16, 18, 19*

20

भवभूतिकृत मालतीमाधवम् की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

नन्दिता आर्या, योगेश शर्मा

नाट्य का स्वरूपलोकानुकीर्त्तन परक माना गया है। लोक के सुख-दुःख रूप संवेगों के प्रदर्शन द्वारा पुरुषार्थ सिद्धि इसका मूल प्रयोजन कहा गया है। लोक के सम्पूर्ण भावों का, जीवन के विभिन्नपक्षों का समावेश नाट्य में किया जाता है। प्रत्येक प्राणी की अपनी प्रकृति होती है, इन विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों के नाट्य में समावेश हेतु ही संभवतः विभिन्न नाट्य-भेदों की परिकल्पना आचार्यों द्वारा की गयी है। दशरूपकों के अंतर्गत नाटक का नायक राजा होता है, प्रकरण में विट, विप्र, सार्थवाह आदि मध्यम प्रकृति के पात्र होते हैं, समवकार में देवयोनि के पात्रों का सन्निवेश रहता है। इस प्रकार प्रत्येक रूपक की कथा वस्तु का संबंध भिन्न-भिन्न सामाजिक परिवेश के पात्रों से होता है। प्रेक्षक की रुचि की दृष्टि से इस वर्गीकरण को तर्क सम्मत कहा जा सकता है। कथानक के इस वैविध्य के कारण ही संभवतः नाट्य भिन्न रुचि के लोगों को आनंदित करने की योग्यता रखता है। नाट्यांतर्गत प्रकरण में यथार्थ जीवन का स्पर्श होता है, सामाजिक साम्य-वैशम्य, राग-विराग आदि का समावेश इसमें किया जाता है। यहाँ घटित घटनाक्रम में सहयोग हेतु न तो धीरोदात्त नायक को सुलभ सहायता का प्रबंध होता है और न ही देवसुलभ चमत्कार का। ऐसे में घटित होने वाला संपूर्ण क्रियाकलाप किस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होगा, यह स्वयं में रोचक विषय है। यहाँ फल प्राप्ति सैकड़ों कष्ट भोगने के पश्चात् होती है[1] इसीलिए प्रकरण दुःख प्रधान[2] रूपक माना गया है। मध्यमवर्गीय दर्शकों को शिक्षित करना प्रकरण का मुख्य उद्देश्य माना गया है।[3] वस्तुतः प्रकरण के मध्यवर्गीय पात्रों के साथ मध्यवर्गीय दर्शक का तादात्म्य स्वाभाविक भी माना जा सकता है। अपनी इस सामाजिक व सांस्कृतिक प्रासंगिकता के कारण ही प्रस्तुत शोध-पत्र में भवभूति कृत प्रकरण ग्रंथ मालतीमाधवम् के नाट्यशास्त्रीय अध्ययन को विषय के रूप में लिया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र के अंतर्गत भवभूति की इस नाट्यकृति की वस्तु, नेता, रस एवं वृत्ति तत्त्व के आधार पर नाट्यशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है। भरत के अनुसार जहाँ पर कवि द्वारा अपनी प्रतिभा के बल पर वस्तु, नायक तथा फल की उत्पत्ति की कल्पना की जाती है, वह 'प्रकरण' कहलाता है।[4] इसमें, काव्य की प्रतिपाद्य वस्तु को कवि द्वारा अपनी प्रतिभा से प्रकर्षयुक्त बनाया जाता है।[5] प्रकरण की कथा वस्तु आहार्य (कल्पित) होती है अतः नाटककार से ये अपेक्षा की जाती है कि वह कथा वस्तु हेतु प्रेरणा-प्राप्ति के लिए बृहत्कथा आदि लोक परम्पराश्रित ग्रंथों का आश्रय ग्रहण करते समय भी कथा वस्तु में नवीन कल्पनाओं के समावेश करने का प्रयत्न करे।

मालतीमाधवम् की कथावस्तु इस प्रकार है- पद्मावती नरेश के मंत्री भूरि वसु अपनी पुत्री मालती का विवाह अपने बाल्यकाल के अभिन्न मित्र देवरात के पुत्र माधव के साथ करना चाहते हैं। राजा के नर्म सचिवनन्दन भी मालती से विवाह के इच्छुक हैं तथा जिन्होंने मालती के साथ विवाह की याचना राजा के माध्यम से भूरिवसु तक प्रेषित की है। बौद्ध-सन्यासिनी कामंदकी, जो कि भूरिवसु तथा देवरात की सहपाठिनी रहीं हैं, के सार्थक प्रयत्नों से मालती तथा माधव की मुलाकात होती है तथा वे एक-दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं। एक दिन मालती और माधव एक शिवमंदिर में मिलते हैं, जहाँ पर मकरन्द मदयन्तिका की एक बाघ से रक्षा करता है और इस घटना के कारण वे दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं। राजा, नन्दन और मालती के विवाह के लिए पूर्ण प्रयत्नशील हैं, अतः माधव भी प्रेम को सफल बनाने के लिए श्मशान में जाकर तंत्र साधना करता है। उसी समय अघोर घंट नामक एक कापालिक मालती की बलि चढ़ाने के लिए उस स्थान पर आता है जहाँ माधव उसका वध कर मालती की रक्षा करता है और दोनों वहाँ से भाग जाते हैं। मकरन्द मालती का वेश धारण कर नन्दन के साथ विवाह हेतु उपस्थित होता है। विवाह के बाद वह कामातुर वृद्ध नन्दन को तिरस्कृत करता है तथा अवसर पाकर मदयन्तिका को अपने साथ ले जाता है। रात्रि में पहरा देने वाले राजपुरुषों के द्वारा मकरंद को रोका जाता है, जिसके पश्चात् वहाँ युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। इस घटनाक्रम का ज्ञान होने पर माधव भी अपने मित्र की सहायता हेतु वहाँ आ जाता है। इस भगदड़ में अघोरघंट की शिष्या कपालकुण्डला प्रतिशोध के फलस्वरूप मालती का अपहरण कर उसे अपने साथ श्री पर्वत पर ले जाती है। सौदामिनी की सहायता से माधवमालती को ढूंढने में समर्थ हो जाता है। माधव और मालती तथा मकरंद और मदयन्तिका के विवाह के साथ प्रकरण की कथावस्तु समाप्त हो जाती है।

प्रस्तुत ग्रंथ की आधिकारिक कथावस्तु का संबंध मालती तथा माधव से है क्योंकि प्रकरण का मुख्य प्रतिपाद्य इन दोनों का प्रेम-प्रंसग तथा मिलन की घटना है। मकरंद और मदयन्तिका के अनुराग तथा विवाह की घटना यहाँ प्रासंगिक कथावस्तु के रूप में वर्णित है, इन दोनों ही पात्रों के द्वारा मालती तथा माधव के प्रेम को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। बृहत्कथा में छद्म-विवाह तथा मंदिर के मार्ग से भागने के लगभग तीन आख्यान प्राप्त होते हैं। संभवतः इस प्रकरण के कथानक का आधार गुणाढ्य की बृहत्कथा हो। किन्तु ऐसा होने पर भी भवभूति द्वारा मूलकथा में विभिन्न परिवर्तन किए गये हैं, जिसके परिणाम स्वरूप मालतीमाधवम् के इतिवृत्त में मौलिकता का पुट देखा जा सकता है। इस प्रकार कथा का स्रोत लोक-परंपराश्रित होने पर भी कवि द्वारा अपनी काव्य प्रतिभा के सामर्थ्य से कथा को सर्वथा नवीन स्वरूप प्रदान करना प्रकरण की कथावस्तु के नाट्यशास्त्रीय स्वरूप का पोशक माना जा सकता है।

अर्थप्रकृति, कार्यावस्था एवं संधि योजना

कथावस्तु का नाट्य रूप में गुम्फन करने के लिए अर्थ प्रकृति एवं कार्यावस्थाओं के संगम स्थल संधियों के अंतर्गत इतिवृत्त का विभाजन किया जाता है। नाट्यांतर्गत कथावस्तु का विकास संधियों के माध्यम से होता है तथा रूपक भेद के अनुसार(05 में से) संधियों का प्रयोग कथा वस्तु हेतु किया जाता है। प्रकरण पंचसंधि- समन्वित रूपक है, यहाँ वस्तु का विकास पाँच से दस अंकों में किये जाने का शास्त्रीय नियम है।[6]

मालतीमाधवम् के प्रथम अंक में मालती और माधव के पाणिग्रहण रूप कामन्दकी की कामना में कथानक का बीज है,[7] यहाँ पर कामन्दकी द्वारा अपने समक्ष भूरिवसु एवं देवरात के द्वारा अपनी सन्तानों के लिये वैवाहिक सम्बन्ध में की गयी प्रतिज्ञा के विषय में बताया जाता है। मालती के हृदय में माधव के प्रति प्रेम

जागृत करने के लिए कामन्दकी का कुशल प्रयत्न तथा मदनोद्यान के उत्सव में माघव द्वारा मालती का प्रथम बार देखना और आकृष्ट होना आरम्भ नामक अवस्था है। इस प्रकार बीज और आरम्भ का संयोग होने से यहाँ पर मुख सन्धि है। मालतीमाधवम् के द्वितीय अङ्क के आरम्भ से चतुर्थ अङ्क के अन्त तक प्रति मुख सन्धि है। इस संधि में बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्न नामक अवस्था का मिश्रण होता है। तृतीय अंक में कुसुमाकर उद्यान में माधव द्वारा मालती का दर्शन 'बिन्दु' है। द्वितीय अंक में उद्यान में कामन्दकी और मालती का वार्तालाप तथा उन दोनों को समीप लाने का प्रयास तथा तृतीय अंक में मालती की प्राप्ति के लिये माधव का प्रयत्नशील रहना[8] प्रयत्न है। चतुर्थ अंक में मालती व माधव के प्रणय सम्बन्धों की घनिष्ठता के मध्य एक पुरुष द्वारा मदयन्तिका के लिए लाए गए नन्दन एवं मालती के विवाह के समाचार से मुख्य कथा के कुछ क्षण के लिये विच्छिन्न होने पर कामन्दकी के कथन[9] से पुनः मुख्य वस्तु की स्थापना बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति की स्थिति है।

मालती एवं माधव का मिलन रूपी जो बीज कुसुमाकर उद्यान के वृत्तांत में कृष्ट था, वह नन्दन के साथ मालती का विवाह निश्चित हो जाने पर आकृष्ट हो जाता है। चतुर्थ अंक के अंत में माधव का विलाप इस स्थिति का सूचक है।[10] बीज के दिखने के बाद पुनः नष्ट हो जाने पर उसका अन्वेषण बार-बार किया जाना गर्भसन्धि की स्थिति है। प्रकरण के आगामी दो अंकों में बीजान्वेषण हेतु पात्रों का प्रयत्न अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। मालती के साथ मिलन में उपस्थित विघ्नों से निराश माधव पंचम अंक में नर मांस विक्रय में संलग्न दिखाई देता है।[11] गर्भ सन्धि में पताका नामक अर्थ प्रकृति और प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था का योग होता है। मदयन्तिका और मकरन्द की प्रेम-कथा यहाँ पर पताका है क्योंकि यह एक बार आरम्भ होने पर मूलकथा के साथ अन्त तक चलती रहती है तथा उसकी प्रगति में सहायक भी सिद्ध होती है। प्राप्त्याशा में फल-प्राप्ति की आशा तो विद्यमान होती है किन्तु वह विघ्नों से घिरी रहती है। मालती की रक्षा हेतु माधव द्वारा अघोरघण्ट का वध यहाँ प्राप्त्याशा है, जिसके माध्यम से मालती और माधव के मिलन की सम्भावना दृढ हो जाती है। पंचम अंक में अघोरघण्ट द्वारा मालती को पकड़कर करालादेवी पर चढ़ाने के लिये उद्यत होने पर माधव द्वारा उसका वध भी पताका है चूँकि यह भी मुख्य कथा में सहयोगी है।

फलप्राप्ति का निश्चयात्मक निर्धारण अवमर्श संधि के अंतर्गत होता है। इस संधि में प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति तथा नियताप्ति नामक कार्यावस्था का योग होता है। मालतीमाधवम् के षष्ठ अंक में मकरन्द द्वारा मालती वेष में नन्दन के घर जाने की घटना तथा आगामी दो अंकों में रात्रि के अन्धकार में नन्दन-भवन से पलायन, नगर रक्षकों के साथ माधव और मकरन्द के युद्ध की घटना प्रकरी है जो कि फलप्राप्ति में सहायक है। नियताप्ति में फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। नियताप्ति की अवस्था उस समय आती है जब सौदामिनी विरहाकुल माधव के हाथों पर बकुलमाला डाल सन्देश देती है कि मालती को कपालकुण्डला के कुचक्र से बचा लिया गया और वह श्रीपर्वत पर सुरक्षित है। मालतीमाधवम् के नवे अंक तक विमर्श सन्धि है।

विभिन्न संधियों की विकासावस्था में बिखरे हुए कथा का सूत्र निर्वहण सन्धि में चमत्कार पूर्ण तरीके से एकत्रित हो जाता है। इस संधि में फलागम और कार्य का योग होता है। मालती और माधव एवं मदयन्तिका और मकरन्द के विवाहों की राजा द्वारा स्वीकृति और नन्दन द्वारा उस स्वीकृति का अनुमोदन तथा मालती और माधव का मिल नही इस प्रकरण का कार्य है। जब सभी बाधायें नष्ट हो जायँ और नई बाधाओं के लिए कोई अवकाश न हो, वहाँ फलागम की अवस्था होती है, दशम अंक में नायक नायिका का स्थायी मिलन ही इस प्रकरण का फल है। इस प्रकार फलागम और कार्य का योग होने से इस अङ्क में निर्वहण सन्धि है।

अर्थोपक्षेपक

नाट्य में इतिवृत्त का संयोजन दृश्य एवं सूच्य रूप में किया जाता है, यहाँ दृश्य से तात्पर्य अभिनेय कथावस्तु से है। सूच्य के अंतर्गत उस कथावस्तु को रखा जाता है, जिसका अभिनय या तो रस की दृष्टि से अनुचित है अथवा जो प्रयोग की दृष्टि से रंगमंच के प्रतिकूल है। इस सूच्य कथावस्तु (अर्थ) का उपक्षेपण (सूचना) करने वाला तत्त्व ही अर्थोपक्षेपक कहलाता है। सूच्यवस्त्वेषा की सूचना पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों के द्वारा दी जाती है- विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कास्य तथा अङ्कावतार।

1. विष्कम्भक- विष्कम्भक अतीत या भावी कथांशों की सूचना एक या दो मध्यम पात्रों के वार्तालाप के द्वारा देता है। यह विष्कम्भक शुद्ध तथा संकीर्ण दो तरह का होता है। शुद्ध विष्कम्भक में एक या दो मध्यम श्रेणी के पात्र होते हैं तथा मध्यम व अधम श्रेणी के पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक संकीर्ण कहलाता है।

मालतीमाधवम् नाटक के प्रथम अंक के मिश्र विष्कम्मक के द्वारा अनेक बातों की सूचना दे दी गई है, जैसे- भूरिवसु और देवरात की प्रतिज्ञा, मालती से विवाह करने की नन्दन की इच्छा पर राजा का अनुमोदन, मालती का माधव के प्रति आकर्षण तथा मालती व माधव के प्रत्येक कार्य में कामन्दकी का हार्दिक सहयोग आदि। पंचम अंक के शुद्ध विष्कम्भक में कपालकुण्डला द्वारा श्मशान भूमि में अघोरघण्ट द्वारा करालादेवी को स्त्री रत्न उपहार में देने की सूचना दी जाती है। छठे अंक के शुद्ध विष्कम्भक द्वारा माधव द्वारा अघोरघण्ट के वध व कपालकुण्डला की अपेक्षा की सूचना दी जाती है। नवम् अंक के शुद्ध विष्कम्भक में सौदामिनी द्वारा मालती के विरह में माधव की स्थिति की सूचना दी जाती है।

2. प्रवेशक- विष्कम्भक की तरह प्रवेशक द्वारा भी अतीत व भावी कथाओं की सूचना दी जाती है। प्रवेशांक में निम्न प्रकृति के पात्रों का प्रयोग होता है। प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य ही की जाती है।

मालतीमाधवम् के द्वितीय अंक के आरम्भ में प्रवेशक का प्रयोग किया गया है। जहाँ बुद्धि रक्षिता और अवलोकिता के संवाद द्वारा माधव के कुसुमाकर उद्यान पहुँचने के संदेश, कुसुमावचय के उद्देश्य से मालती का उद्यान पहुँचना, बुद्धि रक्षिता के द्वारा मदयन्तिका के हृदय में मकरन्द के प्रति प्रेम उत्पन्न करने की घटनाओं की सूचना दी जाती है। सप्तम अंक में नन्दन के साथ मालती वेश में मकरन्द का पाणिग्रहण, नन्दन के भवन में नववधू द्वारा नन्दन की भर्त्सना, मालती से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखने के लिये नन्दन की प्रतिज्ञा आदि की सूचना बुद्धि रक्षिता द्वारा प्रवेशक के रूप में दी जाती है। अष्टम अंक के प्रवेशक में कामन्दकी के नन्दन भवन से लौट आने, मालती तथा माधव के दीर्घिका तट के समीप शिला तल पर बैठने की सूचना अवलोकिता द्वारा दी जाती है।

इसके अतिरिक्त मकरन्द द्वारा कामन्दकी को मालती और माधव के मदनोद्यान में मिलन के पूर्ण वृत्तान्त की जानकारी देना, प्रेम की वेदना के कारण अस्वस्थ मालती द्वारा लवङ्गिका से माधव के विषय में और अधिक जानने की उत्सुकता आदि पूर्व वृत्तांत तथा अस्वस्थ मालती को देखने के लिए भगवती कामन्दकी के भवन में प्रवेश की आगामी घटना की सूचना प्रवेशक प्रयोग द्वारा ज्ञात होती है।

3. चूलिका- जहाँ कथावस्तु की सूचना जवनिका की ओट में बैठे हुए पात्रों के द्वारा दी जाती है, वहाँ चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक होता है। मालतीमाधवम् के तृतीय अंक में मठ से निकलकर भागते हुए सिंह की सूचना चूलिका द्वारा दी गयी है। चतुर्थ अंक में चूलिका द्वारा मालती को लेकर जल्दी आने के लिए कामन्दकी से निवेदन किया गया है।

4. अङ्कास्य- जहाँ एक अङ्क की समाप्ति के समय उस अङ्क में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुए अर्थ की सूचना दी जाय, वहाँ अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपक होता है। साहित्य दर्पणकार[12] के अनुसार प्रथम अङ्क के आरम्भ में कामन्दकी और अवलोकिता का वार्तालाप अङ्कमुख माना जाएगा क्योंकि उसमें भूरिवसु आदि की भूमिका का सङ्केत करते हुए आगामी अङ्कों की कथावस्तु का भी निर्देश किया गया है।

5. अङ्कावतार- जहाँ प्रथम अङ्क की कथावस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अङ्क की कथा वस्तु चले, वहाँ अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक होता है। इस प्रकार जब प्रथम अङ्क के पात्र किसी बात की सूचना दें तथा वे ही पात्र उसी कथावस्तु को लेकर दूसरे अङ्क में प्रवेश करें तो वहाँ अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक होता है।

मालतीमाधवम् के प्रथम अङ्क के आरम्भ में कामन्दकी व अवलोकिता के वार्तालाप के मध्य कामन्दकी का कथन 'अपि नाम कल्याणिनोर्भूरिवसु-देवरातापत्ययोरनयोर्मालतीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रह मङ्गलं स्यात्' मालती तथा माधव के अनुराग की सूचना प्रसङ्ग वश दे देता है। प्रथम अङ्क के अन्त में प्रयुक्त मकरन्द का वाक्य 'तदत्रभवती कामन्दकी नः शरणम्' आगामी अंक की कथावस्तु की सूचना देता है। द्वितीय अंक के अन्तिम वाक्य में कामन्दकी द्वारा मालती और माधव में परिचय कराने की बात कही जाती है और आगामी अंक में दोनों को मिलाकर यह कार्यपूर्ण किया जाता है।

सामान्यतः अङ्कावतार का प्रयोग अङ्क के अन्त में किया जाता है, परन्तु भवभूति ने कहीं-कहीं आगामी अङ्क के कथांश की सूचना अंक के मध्य में भी दी है। छठें अङ्क में मालती-वेशधारी मकरन्द के प्रति माधव की उपहासपूर्ण उक्ति 'कृतपुण्य एव नन्दनः यतः प्रियवयस्यमीदृशं मनसा मुहूर्तमपि कामयिष्यति' तथा सप्तम अङ्क में मदयन्तिका' क्व पुनरिदानीमस्माभिर्गन्तव्यम्' इस प्रकार द्वारा पूछे जाने पर बुद्ध रक्षिता का उत्तर 'यत्रैव मालतीगताः' अंक के मध्य में प्रयुक्त अंकावतार के उदाहरण हैं।

पात्र विधान

प्रकरण में विप्र, वणिक्, सचिव, पुरोहित, अमात्य तथा सार्थवाह (व्यापारी या सेनापति) के विभिन्न प्रकार के चरित्र वर्णित होते हैं।[13] नाट्य के सभी पात्रों के व्यसन और अभ्युदय की तुलना में सर्वाधिक व्यसन और अभ्युदय का भागी पात्र नायक माना जाता है। इसी कारण से नाटकीय पात्रों में नायक को प्रधान माना गया है। नायक नाट्य के प्रधान इतिवृत्त को विकास की ओर ले जाने वाला होता है। वही इतिवृत्त का केन्द्र है, जिसके इर्द-गिर्द सम्पूर्ण कथा वस्तु बुनी जाती है, और कथावस्तु के फल का भोक्ता (अधिकारी) भी यही होता है। प्रकरण के अंतर्गत मध्यम प्रकृति के नायक एवं नायिका का विधान है।[14]

प्रकरण के नायक के संबंध में भरतमुनि[15] का स्पष्ट कथन है कि प्रकरण का नायक न तो धीरोदात्त होगा और न ही उसमें दिव्य पात्रों का सन्निवेश होगा। वहाँ पर नायक राजा न होकर व्यापारी अथवा सार्थवाह, ब्राह्मण, सचिव, पुरोहित अथवा राज्य का उच्च पदाधिकारी होगा। प्रकरण हेतु धीर प्रशांत नायक का विधान आचार्यों के द्वारा किया गया है।[16] वणिक् और ब्राह्मण धीर प्रशांत स्वभाव के माने गए हैं।[17] धीर प्रशांत नायक महाप्रणता, गंभीरता, क्षमाशीलता तथा लालित्य गुणों से युक्त माना गया है। साथ ही उसमें निरभिमान, कृपा, न्याय परायणता एवं विनम्रता आदि गुणों की स्थिति भी मानी गयी है।

माधव इस प्रकरण का नायक है। माधव को उन सभी गुणों से युक्त कहा जा सकता है जो धीर प्रशान्त नायक हेतु आवश्यक हैं। विदर्भराज के मन्त्री देवरात का पुत्र माधव अत्यन्त सुन्दर गुणों का आगार, कलाप्रेमी, एक निष्ठ पत्नी प्रेमी तथा वीरनायक है। वह विनम्र, प्रियंवद, अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने वाला,

पवित्र मनवाला, कुलीन वंश में उत्पन्न एक युवक है। उसमें कामदेव के समान अद्वितीय आकर्षण विद्यमान है। यही कारण है कि मालतीनगर के राजमार्ग पर पर्यटन करते हुए माधव के प्रति आकृष्ट हो जाती है। स्वयं कामन्दकी ने भी माधव के सौन्दर्य की प्रशंसा की है। माधव में अलौकिक गुण विद्यमान हैं, जिसका उल्लेख करते हुए कामन्दकी प्रथम अंक में कहती हैं' अलोक-सामान्य-गुणस्तनूजः प्ररोचनार्थं प्रकटीकृतश्च'।[18]

माधव रूपवान् होने के साथ-साथ गुणवान् भी है। मालती की सखी लवङ्गिका माधव के गुणों की प्रशंसा अनेक बार मालती के सम्मुख करती है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह कामन्दकी का भी विशेष स्नेह भी प्राप्त कर लेता है। माधव का हृदय वास्तविक प्रेमी का हृदय है जिसमें मालती के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की भावना विद्यमान है। माधव अपनी प्रेमिका के निमित्त श्मशान में नर मांस विक्रय रूप बीभत्स कर्म को करने में भी संकोच का अनुभव नहीं करता है किन्तु प्रेमिका के विरह में उसके रोम-रोम से दुःख प्रकट होता है। माधव एकनिष्ठ प्रेमी है, मालती का वियोग उसे प्राणघातक प्रतीत होता है-

दलति हृदयंगाढोद्वेगं, द्विधा तु न भिद्यते वहति विकलः कायोमोहं, न मुंचति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः, करोति न भस्मसात् प्रहरतिविधिर्मर्मच्छेदी, न कृन्ततिजीवितम्।।

(मालतीमाधवम्, 09.12)

माधव प्रेमी ही नहीं वरन् उत्साह-गुण-सम्पन्न शूर वीर व्यक्ति भी है। उद्यान में सिंह द्वारा उत्पात मचाने पर वह सिंह को मारने के लिए उद्यत होता है। नगर रक्षकों से मित्र मकरन्द के घिरने पर उसकी सहायता के लिए भी तत्काल उपस्थित होता है, जहाँ उसके पराक्रम को देखकर राजा भी प्रसन्न हो जाते हैं। माधव के द्वारा कपालकुण्डला के सामने ही कापालिक अघोरघण्ट को मार डाला गया था। शृंगारप्रिय व्यक्ति स्वभावतः मधुर भाषी तथा अन्य व्यक्तियों को प्रसन्नता प्रदान करने वाला होता है, माधव भी इसका अपवाद नहीं है। माधव के अंदर ये कुलीन गुण प्रकरण के विभिन्न प्रसंगों में दृष्टिगोचर होते हैं। वह अमात्यपुत्र होने के कारण कुलीन वंशोत्पन्न भी है। इस प्रकार माधव में धीरप्रशांत नायक के सामान्य गुण साधारण रूप में विद्यमान हैं। विशिष्ट लक्षणों की दृष्टि से वह मन्त्रिपुत्र तथा ब्राह्मण भी है। इस प्रकार माधव में धीर प्रशान्त नायक के प्रायः सभी गुण प्राप्त होते हैं।

प्रकरण के प्रेम-प्रसंग में प्रेमिका के रूप में विद्यमान प्रधान नायिका अद्विज वर्णा स्त्री अथवा गणिका मानी गयी है। कुछ प्रसंगों में अभिजात वर्ण की रमणी भी नायिका हो सकती है। इस प्रकार प्रकरण में प्रधानतः दो प्रकार की नायिकाएँ होती हैं- (1) गणिका तथा (2) कुलांगना। इन्ही के आधार पर प्रकरण के तीन भेद हो जाते हैं, प्रथम-जहाँ नायिका कुलस्त्री है, द्वितीय -जहाँ गणिका नायिका है तथा तृतीय -जहाँ दोनों ही (गणिका तथा कुल स्त्री) प्रकार की नायिकाओं की स्थिति होती है। शिङ्गभूपाल[19] ने इन्ही को शुद्ध, धूर्त तथा मिश्र कहा है।

मालती माधवम् प्रकरण की नायिका मालती है जो शास्त्रीय दृष्टि से परकीया कन्या नायिका की श्रेणी में आती है। जिसका विवाह नहीं हुआ है, लज्जा और नूतन तारुण्य से युक्त ऐसी नायिका को कन्या कहते है उस कन्या को पिता आदि के अधीन होने के कारण प्राप्त नहीं किया जा सकता है फिर भी वह सुलभ है नायक छिप-छिपकर उससे प्रेम करता है, क्योंकि वह नायिका दूसरे लोगों के वश में होती है। मालती में नारी सुलभ सभी गुण विद्यमान हैं। वह अत्यंत रूपवती, गुणसम्पन्न, शील-संकोच की प्रतिमूर्ति, कुलमर्यादाओं का ध्यान रखने वाली तथा प्रेमी को चित्त में धारण करने वाली नायिका है। मालती पद्मावती नरेश के मंत्री भूरिवसु

की कन्या है। उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण शील और सौजन्य उसके स्वाभाविक गुण हैं। अपने माता-पिता के गौरव की रक्षा हेतु वह प्रेम तथा प्राणों की बलि देने के लिए भी तत्पर है। लवंगिका द्वारा बार-बार कहे जाने पर भी मालतीमाधव के साथ प्रेम विवाह करने को तैयार नहीं है। उसके हृदय में अपने माता-पिता के लिये पर्याप्त स्थान है वह उनके विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहती है। माधव के प्रति प्रेमभाव होने पर भी वह प्रेमविवाह के पक्ष में नहीं है।

इस आदर्शकन्या का सौन्दर्य भी अनुपमेय है। मालती के अनिन्द्य सौन्दर्य का वर्णन माधव तथा कामन्दकी के द्वारा अनेकशः किया गया है। सूक्ष्मतापूर्वक मालती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए माधव कहता है -

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनंवा।
तस्याः सखे! नियतमिन्दुकला-मृणाल-ज्योत्स्नादि-कारणमभून्मदनश्चवेधाः।।

(मालतीमाधवम्, 01.22)

मालती प्रारम्भ से ही माधव के प्रति अनुरक्त है और मृत्युकाल उपस्थित होने पर भी उसी का स्मरण करती है।[20] किन्तु माधव के प्रति मालती का अतिशय प्रेम किसी भी स्थिति में शालीनता का उल्लंघन नहीं करता है। नगरदेवता के मन्दिर में निज- सखि के धोखे में जब वह माधव का आलिङ्गन कर लेती है तब वास्तविक वस्तु-स्थिति का ज्ञान होते ही वह भयभीत होकर सहसा पीछे हट जाती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि सौन्दर्य एवं शीलगुणों से युक्त कन्या नायिका के रूप में मालती के चित्रण में नाटककार ने सफलता प्राप्त की है।

मालती एवं माधव के अतिरिक्त प्रकरण में मकरंद, मदयन्तिका, कामंदकी, सौदामिनी, अवलोकिता, लवंगिका, बुद्धिरक्षिता, अघोरघण्ट, कपालकुण्डला, नन्दन, राजा, भूरिवसु तथा देवरात आदि पात्र प्रमुख हैं।

रस योजना- प्रकरण में रस-योजना पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ शृंगार की प्रधानता के विषय में आचार्यों में मतभेद है। शिङ्ंग भूपाल तथा विश्वनाथ ने प्रकरण में शृंगार की प्रधानता का प्रतिपादन किया है।[21] किन्तु नाट्य दर्पणकार ने क्लेशातिशयता के कारण प्रकरण में शृंगाररस की प्रधानता को अस्वीकार किया तथा कैशिकी के प्रयोग-बाहुल्य का निषेध किया है।[22]

मालतीमाधवम् शृङ्गार रस प्रधान प्रकरण है। प्रथम अङ्क में कामन्दकी के कथन द्वारा ज्ञात होता है कि राजमार्ग पर विचरण करता हुआ माधव मालती को साक्षात् कामदेव प्रतीत होता है जिसने मालती को काम संतप्त कर दिया है।[23] इसी प्रकार माधव भी मालती के प्रति आकर्षित है, मालती भी प्रथम दर्शन में ही माधव के नेत्रों में अतिशय आनन्द उत्पन्न कर उसके अन्तःकरण को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।[24] कुसुमाकर उद्यान में मालती को देखकर माधव चित्तहर्षातिरेक से युक्त हो जाता है।[25] वहीं माधव का दर्शन मालती को धैर्यच्युत कर देता है।[26] आरम्भिक तीन अंक में संयोग शृंगार के अनेक उद्धरणों में नायक, नायिका की चेष्टाओं, क्रियाओं और भावों के द्वारा शृंगाररस की अनुभूति स्वतः ही हो जाती है।

संयोगशृंगार के साथ-साथ ही मालतीमाधवम् में वियोग शृंगार का भी पर्याप्त वर्णन मिलता है। मालती के वियोग के स्वल्प क्षण भी माधव के लिए असहाय हैं। नवम अंक में कपालकुण्डला द्वारा मालती का अपहरण कर लिये जाने पर माधव की वियोगावस्था का अत्यंत मार्मिक उल्लेख प्रकरण के नवम अंक में प्राप्त होता है, जहाँ माधव अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हुए कहता है -

प्रियमाधवे किमसि मय्यवत्सला, ननुसोऽहमेव यमनन्दयत्पुरा ।
स्वयमागृहीतकमनीयकङ्कणस्तवमूर्तिमानिवमहोत्सवः करः ।।

(मालतीमाधवम्, 09.09)

मालती को प्राप्त न कर पाने के कारण निराश माधव अपने जीवन को निःसार पाता है तथा उसे स्मरण करते हुए कहता है-

दलितहृदयंगाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते, वहति विकलः कायोमोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः, करोति न भस्मसात्, प्रहरतिविधिर्मर्मच्छेदी, कृन्तति जीवितम्।।

(मालतीमाधवम्, 09.12)

इस प्रकार अपनी व्यथा का वर्णन करता हुआ माधव जीवन की आशा छोड़ चुका है। अपने जीवन को समाप्त करने को उद्यत माधव को कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी द्वारा रोक लिया जाता है और मालती के जीवित तथा सुरक्षित होने के विषय में बताया जाता है। तत्पश्चात् दशम अंक में मालती एवं माधव के मिलन में संयोग शृंगार का पल्लवन देखने को मिलता है। इस प्रकार मालतीमाधवम् में शृंगार रस का परिपाक भवभूति द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

नवम अंक में माधव की विरहाकुल दशा शोक के भाव को उत्पन्न करते हुए करुण रस का संचार भी करती है। करुण का संचार प्रकरण में तभी से प्रारम्भ हो जाता है जब लवंगिका और मदयन्तिका को यह ज्ञात होता है कि मालती का कहीं पता नहीं लग रहा है। मालती के इस प्रकार गायब हो जाने से माधव अत्यन्त व्यथित है। फलतः उसके विलाप में मोह, निःश्वास, रुदन आदि द्वारा करुणरस की ही अभिव्यक्ति हुई है। दशम अंक के प्रारम्भ में भी करुणरस की स्थिति है।

पंचम अंक के अन्तर्गत श्मशान वर्णन में बीभत्स रस का संयोजन कवि द्वारा किया गया है।[27] इसी अंक में माधव और अघोरघण्ट की उक्तियों में वीररस और रौद्र रस का संचार है। मालती और कपालकुण्डला के प्रति माधव और अघोरघण्ट की उक्तियां भी वीररस को अभिव्यक्त करती हैं। मकरन्द के द्वारा सिंह-वध भी वीररस का प्रसंग है। वीर के साथ ही हास्य के समायोजन में भी मकरंद की भूमिका है। नन्दन से विवाह के अवसर पर मकरन्द के द्वारा मालती का रूप धारण करने में हास्य रस का पुट देखा जा सकता है।

कथावस्तु की परिसमाप्ति के अवसर पर अद्भुत रस की योजना का शास्त्रीय नियम है। कथावस्तु के आदि में निर्दिष्ट कार्य की सिद्धि के अवसर पर घटित होने वाली आचर्यजनक घटनाओं के कारण अंत में अद्भुत रस की योजना उपयुक्त भी है। मालतीमाधवम् के संदर्भ में भी यह स्थिति देखने को मिलती है। कपालकुण्डला द्वारा मालती के अपहरण की घटना का ज्ञान होने पर नवें अंक में माधव प्राणोत्सर्ग हेतु उद्यत होता है। माधव नदी के प्रवाह में उतरने ही वाला होता है जब सौदामिनी प्रवेश करती है और मालती के जीवित तथा सुरक्षित होने की बात से उसे अवगत करवाती है। रंगमंचीय प्रयोग के अवसर पर अभिनीत यह दृश्य सहज ही सहृदय को आश्चर्ययुक्त करने की सामर्थ्य रखता है। इस प्रकार रस-निष्पत्ति की दृष्टि से मालतीमाधवम् सफल कृति है ।

वृत्तिप्रयोग

नाट्यप्रयोग के अंतर्गत वृत्ति को नायक के व्यापार के रूप में व्याख्यायित किया गया है। नाट्यान्तर्गत सम्पूर्ण व्यापार इन्ही के अधीन माना गया है। वृत्ति से अभिनय की उत्पत्ति का उल्लेख भरतमुनि द्वारा किया

गया है। रस विशेष के संदर्भ में वृत्ति विशेष का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार कैशिकी वृत्ति हास्य तथा शृंगार रस बहुल कही गयी है।[28] इसी प्रकार सात्त्वती वृत्ति वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस के समाश्रित, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक रसों में आर भटीवृत्ति तथा अद्भुत एवं करुण रस में भारती वृत्ति के प्रयोग का विधान है।

भारती वृत्ति वस्तुतः वाक्-प्रयोग के सभी स्थानों पर विद्यमान होती है। मालतीमाधवम् की प्रस्तावना में इस वृत्ति का प्रयोग हुआ है। शृङ्गार प्रधान होने के कारण मालतीमाधवम् में सात्त्वती और आरभटी का प्रयोग सिद्धांततः प्रतिकूल है किन्तु भवभूति द्वारा कथावस्तु में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया गया कि प्रकरणान्तर्गत इन दोनों वृत्तियों के प्रयोग को अनुचित नहीं कह सकते हैं। सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति का प्रयोग माधव और अघोरघण्ट के युद्ध-प्रसङ्ग में देखने को मिलता है। कैशिकी वृत्ति के चारों भेदों के उदाहरण भी मालतीमाधव में उपलब्ध होते हैं। मदनोद्यान में माधव को देखकर सखियों का उसकी ओर सङ्केत कर किया गया हास-परिहास 'नर्म' नामक कैशिकी वृत्ति का अंग है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में कवि द्वारा सभी वृत्तियों का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः नाटक एवं प्रकरण में चतुर्विध वृत्तियों के प्रयोग का शास्त्रीय विधान भी है।

नाट्यकला के उत्कर्ष की दृष्टि से प्रकरण की कल्पना महत्त्वपूर्ण मानी गयी है क्योंकि इसमें कवि की प्रतिभा के लिए अधिक अवकाश रहता है। यथार्थोन्मुखी होने के कारण प्रकरण सामाजिक जीवन के स्रोत से अनुप्राणित रहता है। यहाँ फल-प्राप्ति हेतु पात्र को विभिन्न संघर्षों से गुजरना होता है। प्रकरण के इस सैद्धांतिक स्वरूप के आलोक में मालतीमाधवम् की रचना को भवभूति का सफल प्रयोग माना जा सकता है। यद्यपि नाट्यशास्त्रीय विधानों से भिन्न मार्ग का अनुसरण करने में भवभूति की लेखनी प्रयत्नशील रही है, परंपरा के निर्वहन के साथ ही उनकी कृतियों में कतिपय मौलिक प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। किन्तु प्रस्तुत प्रकरण में भवभूति द्वारा कथावस्तु, पात्र, रस आदि विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में परंपरागत मान्यताओं का सफल अनुप्रयोग किया गया है।

विद्वानों ने मालतीमाधवम् पर मृच्छकटिकम् के प्रभाव को माना है। इस मत को स्वीकार करने पर भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भवभूति द्वारा शूद्रक का अंधानुकरण नहीं किया गया है। शूद्रक द्वारा अपनी कृति में शृंगार एवं हास्य रस का प्रभावशाली प्रयोग किया गया है। भवभूति द्वारा अपने प्रकरण ग्रंथ में प्रहसनात्मक प्रसंगों के स्थान पर वीर तथा रौद्रादि रसों का चयन किया गया है। भवभूति गंभीर प्रकृति के कवि हैं जिसका प्रभाव उनकी कृतियों पर भी दृष्टिगोचर होता है, उनके द्वारा अपनी किसी भी कृति में विदूषक पात्र का समावेश नहीं किया गया है।

नाट्यशास्त्रीय नियमों के आलोक में मालतीमाधवम् की समीक्षा के उपरांत निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भवभूति की यह नाट्य-कृति कवि के कवित्व की परिचायक होने के साथ ही परवर्ती नाटककारों के काव्य हेतु प्रेरणा-स्रोत भी है।

सन्दर्भ -

1. *क्लेशाढ्यम् इति दुःखदीप्तम्। अपायशतान्तरितफलत्वादिति एतावल्लक्षणम्। नाट्यदर्पण, 02.02 की वृत्ति*
2. *दास श्रेष्ठि विटैर्युक्तं क्लेशाढ्यं तच्च सप्तधा। वही,02.02*
3. *स्वतंत्र कलाशास्त्र, भाग 01, पृ. 462*
4. *यत्र कविरात्मशक्त्या वस्तु शरीरं च नायकश्चैव।*
   औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद् बुधैर्ज्ञेयम्।। नाट्यशास्त्र,18.45

5. वस्त्वादिकं काव्याभिधेयमात्मशक्त्य। प्रकुरूते यत्काव्येन तत्प्रकरणमिति। नाट्यशास्त्र (अभिनवभारती टीका सहित) भाग 03, पृ. 667
6. प्रकरण-नाटकविषये पंचाद्या दश परास्तथा चैव। वही, 18.58
7. मालतीमाधवम्, 01.10
8. वही, द्वितीय अंक
9. वही, 04.05
10. हन्त, सर्वथा संशयितजन्मसाफल्यःसंवृत्तोऽस्मि। वही, चतुर्थ अंक
11. वही, 05.12
12. साहित्यदर्पण, 06.59-60 का वृत्ति भाग
13. विप्रवणिक्सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
चरितं यन्नैकविधं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम। नाट्यशास्त्र, 18.48
14. अत्र एवात्र नायिकौचित्येन नायकोऽपि मन्दगोत्र एवं। नाट्यदर्पण, 02.02 की वृत्ति
15. नोदात्तनायककृतं न दिव्यचरितं न राजसम्भोगम्।
बाह्यजनसंप्रयुक्तं तज्ज्ञेयं प्रकरणं तज्ज्ञैः।। नाट्यशास्त्र, 18.49
16. सापायधर्मकामार्थपरा धीरप्रशान्तकः। साहित्यदर्पण, 06.225
17. देवा धीरोद्धत्ता धीरोदात्ताः सैन्येश-मन्त्रिणः।
धीरशांता वणिग्-विप्राः, राजानस्तु चतुर्विधाः।। नाट्यदर्पण, 01.07
18. मालतीमाधवम्, 01.11
19. तत्तु प्रकरणं शुद्धं धूर्तं मिश्रं च तत् त्रिधा। रसार्णवसुधाकर, 03.221
20. मालतीमाधवम्, 05.15
21. रसः प्रधानः शृंगारः। रसार्णवसुधाकर, 03.220
शृंगारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्। साहित्यदर्पण, 06.225
22. शेषं नाटकवत् सर्वं कैशिकीपूर्णतां बिना। नाट्यदर्पण, 02-04
23. मालतीमाधवम्, 01.16
24. वही, 01.24
25. वही, 03.05
26. वही, 03.10
27. वही, 05.16
28. हास्यशृंगारबहुला कैशिकी परिचक्षिता। नाट्यशास्त्र, 20.73-74

21

उत्तररामचरितम् के आलोक में महाकवि भवभूति का शब्द शास्त्रीय पाण्डित्य

अनुश्रुति दुबे

'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'[1] महाभाष्यकारीय वचन के अनुसार शब्द का यथोचित प्रयोग अभ्युदय और निःश्रेयस प्रदान करता है। संस्कृत साहित्य में आर्षकाव्यों के अनन्तर आज तक के रचे गये लौकिक साहित्य में महाकवि भवभूति और उनकी रचनाओं में अन्यतम 'उत्तररामचरितम्' नाट्यग्रन्थ का अनितर साधारण वैशिष्ट्य है। महाकवि भवभूति के जीवन वृत्त के प्रकाशक वाक्य में उन्हें पद वाक्य प्रमाणज्ञ कहा गया है।

अस्ति दक्षिणपथेपद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित् तैत्तिरीयाः कश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः धृतव्रतासोमपायिनः 'उदुम्बर' नामानोब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। यदमुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पंचमः सुगृहीतनामानोभट्टगोपालस्यपौत्रः पवित्रकीर्तेः नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलांछनः पदवाक्य प्रमाणज्ञो भवभूतिर्नामजातूकर्णीपुत्रः।[2]

इस तरह यह स्पष्ट होता है कि 'श्रीकण्ठ' नाम पितृ प्रदत्त है जबकि भवभूति इनकी उपाधि है- श्रीकण्ठपदलांछनः पितृकृतनामेदम्। भवभूतिर्नाम 'साम्बापुनातु भवभूति पवित्रमूर्तिः' श्लोक रचना सन्तुष्टेन राज्ञा भवभूति रिति ख्यापितः। (वीरराघव) वीरराघव ने श्रीकण्ठ के साहित्यिक नाम भवभूति नाम की अन्वर्थता पर चिन्तन पूर्वक यह भी कथन किया है कि भव अर्थात् भगवान् शिव ने स्वयं भिक्षु रूप में उपस्थित होकर श्रीकण्ठ को भूति (ऐश्वर्य) प्रदान किया- किंचास्मै कवये ईश्वर एवभिक्षुरूपेणागत्य भूतिं दत्तवानितिवदन्ति। एवं च भवात् भूतिर्यस्येति भवभूति रित्यन्वर्थ इत्याहुः।

गुरु गौरव- शब्द प्रयोग में कुशल भवभूति ने अपने गुरु ज्ञान निधि से सभी शास्त्रों का तलावगाही बोध प्राप्त किया था- **श्रेष्ठः परमहंसानांमहर्षीणां यथाङ्गिराः। यथार्थनामाभगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः।।**[3]

गुणैः सतां न ममकोगुणः प्रख्यापितोभवेत्। यथार्थनामाभगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः।।[4]

गुरु ज्ञाननिधि के आशीर्वाद से अन्य शास्त्रों सहित व्याकरण, न्याय, मीमांसा में अप्रतिहत गति रखने वाले भवभूति का पाण्डित्य उनके द्वारा रचित साहित्य से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है-

यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च, ज्ञानं तत्कथनेन किं नहिततः कश्चिद् गुणोनाटके।
यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतोगौरवं, तच्चेदस्ति ततस्तदेवगमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः।[5]

ग्रन्थरचना- महाकविभवभूतिरचितमालतीमाधवम्, महावीरचरितम् एवम् उत्तररामचरितम् नाटकों में से पद्मपुराण की कथा को आधार बनाकर सज्जीकृत 'उत्तररामचरितम्' सात अंकों में व्यवस्थित है। पात्रों के रूप प्रयुक्त भाषा भवभूति के गम्भीर शास्त्रालोडन का परिणाम है। यहाँ अष्टावक्र, वाल्मीकि, ब्रह्मचारी तथा बटुवर्ग की भाषा उनके आश्रमों के अनुरूप है। जनक, वसिष्ठ आदि की भाषा में दार्शनिक चिन्तन की झलक मिलती है।

भवभूति का शाब्दिकस्वरूप- भवभूति के सम्बन्ध में महाभाष्यकार का यह वचनपूर्ण रूप से चरितार्थ होता है कि- यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलोविशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहार काले सोऽनन्तमाप्नोतिजयं-[6]

'उत्तररामचरितम्' नाटक की निर्विघ्नपूर्णता के लिये महाकवि भवभूति विद्या की अधिष्ठात्री देवता सनातनी वाग्देवी को प्रणाम निवेदन पूर्वक यह प्रार्थना करते हैं कि- प्राचीन वाल्मीकि आदि कवियों को प्रणाम पूर्वक यह कामना है कि हम ब्रह्माजी की अंशभूत सरस्वती (वाणी) को प्राप्त करें-

इदं कविभ्यःपूर्वेभ्यः नमोवाकं प्रशास्महे। विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।[7]

यहाँ 'नमोवाकम्' में नमः वाकम् दो पद हैं। यहाँ परिभाषणार्थक वच् धातु से भावअर्थ में घञ् प्रत्यय और कुत्वविधान से वाक् शब्द सिद्ध हुआ है। कतिपय विद्वान् 'नम इति उक्त्वा नमोवाकम्' यह णमुलूप्रत्ययान्त छान्दस प्रयोग मानकर 'नमः उक्त्वा' इस अर्थ को ग्रहण करते हैं। सिद्धान्त कौमुदीकार भट्टोजि दीक्षित अदादिगण में 'आङः शासुइच्छायाम्' आङ् पूर्वत्वंप्रायिकम् तेन नमो वाकंप्रशास्महे इति सिद्धम्' मानते हैं। इस पर बालमनोरमाकार वासुदेव दीक्षित और तत्त्व बोधिनीकार ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने अपना विचार प्रस्तुत किया है- **आङ परः शास् धातुरिच्छायामित्यर्थः नमोवाकम्। वचेर्घञ्िवाक्, नमश्शब्दस्य वचनं कुर्महे इत्यर्थः, धातूनामनेकार्थत्वात्। नमोवाकमिति- 'नमस्ते रुद्रमन्यवे' इत्यादिनमोवचनम्। वचेर्घञ्चजोः इतिकुत्वम्।**[8]

जब अष्टावक्र जी सीतामाता को गुरु वसिष्ठ का 'वीरप्रसविनीभूयाः' यह आशीर्वादात्मक सन्देश सुनाते हैं तो वहाँ उपस्थित राम आनन्द विभोर होकर कहते हैं कि-

लौकिकानां हिसाधूनामर्थंवागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।[9]

अर्थात् लौकिक सत्पुरुषों की वाणी तो अर्थ का अनुसरण करती है किन्तु अतीत अनागत वर्तमान का हस्तामलकवत् साक्षात् दर्शन करने वाले ऋषियों की वाणी का अर्थ स्वयं अनुगमन करता है। यहाँ महाकवि भवभूति के द्वारा प्रयुक्त साधूनाम्, ऋषीणाम्, आद्यानाम् पद उनके शब्द शास्त्रज्ञ होने का ज्ञान कराते हैं। महाभाष्यकार के शब्दस्यज्ञाने धर्मः आहोस्वित् प्रयोगे... शब्दस्य ज्ञानपूर्वके प्रयोगे धर्मः वचन यहाँ चरितार्थ हुआ है। महाकवि ने 'साधु' शब्द के प्रयोग से लौकिक सत्पुरुष को ध्यान में रखकर प्रयोग किया है, क्योंकि ये कदाचित ऐसे ही दूसरे व्यक्ति को प्रसन्नता प्रदान करने की दृष्टि से भी आशीर्वाद को उड़ेल देते हैं। किन्तु दूसरे ऋषिजन 'ऋषिर्दर्शनात्' अपनी साधना के बल पर जो आशीर्वाद देते हैं वह निश्चित रूप से फलीभूत होता है। जैसे कि इसी ग्रन्थ के चतुर्थ अंक में भगवती अरुन्धती का वचन है -

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मां संशयोभूत्।
भद्राह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषिक्तानैतेवाचं विप्लुतार्थावदन्ति।।[10]

अर्थात् ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले ब्राह्मणों के कथन पर सन्देह नहीं करना चाहिये, क्योंकि इनकी वाणी में सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण करने वाली लक्ष्मी का निवास होता है और ये कभी भी मिथ्या वाणी का व्यवहार नहीं करते हैं। यहाँ भवभूति के चिन्तन में श्रुतिवाक्य की स्पष्ट रूप से छाया पड़ रही है -

सक्तुमिवतितउनापुनन्तो धीरामनसावाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानतेभद्रैषां लक्ष्मीनिर्हिताऽधिवाचि।।[11]

अर्थात् चलनी से छाने गये सत्तू की तरह स्वस्थ चित्तजन अपने प्रकृष्ट ज्ञान के आधार पर मन से वाणी को पवित्र करके प्रकृति प्रत्यय विभाग ज्ञानपूर्वक बोलते हैं। उस स्थिति में समान विचार वाले होकर वे वाणी से सहृदयता को प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि इनकी वाणी में कल्याणप्रदा लक्ष्मी का निवास होता है।

यहाँ व्याकरण सिद्धान्त सुधानिधिकार का भी मन्तव्य द्रष्टव्य है-**यथा चालन्यासक्तूनांतुषनिष्कासनेन सारं गृह्णन्ति तथाऽपशब्देभ्योवाचं पृथक्कृत्य जानन्तीत्यर्थः। अत्र ज्ञान-मात्र-प्राप्ये दुर्गम-मार्गरूपेवाग्विषये सखायः समानख्यातयः अविद्यानाशेन द्वैत निवृत्त्या सर्वमेकमिति मन्यमानाः सख्यानिसायुज्यानिभजन्ते....।**

महाकवि भवभूति ने आत्रेयी के मुख से ऋषि वाल्मीकि के समक्ष पद्मयोनि ब्रह्माजी के द्वारा उपस्थित होकर रामचरित के वर्णन हेतु निर्देश देते हुए कहवाते हैं- तेन हि पुनः समयेनतं भगवन्तमा विर्भूत शब्द ब्रह्म-प्रकाश कृषिमुपसंगम्य भगवान् भूतभावनः परमयोनिरवोचत-ऋषे! प्रबुद्धोऽसिवागात्मनिब्रह्मणि, तद् ब्रूहि रामचरितम्, अव्याहत-ज्योतिरार्षं ते चक्षुःप्रतिभातु। आद्यः कविरसि।[12]

यहाँ भवभूति ने वरुण के दशम पुत्र प्राचेतस ऋषि वाल्मीकि को 'आविर्भूत प्रकाश' विशेषणवचन से अलङ्कृत किया है, जो उनके व्याकरण दर्शन के महान् ज्ञाता होने की ओर इंगित करता है। व्याकरण सबसे प्राचीन आस्तिक दर्शन है। यहाँ शब्द को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है-

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[13]

इससे पूर्व बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक याज्ञवल्क्य संवाद में भी शब्द को परम ज्योति कहा गया है-

जनको हि याज्ञवल्क्यं पृच्छति अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रस्यास्तमिते शान्ते चाग्नौ किं ज्योतिरेवायं पुरुष इति। उत्तरयति याज्ञवल्क्यः वागेवास्य ज्योतिर्भवतीति।[14]

इसी प्रकार विदेह जनक के द्वारा अरुन्धती से प्रणाम निवेदन किये जाने पर उनके द्वारा दिया जाने वाला आशीर्वादात्मक वचन भी भवभूति के वैयाकरण होने को प्रमाणित करता है-अक्षरंते ज्योतिः प्रकाशताम् ।यहाँ महाभाष्य पर दृष्टिपात करने पर अक्षर का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट होता है-

अथ किमिदमक्षरमिति। नक्षीयते नक्षरतीति वा॰क्षरम्।।
अश्नोतेर्वासरो॰क्षरम्। अश्नोतेर्वापुनरौणादिकः सरनूप्रत्ययः।।

अश्नुत इत्यक्षरम्[15] व्यापक रूप विद्यमान रहने वाला वह ब्रह्म ही अक्षर पदभाक् है, क्योंकि इसके अभाव में सम्पूर्ण सृष्टि ही अन्धकारमय है-

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्। यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।[16]

महाकवि भवभूति की क्रियापद के प्रयोग में भी कुशलता असन्दिग्ध है।

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक के इक्कीसवें श्लोक'नीरन्ध्रबालकदली..सीताततोहरिणकैर्नविमुच्यते स्म'[17] में 'विमुच्यते स्म' क्रियापद सिद्धान्तकौमुदी के लकारार्थ प्रकरण की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। यहाँ लट् स्मे[18] सूत्र लिट् का अपवाद है। 'स्म' अव्यय है जो भूतकाल का द्योतक है। इसके योग में लिट् के विषय में लट् लकार हुआ है।

महाकवि भवभूति ने अपने इस महनीय ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करते हुए 'भरतवाक्यम्' के द्वारा अन्त में शब्द ब्रह्म के उपासक महर्षि वाल्मीकि, स्वयं भवभूति तथा अन्य कवियों द्वारा विद्वज्जन को रामकथा रूपी अमृत का पान अर्थात् चरित्र के स्वरूपगानपूर्वक आनन्द प्राप्त करने की बात कही है -

पापेभ्यश्चपुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा, मांगल्या च मनोहरा च जगतो मातेवगंगेवच।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः, शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतांप्राज्ञस्य वाणीमिमाम्।[19]

यहाँ सुप्रयुक्त 'शब्दब्रह्मविदः' शब्द ब्रह्म के ज्ञाता के रूप में महर्षि वाल्मीकि के साथ स्वयं भवभूति को भी समझा जा सकता है। जैसा कि प्रसिद्ध है-

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरं च यत्।
शाब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।[20]

इस प्रकार 'उत्तरामचरितम्' के परिशीलन से स्थालीपुलाक न्याय से व्याकरण विषयक तत्त्वों पर दृष्टिपात करके निश्चित होता है कि महाकवि भवभूति साहित्य आदि अन्य शास्त्रों के पारदृश्वा विद्वान् होने के साथ शब्द शास्त्र के भी उत्कृष्ट कोटि के पण्डित थे।

सन्दर्भ

1. *व्याकरणमहाभाष्य - एकः पूर्वपरयोः (6/1/84) सूत्रस्थ*
2. *महावीरचरित-प्रस्तावना*
3. *महावीरचरितम् 1/5*
4. *मालतीमाधवम् 1/9*
5. *मालतीमाधव 1/16*
6. *व्याकरणमहाभाष्य पस्पशाह्निक*
7. *उत्तररामचरितम् 1/1*
8. *वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी अदादिप्रकरण बालमनोरमा, तत्त्वबोधिनी*
9. *उत्तररामचरितम् 1/10*
10. *उत्तररामचरितम् 4/18*
11. *उत्तररामचरितम् 4/18*
12. *व्याकरणमहाभाष्य-परस्पशाह्निक*
13. *वाक्यपदीय 1/1*
14. *बृहदारण्यक उपनिषद् 4/1-5*
15. *व्याकरणमहाभाष्य प्रथमपाद द्वितीय आह्निक*
16. *काव्यादर्श*
17. *उत्तररामचरितम् 3*
18. *अष्टाध्यायी 3/2/118*
19. *उत्तररामचरितम् 7/21*
20. *ब्रह्मबिन्दूपनिषद्*

22

भवभूति का वागर्थ विमर्श

राघवेन्द्र शर्मा

पदवृत्ति के मर्मज्ञ, वागर्थविलासकार महाकवि भवभूति का स्थान सभी कवियों में अग्रणी है। किसी अज्ञात कवि ने उनकी प्रशस्ति में लिखा है - कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः। भवभूति ने अपने पद-वाक्य-प्रमाणज्ञता का उल्लेख महावीरचरितम् नाटक के प्रारंभ में किया है। तदामुष्यमाणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पंचमः सुगृहितनामनो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेः नीलकंठस्यात्मसंभवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञः भवभूतिर्नामजतु-करणीपुत्रः कविमित्रधेयमस्माकमिति भवन्तो विदां कुर्वन्तु।[1] काव्यशास्त्र परंपरा में कवियों का कर्म ही काव्य कहलाता है। यह काव्य रूप कर्म ही उसका वागर्थ विलास है। आचार्य भामह शब्दार्थ के साहित्य को काव्य कहते हैं। शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।[2]

वागर्थ स्वरूप - शब्दार्थ की सुंदर व्याख्या काव्यमीमांसाकार करते हैं। उनके मत में जो व्याकरण शास्त्र से प्रकृति प्रत्यय द्वारा सिद्ध किया जाता है उसे शब्द कहते हैं। निरुक्त, निघण्टु, कोश, व्यवहार आदि के निर्देश के अनुकूल शब्द जिस वस्तु का संकेत करता है वह उसका अभिधेय होता है। शब्द और अर्थ दोनों मिलकर पद कहलाते हैं। व्याकरणस्मृतिनिणह्लतः शब्दो निरुक्तनिघट्ण्वादिभिर्निर्दिष्टस्तदभिधेयोऽर्थस्तौ पदम्।[3] यह पद सुब्वृत्ति समासवृत्ति तद्धितवृत्ति तिङ्वृत्ति के भेद से पाँच प्रकार का होता है। तस्य पञ्चवृत्तयः सुब्वृत्ति समासवृत्ति तद्धितवृत्ति कृद्वृति तिङवृत्तिश्च।[4] इन वृत्तियों का सुन्दरविन्यास भवभूति उत्तररामचरितम् के इस पद्य में करते हैं-

अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकमलदन्त-कुड्मलाग्रम्।
वदनमलकं शिशोः स्मरामि स्खलदसमञ्जयमञ्जुजल्पितं ते।।[5]

वागर्थ विलास - महाकवि भवभूति इस वागर्थ विलास में सिद्धहस्त हैं। उनके रूपकों में आद्योपान्त वागर्थविलास परिलक्षित होता है। काव्यमीमांसाकार यायावरीय राजशेखर इस वागर्थ को वाग्लव नाम से अभिहित करते हैं। जिसके अंतर्गत शब्दार्थ की सूक्ष्म मीमांसा की जाती है। इयं सा काव्यमीमांसा मीमांस्यो यत्र वाग्लवः।[6] महाकवि भवभूति ने वागर्थ के सूक्ष्म मीमांसास्वरूप वाग्लव को अपनी रचनाओं में आद्यस्थानीय प्रस्तुत करने की दृष्टि से उत्तररामचरितम् के आदि में पूर्व कवियों की वागर्थरूप वाग्देवी की स्तुति की है। काव्य की सिद्धि के लिए वागर्थ की प्राप्ति अभीष्ट होती है। कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के मंगलाचरण में वागर्थ की सिद्धि के लिए पार्वती परमेश्वर की वंदना की थी। **वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।**[7]

आचार्य मम्मट वागर्थ विलास स्वरूप कवि की भारती को सर्वोपरि मानते हुये कहते हैं कि -

नियति-कृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्। नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।[8]

वागर्थ स्वरूप कवि की भारती की प्राप्ति के लिए कालिदास की परम्परा का अनुसरण करते हुए भवभूति उत्तररामचरितम् के आदि में वाग्देवता की वंदना करते हैं- **इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमो वाकं प्रशास्महे। विन्देम देवतां वाचममृतात्मनः कलाम्।।**[9]

उत्तम कवि के लिए अपेक्षित है कि उसका वागर्थ पर समान अधिकार हो, वाग्देवी स्वयं उसके वश में हो, भवभूति अपनी इसी वाग्वैदुष्य स्वरूप वैशिष्ट्य को उत्तररामचरितम् के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं जहाँ वह स्वयं को ब्रह्मा और वाग्देवी सरस्वती को अपनी वशवर्तिनी के रूप में उल्लेखित करते हैं। **यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्यानुवर्तते** ।[10] **सिद्धवाग् -** भवभूति सिद्धवाक् का सुंदर विन्यास प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि अलौकिक साधुओं सत्पुरुषों की वाणी अर्थ के पीछे चलती है, परंतु भूत, भविष्य और वर्तमान वेत्ता आद्य ऋषियों की वाणी के पीछे-पीछे अर्थ चलता है। उनकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं होती। जैसा कि भवभूति स्वयं कहते हैं कि-

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति।।[11]

भावानुरूप वागर्थ - भवभूति का वागर्थ विन्यास भावानुसारी है। माधुर्य गुण के प्रसंग में माधुर्यगुणापेक्षित कोमलकान्तपदावली, कोमलवर्णरचना असमासा संघटना आदि का प्रयोग बहुत ही सुंदर ढंग से करते हैं।

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्यमुग्धां तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।[12]

भवभूति कोमल भावों को ऐसे असमस्त पदावली के प्रयोग से सार्थक सिद्ध करते हैं। कठोर भावों के लिये ओजोगुणानुबद्ध कटुवर्णपदावली एवं दीर्घसमासा संघटना का प्रयोग सहृदयों के हृदय को वागर्थ द्वारा चमत्कृत करते हैं।

हृन्मर्मभेदीपतदुत्कटकङ्कपत्रसंवेगतत्क्षण-तस्फुटदङ्गभङ्गा।
नासाकुटीरकुहरद्वतुल्यनिर्यदुदबुद्बुदध्वलदसृक्प्रसरा मृतैव।।[13]

इस तथ्य को ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन भी ध्वन्यालोक में स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि -

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता। तथा दीर्घसमासेति त्रिधा संघटनोदिता।।
गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ति माधुर्यादीनि व्यनक्ति सा। रसस्तन्नियमे हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः।।[14]

वागर्थ के भेद - आचार्य मम्मट शब्द के तीन भेद वाचक, लक्षक और व्यंजक स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार अर्थ के भी वे तीन भेद मानते हैं वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, आचार्य मम्मट के अनुसार शब्द तीन प्रकार का होता है वाचक, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ।

स्याद् वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा।
वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः .... ।।[15]

इन तीन प्रकार के शब्दों एवं अर्थों का प्रयोग ध्वनि में विन्यास्त होकर दृष्टिगोचर होता है। जहां शब्द अपने अर्थ को और अर्थ स्वयं को गुणीभूत करके प्रतीयमानार्थ की व्यंजना करता है वहाँ ध्वनि काव्य होता है।

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनी—कृतस्वार्थौ। व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।[16]

यह ध्वनिकाव्य ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। **काव्यस्यातमा ध्वनिः।**[17] भवभूति के रूपकों में वाच्यादि तीनों अर्थों का विन्यास दृष्टिगोचर होता है। जैसे-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[18]

उत्तररामचरितम् में राम कहते हैं कि लोक आराधन के लिए मुझे स्नेह, दया, सुख और जानकी को भी त्यागने में कष्ट नहीं होगा। वाचक शब्दों के द्वारा अनुप्राणित वाच्यार्थ यहाँ कवि के मंतव्य को व्यक्त करने में सक्षम है। राम के लिए संसार में सर्वोपरि लोक रंजन ही है। वह एक व्यक्ति के लिए भी सब कुछ त्याग सकते हैं, फिर संपूर्ण प्रजा जन के लिए तो कहना ही क्या? यहाँ वाच्यार्थ से प्रतीयमानार्थ की व्यंजना हो रही है। इसके लिए भी वाचक वाच्य व्यंजक के रूप में परिणत हो गया है।

महावीरचरितम् प्रथम अंक में राजा जनक विश्वामित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आप तुरीय अग्नि, पंचमवेद, सर्वत्र संचरणशील पुण्यतीर्थ एवं धर्म की मूर्ति हो। यथा-

तुरीयो ह्येष मेध्याग्निराम्नाय पञ्चमोऽपि वा। अथवा जंगमं तीर्थं धर्मो वा मूर्तिसंचरेण।।[19]

यहाँ वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ के सुन्दर सन्निवेश से प्रयोजनवती लक्षणा की प्रतीति हो रही है। लक्षणा के स्वरूप के विषय में आचार्य मम्मट कहते हैं कि जहाँ मुख्यार्थ बाधित हो और मुख्य अर्थ से संबंधित किसी रूढ़ि या प्रयोजन से अन्य अर्थ की प्रतीत होती है वहाँ अन्यार्थ ही लक्ष्यार्थ होता है। जिसके प्रतीति लक्षणा से होती है। जैसे-

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्। अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।[20]

यहाँ विश्वामित्र तुरीय अग्नि, पंचमवेद चलायमान पुण्यतीर्थ एवं धर्ममूर्ति नहीं है अतः यहां मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न हुई, मुख्यार्थ से सम्बद्ध एवं प्रयोजन से अन्य अर्थ की प्रतीति हुई, कि वह विश्वामित्र तुरीय अग्नि पंचम वेद चलायमान पुण्य तीर्थ एवं धर्म की मूर्ति के जैसे हैं, जो लक्ष्यार्थ है। तुरीय अग्नि का प्रयोजन है कि वह परम तेजस्वी हैं। पंचम वेद का प्रयोजन है कि वह भ्रम प्रमाद आदि से रहित नित्य हितानुशासन आदि से पूर्ण हैं। जंगम तीर्थ का प्रयोजन है कि वह स्वयं आगत पुण्य स्वरूप हैं। धर्म मूर्ति का प्रयोजन है कि वह धर्म फल की सिद्धि के लिए ही सम्प्राप्त हैं। यह प्रयोजन ही प्रतीयमानार्थ है।

अलंकृत वागर्थ - आचार्य मम्मट अलंकार को काव्य शरीर का धर्म मानते हैं जो शब्द और अर्थ पर आश्रित है। अलंकार शब्द एवं अर्थ के चमत्कार से काव्य का उपकार करने वाले होते हैं। जैसे-

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्। हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[21]

महाकवि भवभूति शब्दार्थ के चमत्कार से अपने रूपकों को सर्वविध अलंकृत करते हैं। उनके रूपकों में अनेकानेक अलंकार स्वतः ही समाहित हो जाते हैं। आनन्दवर्धन भी ऐसे ही अलंकारों की सराहना करते हैं।

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत। अपृथगेयत्ननिर्वत्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः।।[22]

भवभूति के एक ही पद में अनेक अलंकारों का सुंदर दर्शन होता है जो सहृदयों के हृदयों को चमत्कृत करने का सामर्थ्य रखता है। जैसे मालती माधव के पंचमाङ्क में माधव की उक्ति-

आसारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनंनिरालोकं लोकं मरणशरणं बांधवजनम्।
अदर्प-कंदर्प जननयननिर्माणमफलं जगज्जीर्णारण्यं कथमपि विधातुं व्यवसितम्।।[23]

इस पद में छेकानुप्रास शब्दालंकार एवं पर्यायोक्ति, तुल्ययोगिता, रूपक अर्थालंकार शोभायमान हो रहे हैं।

वक्र वागर्थ - आचार्य भामह का मानना है कि कवि को वक्रोक्ति पूर्ण पदों का प्रयोग करना चाहिये। **वक्रवाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधवः।**[24] जिसका अनुसरण करते हुये भवभूति की रचनाओं में वक्रोक्ति का सुन्दर निदर्शन होता है।

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ—कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते।।[25]

उक्त पद्य मे कवि राम के द्वारा स्वयं के हस्त के प्रति वक्रोक्ति पूर्ण कथनों से काव्य को चमत्कृत कर रहा है।

वागर्थ सहभाव - काव्य में शब्द की सुन्दरता अर्थ की सुन्दरता से अधिक होना चाहिये और अर्थ की सुन्दरता शब्द की सुन्दरता से अधिक होना चाहिये। सौन्दर्य प्रतिस्पर्धा शब्दार्थ ही काव्य के लिये अपेक्षित है। आचार्य कुन्तक के अनुसार शब्दार्थ में परस्पर सौन्दर्य प्रतिस्पर्धा होनी चाहिये।

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ। अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः।।[26]

भवभूति के रूपकों में शब्दार्थ का सौन्दर्य प्रतिस्पर्धा करता हुआ प्रतीति होता है -

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं भद्रं तस्य सुमानसस्य कथमप्येकं हि तत्प्राथ्यते।।[27]

उक्त पद्य में उत्कृष्ट दाम्पत्य का वर्णन करते हुये भवभूति के द्वारा दाम्पत्य प्रेम के लिये प्रयुक्त विशेषण वागर्थ की परस्पर सौन्दर्यमयी प्रतिस्पर्धा से सम्प्राप्त आनन्दानुभूति सहृदयों के लिये प्राणदायिनी सिद्ध होती है।

प्रयोज्य वागर्थ - आचार्य कुन्तक काव्य के प्रयोक्तव्य वागर्थ के स्वरूप का निरूपण करते हुये कहते हैं कि अन्य शब्दों के रहते हुये भी विवक्षित अर्थ का एकमात्र वाचक शब्द ही काव्य में प्रयोक्तव्य शब्द कहलाता है। सहृदय के हृदय आह्लादित करने वाला तथा अपनी स्वाभाविकता से सुन्दर अर्थ ही प्रयोक्तव्य अर्थ कहलाता है।

शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि। अर्थः सहृदयाह्लादकारि स्वस्पन्दसुन्दरः।।[28]

भवभूति के रूपकों में ऐसे प्रयोक्तव्य शब्दार्थ सर्वत्र परिलक्षित होते हैं। जैसे उत्तररामचरितम् में इस पद्य में -

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-रसावस्यास्पर्शो वपुसि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणोमौक्तिकसरःकिमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।[29]

काव्यालंकारकार आचार्य भामह कहते हैं कि वक्रोक्ति में निपुण कवियों को शब्दार्थ का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। **वक्रवाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधवः।**[30] उनका मानना है कि काव्य में प्रयोज्य शब्द परम्परागत, श्रवण-सुखद, उत्कृष्ट अर्थयुक्त होना चाहिये। ऐसे शब्दों का प्रयोग अलंकारों की सुन्दरता से भी बढकर है।

क्रमागतं श्रुतिसुखं शब्दमर्थ्यमुदीरयेत्। अतिशेते ह्यलंकारमन्यं व्यञ्जनचारुता।।[31]

ऐसे वक्रोक्तिपूर्ण, परम्परागत, श्रवणसुखद, उत्कृष्ट अर्थयुक्त वागर्थ के प्रयोग में भवभूति सिद्धहस्त हैं। जैसे महावीरचरितम् में राम कहते हैं

स्निग्धश्यामल-कान्तिलिप्तवियतो वेल्लद्बलाकाघना वाताः शीकरिणः पयोदसुहृदामानन्दकेकाः कलाः।
कामं सन्तु दृढं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वंसहेवैदेही तु कथं भविष्यति हाहा देवि धीरा भव।।[32]

इस पद्य में उक्त सभी विशेषतायें विद्यमान हैं। आचार्य कुन्तक (रामोऽस्मि सर्वं सहे) इस वाक्य पद पूर्वार्द्ध वक्रता एवं आनन्दवर्धन अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि का उल्लेख करते हैं। निष्कर्ष रूप में भवभूति की रचनाओं में वागर्थ का विलास अपनी चरमावस्था को प्राप्त करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। जो शब्दार्थ के प्रतिस्पर्धा एवं सौन्दर्य के विलास से सहृदय के हृदयों को आनन्द से आप्लावित कर रहा है।

सन्दर्भ -

1. *महावीरचरितम् 1/4-5 पृष्ठ 5*
2. *काव्यालंकार 1/16 पृष्ठ 09*
3. *काव्यमीमांसा अध्याय 6 पृष्ठ 54*
4. *काव्यमीमांसा अध्याय 6 पृष्ठ 54*
5. *उत्तररामचरितम् 4/4 पृष्ठ 296*
6. *काव्यमीमांसा अध्याय 1 पृष्ठ 05*
7. *रघुवंशम् 1/1 पृष्ठ 01*
8. *काव्यप्रकाशः 1/1 पृष्ठ 01*
9. *उत्तररामचरितम् 1/1 पृष्ठ 07*
10. *उत्तररामचरितम् 1/2 पृष्ठ 16*
11. *उत्तररामचरितम् 1/10 पृष्ठ 37*
12. *उत्तररामचरितम् 3/26 पृष्ठ 233*
13. *महावीरचरितम् 1/39 पृष्ठ 37*
14. *ध्वन्यालोक 3/5-6 पृष्ठ 133-134*
15. *काव्यप्रकाशः 2/1 पृष्ठ 33*
16. *ध्वन्यालोक 1/13 पृष्ठ 33*
17. *ध्वन्यालोक 1/1 पृष्ठ 02*
18. *उत्तररामचरितम् 1/12 पृष्ठ 42*
19. *महावीरचरितम् 1/10 पृष्ठ 10*
20. *काव्यप्रकाशः 2/9 पृष्ठ 54*
21. *काव्यप्रकाशः 8/67 पृष्ठ 409*
22. *ध्वन्यालोक 2/17 पृष्ठ 85*
23. *मालतीमाधवम् 5/30 पृष्ठ 244*
24. *काव्यालंकार 6/23 पृष्ठ 154*
25. *उत्तररामचरितम् 2/10 पृष्ठ 147*
26. *वक्रोक्तिजीवितम् 1/17 पृष्ठ 52*
27. *उत्तररामचरितम् 1/39 पृष्ठ 93*
28. *वक्रोक्तिजीवितम् 1/9 पृष्ठ 33*
29. *उत्तररामचरितम् 1/38 पृष्ठ 91*
30. *काव्यालंकार 6/23 पृष्ठ 154*
31. *काव्यालंकार 6/28 पृष्ठ 157*
32. *वक्रोक्तिजीवितम् 1/19 उदाहरण 42 पृष्ठ 58*

23

पदवाक्यप्रमाणज्ञ भवभूति

किरण आर्या

'यं वाग्वश्येवानुवर्तते' तथा 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' के साक्षात् प्रतिरूप सरस्वती पर पूर्ण अधिकार प्राप्त आचार्य भवभूति संस्कृत साहित्य के नाटककारों की प्रथम श्रेणी में पांक्तेय हैं। संस्कृत नाटकों के विशाल साहित्य पर जिन नाटककारों के चरणचिह्न विद्यमान हैं उनमें भवभूति ने अपनी काव्यानुभूति की सारी गहराई, अपनी कारयित्री प्रतिभा की समग्र ऊर्जस्विता, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, योग, वेदान्त, आदि गम्भीर शास्त्रों में अप्रतिहत गति और पाण्डित्य का परिचय देकर संस्कृत वाङ्मय की अक्षय निधि में अपना अमूल्य योगदान दिया है। भवभूति के कुल परम्परा का पाण्डित्य में प्रमुख स्थान होने के कारण भवभूति का समग्र शास्त्रों में अधिकार था। कुमारिलभट्ट के श्लोकवार्तिक पर टीका करने के कारण इनका प्रचण्ड मीमांसक होना सिद्ध ही है। स्वयं भवभूति ने अपने को तीनों नाटकों में पदवाक्यप्रमाणज्ञ कहा है, अतः व्याकरण (पद), मीमांसा (वाक्य) न्याय (प्रमाण) में इनका पूर्णाधिकार स्वतः सिद्ध है। एक जागरूक कलाकार के रूप में इनका व्यक्तित्व अगाध पाण्डित्य के गर्भ से उभरकर तब सामने आता है जब वे अपनी नाट्य सृष्टि के लिये वेदादिविषयक ज्ञान का खुले शब्दों में निषेध करते हैं, मालतीमाधव में वे लिखते हैं -

यत् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च, ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।
यत्प्रौढित्यमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं, तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः।।[1]

अर्थात् जो वेद उपनिषद् सांख्य और योग का ज्ञान है उसकी नाटक में कोई उपयोगिता नहीं है अतः उसकी चर्चा व्यर्थ है यदि वाणी में प्रौढता तथा उदारता है और अर्थ का गाम्भीर्य है तो वही यहां पाण्डित्य और वैदग्ध्य का परिचायक है। भवभूति के इस कथन से स्पष्ट है कि वे वेदोपनिषदादि शास्त्रों के ज्ञाता भी थे। किन्तु उनको अपनी नाट्यकला के उपयुक्त जो सारणियां ग्राह्य हैं उन्हें केवल उसी से प्रयोजन है। पुनरपि अपने नाट्यकला के प्रदर्शनव्याज से उन्होंने अपने नाटकों में व्याकरण, मीमांसा, न्यायादि शास्त्रों का किस तरह से यथोचित दिग्दर्शन कराया है, उस पर दृष्टिपात करते हैं- आचार्य मम्मट के कथनानुसार काव्य उद्भव के हेतु हैं-

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञशिक्षयामास इति हेतुस्तदुद्भवे।।[2]

कवि में रहने वाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभारूप शक्ति, काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता तथा शास्त्र अर्थात् छन्द, व्याकरण, संज्ञा शब्दों के कोश (अमरकोश) आदि ग्रन्थों का अभ्यास। **शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्त- वाक्यात्** व्याकरण आदि से शक्ति का ग्रहण माना जाता हैं अतः यह सुनिश्चित है कि कवि साक्षात् महान् वैयाकरण होता है क्योंकि व्याकरण के धरातल पर ही शाब्दिक काव्यशास्त्र

की निर्मिति सम्भव है। पुनरपि व्याकरण की गहन सूक्ष्मता का ज्ञान सभी को हो ही, यह सम्भव नहीं हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें पं. अम्बिकादत्त व्यास के गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् नामक ग्रन्थ में मिलता है। किन्तु महाकवि आचार्य भवभूति जितने अच्छे कवित्वप्रातिभशक्तिसम्पन्न हैं उतने ही श्रेष्ठ व्याकरणज्ञ भी हैं अतः पदवाक्यप्रमाणज्ञोपाधिना समलंकृत हैं। स्थालीपुलाकन्याय से कुछ उदाहरणों द्वारा हम कवि की व्याकरणमर्मज्ञता को समझने का प्रयास करते हैं-

सूत्रधारः - एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीन्तनश्च संवृत्तः[3] (अब मैं कार्यवश अयोध्या में रहने वाला तथा उसी समय का मनुष्य बन गया हूं।) इस वाक्य में कवि ने आयोध्यकः शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है अयोध्यावासी। इस तरह के प्रयोगों में प्रायः विद्वान् क्षेत्रविशेष के साथ निवासी अथवा वासी लगाकर शब्द का प्रयोग करते हैं किन्तु पाणिनीय सूत्र धन्वयोपधाद् वुञ्[4] सूत्र का कवि ने सुन्दरता से प्रयोग किया है। अन्य सम्पादकीय ग्रन्थ में आयोध्यिकः प्रयोग मिलता है इसमें भी अध्यात्मादेष्ठञिष्यते[5] वार्तिक से ठञ् करके यह प्रयोग तदर्थ में सार्थक है।

सूत्रधारः- राजद्वारमेव स्वजातिसमयेन उपतिष्ठावः (अभिनय करने के लिये राजभवन के द्वार पर चलें) इस वाक्य में उपतिष्ठावः न होकर व्याकरणदृष्ट्या उपतिष्ठावहे होना चाहिये किन्तु वा लिप्सायाम् इस वार्तिक के अनुसार परस्मैपद होकर यह रूप बनाना सार्थक है, जिसका अभिप्राय होगा कि धनलाभ की इच्छा से निकट जाकर सेवार्थ उपस्थित होना। यही अर्थ भवभूति को अपेक्षित है क्योंकि राजभवन द्वार पर अभिनय करने का अभिप्राय राजा से कुछ प्राप्ति की इच्छा ही है।

'येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च'[6] (जिनके कुल में सूर्य जैसे गुरु हैं और हम विद्यासम्बन्ध से आचार्य हैं, अर्थात् हम जिस कुल के गुरु हैं) यहां गुरुर्वयं इस वाक्य में अस्मदो द्वयोश्च सूत्रनुसार एकवचन अथवा द्विवचन में बहुवचन मानना चाहिये यद्यपि सविशेषणस्य प्रतिषेधः इस वार्तिक से सविशेषण अस्मद् के एकवचन अथवा द्विवचन के अर्थ में बहुवचन का प्रयोग नहीं होता किन्तु जहां विशेषण विधेय के रूप में हो वहां यह प्रतिषेध नहीं लगेगा अतः गुरुर्वयं यह शुद्ध है, यह महाकवि की व्याकरणज्ञानसूक्ष्मता ही है। प्रियतद्धिताः दाक्षिणत्याः महर्षि पतंजलि के प्रयोग को सार्थक करने वाले दाक्षिणत्य कवि भवभूति - ऐन्दवमयूखचुम्बित[7] में ऐन्दव सदृश कतिपय तद्धितपद का प्रयोग करते दीखते हैं। ऐन्दव के स्थान पर इन्दुमयूखचुम्बित से भी इष्ट अर्थ का बोध हो सकता था पर तद्धितान्त प्रयोग उनका व्याकरणपर अधिकार को दर्शाता है। महावीरचरितम् में दूषणखरत्रिमूर्धानः[8] प्रयोग है यहां द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः[9] सूत्रानुसार समासान्त ष प्रत्यय होकर त्रिमूर्धाः होना चाहिये था किन्तु कवि जानते हैं कि समासान्त विधि अनित्य होती है अत त्रिमूर्धानः यह पद प्रयुक्त किया है।

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु[10] यहां मधुगन्धिषु में कवि ने उपमानाच्च[11] सूत्र से इ प्रत्यय लगाकर इस पद को सार्थक समझा है। इसमें विग्रह होगा मधुनः गन्ध इव गन्धो येषु तेषु मधुगन्धिषु इस विग्रह में विशेष चमत्कार है क्योंकि इससे सीता का राम के प्रति अतिशय स्नेह सूचित होता है। राम के साथ निवास करने पर भयानक वन भी सीता को मकरन्द के जैसे गन्ध वाले प्रतीत हो रहे हैं। मधुगन्धः अस्ति एषु तेषु मधुगन्धिषु ऐसा विग्रह करके इनि प्रत्यय लगाकर भी यह प्रयोग बन सकता था लेकिन इसमें अर्थवैशिष्ट्य की चमत्कारिता नहीं आ पाती। यह कवि का वैयाकरणीय पक्ष है जिसने अर्थ वैशिष्ट्य प्रदर्शित करने के लिये विशिष्टसूत्र का प्रयोग किया। इस प्रकार ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो आचार्य कवि के व्याकरण पारंगतत्व एवं व्याकरण के सूक्ष्म ज्ञान को स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं। अब हम उनका दार्शनिक पक्ष देखते हैं-

मनुष्य की अपनी अपनी आध्यात्मिक व दार्शनिक दृष्टि होने के कारण हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति दार्शनिक होता है विशेष रूप से कवि या नाटककार जो धर्म से जुड़ा होने के कारण अपने साहित्य में स्वतन्त्र सर्जनात्मक प्रतिभा से दार्शनिक तथ्यों का उल्लेख करता है। आचार्य भवभूति के नाटकों में उल्लिखित दार्शनिक सिद्धान्त उनके समकालीन समाज की आध्यात्मिक विचारधारा को प्रकट करते हैं। उन्होंने सांख्य योग, न्याय, वेदान्त आदि दर्शनतत्त्वों का तो उल्लेख किया ही है किन्तु पदवाक्यप्रमाणज्ञ इस वैशिष्ट्य से युक्त भवभूति ने अपनी रचनाओं में मीमांसक विषयक (पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा-वेदान्त) ज्ञान को विशेषतः प्रकट किया है। यथा उत्तररामचरितम् में जब दुर्मख आकर राम से कहता है कि नगरवासी तथा जनपदवासी लोगमहाराज राम की प्रशंसा कर रहे हैं और कह रहे हैं कि राम के द्वारा महाराज दशरथ भुलवा दिये गये हैं तब राम कहते हैं -

रामः- अर्थवाद एषः। दोषं तु मे कंचित्कथय येन स प्रविधीयते।[12] अर्थात् यह तो केवल प्रशंसा है। मेरे किसी दोष को बताओ, जिससे उसका प्रतीकार किया जाये। इस वाक्य में अर्थवाद शब्द का प्रयोग है- अर्थ्यते इत्यर्थः (प्रयोजनं) तस्य वादः कथनम्, यद्वा कस्यचिदर्थस्य स्तुतेर्निन्दाया वा यो वादः सोऽथर्वादः। 'अर्थवाद' यह पूर्वमीमांसा दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है, इसमें प्रायः किसी वैदिक विधि के प्रयोजन का कथन अथवा उसकी प्रशंसा होती है अतः बाद में अर्थवाद शब्द प्रशंसामात्र के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक में वनदेवता द्वारा आत्रेयी से यह पूछने पर कि आप यहां दण्डकारण्य में क्यों विचरण कर रही हैं तब आत्रेयी कहती हैं -

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांसं उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।।[13]

अर्थात् इस प्रदेश में अगस्त्यादि बहुत से उद्गीथ जानने वाले ब्रह्मवेत्ता रहते हैं उनसे वेदान्त विद्या को प्राप्त करने के लिये वाल्मीकि के पास से यहां विचरण कर रही हूं। यहां उद्गीथविदः, निगमान्तविद्या शब्द भवभूति के वेदान्त व उपनिषद् ज्ञान का परिचायक है, छान्दोग्योपनिषद् में उद्गीथ शब्द प्रणव (ओम्) के लिये प्रयुक्त हुआ है। उपर्युक्त श्लोक में दूसरा शब्द आया है - निगमान्तविद्या अर्थात् वेदान्तविद्या वेदान्तों (उपनिषदों) द्वारा प्रतिपाद्य ब्रह्मविद्या। निगच्छति (वेत्ति) अनेन इति निगमः वेदः। वेदों में वर्णनीय विषय दो भागों में विभक्त हैं- कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही कर्म किये जाते हैं इसलिये वह भाग जिसमें कर्मों का प्रतिपादन है पूर्वभाग या पूर्वमीमांसा कहा जाता है। कर्मों की सिद्धि के अनन्तर ही आत्मज्ञान होता है और उस ज्ञातव्य (आत्मा) का समयग्विवेचन जिस अन्तिम भाग में है उसे वेदान्त, ज्ञानकाण्ड या उत्तरमीमांसा कहते हैं।

उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक में ही जब वाल्मीकि के मुख से सहसा अनुष्टुप् छन्दयुक्त पद्य निःसृत होता है तब ब्रह्मा के कहने पर कि तुम शब्दब्रह्म के विषय में जागृत हो गये हो अब तुम रामचरित कहो तब- अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।[14] वाल्मीकि ने सर्वप्रथम लोक में शब्द के उस प्रकार के विवर्त (रूपान्तर) इतिहास रूप रामायण का निर्माण किया। यहां प्रयुक्त विवर्त शब्द वेदान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। अविद्या के कारण स्वरूप का परित्याग किये विना वस्तु की अन्य रूप में प्रतीति होना विवर्त है, जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति (इसमें रज्जु अधिष्ठान है तथा सर्प उस अधिष्ठान में विवर्त है। इस प्रकार ब्रह्म अधिष्ठान में संसार की मिथ्या प्रतीति हो रही है, विद्या द्वारा विवर्त का

उच्छेदन हो जाता है। किन्तु भवभूति ने यहां विवर्त शब्द का प्रयोग इस अर्थ में न करके परिणाम अर्थ में किया है। कारण का अपने स्वरूप को त्यागकर कार्यरूप में परिणत हो जाना परिणाम कहाता है। वागात्म ब्रह्म शब्द के प्रयोग के साथ साथ भवभूति ने रामायण के लिये भी विवर्त शब्द का प्रयोग कर दिया है। जबकि -

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारानम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्।।[15]

इस पद्य में विवर्त शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ (मिथ्या प्रतीति मात्र) में प्रयुक्त हुआ है। भवभूति ने उत्तररामचरितम् में अनेक वार विवर्त इस मैमांसिक शब्द का प्रयोग किया है। इसी पद्य में आये आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारान् पदब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के लिये वेदान्तशास्त्र का प्रसिद्ध दृष्टान्त है - तथाहि समुद्रादुदकात्मनोऽनन्यत्वेऽपि तद्विकाराणां फेनवीचितरंग- बुद्बुदादीनामितरेतरविभाग इतरेतरसंश्लेषादिलक्षणश्च व्यवहार उपलभ्यते।[16] अन्यत्र भी - यथा च समुद्रात्मनैकत्वं फेनतरंगाद्यात्मना नानात्वम्[17] अर्थात् जिसप्रकार आवर्त बुद्बुदतरंग इत्यादि जलविकार मूल में तथा अन्त में जलमात्र ही हैं उसीप्रकार राम तथा सीता के जीवन में (तथा इस नाटक में) भिन्न भिन्न रस भी मूल में वस्तुतः करुणरस ही है। यहां आवर्तबुद्बुदतरंग के समान अद्वैत ब्रह्म की सिद्धि के समान इस नाटक में करुण रस ही अद्वैत रूप है यह भवभूति सिद्ध करते हैं। भवभूति ने जिस नित्य अनादि अनन्त चैतन्य ज्योति परमात्मा की उपासना की है उसी निर्विकल्पक निरुपाधि निर्विकार सत्ता को वेदान्त में परब्रह्म कहा गया है इसकी ज्योति अक्षर है - अक्षरा ज्योतिः (4.10/11)। महावीरचरितम् में ब्रह्मानन्द की अनुभूति का वर्णन करते हुये कहते हैं-

अनुभावयति ब्रह्मानन्दसाक्षात्क्रियामिव। स्पर्शस्तेऽद्यवराम्भोजप्रस्फुरन्नालकर्कशः।।[18]

राम भरत से कहते हैं तुम्हारा आलिंगन ब्रह्मानन्द सुख को दे रहा है। महावीरचरितम् के छठे अंक में - एवं किलेयं पंचभौतिकी सृष्टिः कहकर भवभूति प्रमुख प्रधान विक्षेप शक्ति से युक्त अज्ञान उपहित चैतन्य से सूक्ष्म तन्मात्र रूप आकाश की उत्पत्ति दर्शाते हैं तथा आकाश से वायु की, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति का वर्णन करके वे पंचतां गताः[19] कहकर इन पंच तत्त्वों से बने प्राणियों का लय भी पंचतत्त्व में हो जाता है, ऐसा दार्शनिक दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं। इसी प्रकार सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा[20] जीवलोकं विभावयामि[21] आदि उदाहरणों के माध्यम से कवि ने आत्मा, जीवलोक आदि वेदान्तदर्शन विषयक विचारों को प्रकट किया है।

भवभूति की रचनाओं में न्यायसम्बन्धी प्रसंगों का उल्लेख कम हुआ है। पुनरपि प्रसंगतः प्रत्यक्ष एवं अनुमिति की प्रमाण की चर्चा यत्र तत्र आयी है कवि का यह कथन कि प्रत्यक्ष एवं अनुमान से जानी गयी एक ही वस्तु पर्याप्त अन्तर रखती है,[22] यह प्रत्यक्ष अनुमिति की ओर ही संकेत करता है। इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष तथा अनुमान से प्राप्त ज्ञान अनुमिति कहलाता है। न्याय दर्शन में यथार्थ अनुभव के साधन को प्रमाण कहा गया है। प्रत्यक्ष अनुमान के अतिरिक्त कवि ने एक स्थल पर शब्द ब्रह्म का उल्लेख किया है - अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय - भगवान् प्राचेतस् (वाल्मीकि) ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्द ब्रह्म जैसा अतात्त्विक अन्यथा भाव रूपान्तर इतिहास रूप रामायण का निर्माण किया[23] नैयायिकों के मत में शब्द ब्रह्म यथार्थ ज्ञान का अन्तिम साधन है। जैन और बौद्धों के अपने शास्त्र आगम प्रमाण हैं क्योंकि वे शब्द को भी प्रमाण मानते हैं।

यह सत्य है कि पदवाक्यप्रमाणज्ञ इस वाक्य में प्रयुक्त वाक्य, प्रमाण शब्द केवल मीमांसा एवं न्याय के लिये प्रयुक्त नहीं हैं अपितु ये दोनों शब्द समस्त दर्शनों के उपलक्षक हैं क्योंकि भवभूति के ग्रन्थों में सभी

दर्शनों का यथाप्रसंग दिग्दर्शन होता है उनका दार्शनिक ज्ञान स्वतः ही उनके नाटकों में सहज रूप से आ जाता है- सांख्य दर्शन के दो तत्त्व पुरुष और प्रकृति की चर्चा तथा सत्व रज ,तम त्रिगुणात्मिका प्रकृति की साम्यावस्था रूप सृष्टि की चर्चा करते हुये वे महावीरचरितम् में कहते हैं -

इदं हि तत्त्वं परमार्थभाजामयं हि साक्षात्पुरुषः पुराणः।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृतिः किलैषा त्रातुं भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा।।[24]

अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों का परम तत्त्व साक्षात् पुराणपुरुष, सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों में विभक्त प्रकृति ही तो सब पुरुषों के रक्षार्थ राम के रूप में अवतीर्ण हुई है। यहां कवि त्रिगुणात्मिका प्रकृति और पुरुष का उल्लेख करके उस परम तत्त्व की ओर संकेत करते हैं जिसे वेदांत में परम ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों के कारण यह विश्व सुख दुःख और मोह की अवस्थाओं को प्राप्त करता है। प्रियतम वस्तु की निकटता जहां व्यक्ति को आनन्दानुभव कराती है वहीं उस वस्तु की पृथगता उसे अग्नि की तरह संतप्त करती है जिसका उदाहरण मालतीमाधव में स्पष्टतः दीखता है।[25]

भवभूति का मालतीमाधव में यह कथन -तत् परिचितानुचित्त- प्रसादनीः। चतस्रो मैत्र्यादिभावनाः, प्रत्यासीदति हि ते विशोका ज्योतिष्मति नाम योगवृत्तिः‘ यह योगदर्शन के महत्त्वपूर्ण - मैत्रीकरुणामुदितो-पेक्षाणाम् सुखदुःखपुण्या- पुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् सूत्र की व्याख्या करता है। मन की स्थिति के लिये कवि शोक को दूर करने वाली ज्योतिष्मति योगवृत्ति का उल्लेख करते हैं इसे पतंजलि ने विशोका वा ज्योतिष्मति योग 1.36 में कहा है। मालतीमाधव की एक मुख्य पात्र बौद्ध परिव्राजिक कामन्दकी के चरित्र व्यवहार से स्पष्ट है कि वह प्रव्रज्या के कठोर नियमों को नहीं स्वीकारती है। यहां कवि ने प्रसंगतः अपनी बौद्ध दर्शनदृष्टि का भी उल्लेख किया है।

इस प्रकार हम जब कवि के नाटकों का ‘पदवाक्यप्रमाणज्ञ भवभूति‘ भाव से अध्ययन करते हैं तो वे कवि बाद में प्रथमतया महान् वैयाकरण और दार्शनिक रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होने लगते हैं। उनका यह सर्वतोमुखी वैदुष्य सहसा संस्कृत की चिरपरिचित इस सूक्ति का स्मरण कराता है- कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर्महाकविः।।

सन्दर्भ सूची -

1. *मालतीमाधव 1.8*
2. *काव्यप्रकाश, 1*
3. *उत्तररामचरितम्, पृ. 8*
4. *अष्टाध्यायी, 4.2.121*
5. *अष्टाध्यायी, 4.3.53*
6. *उत्तररामचरितम्, 1.9*
7. *उत्तररामचरितम्, पृ. 89*
8. *महावीरचरितम्, 5.13*
9. *अष्टाध्यायी, 5.4.115*
10. *उत्तररामचरितम्, 2.18*
11. *अष्टाध्यायी, 5.4.137*

12. उत्तररामचरितम्, पृ. 101
13. उत्तररामचरितम्, 2.3
14. उत्तररामचरितम्, पृ. 137
15. उत्तररामचरितम्, 3.47
16. ब्रह्मसूत्र, 2.1.13
17. ब्रह्म.2.1.14
18. महावीरचरितम्, 7.31
19. महावीरचरितम्, 6.60
20. मालतीमाधवम्, .9.20
21. मालतीमाधवम्, 7 पृ. 281
22. उत्तररामचरितम्, 2.6
23. उत्तररामचरितम्, पृ.137
24. महावीरचरितम्, 7.2
25. मालतीमाधवम्, 1.20

24

भवभूति के रूपकों में अद्भुत रस समीक्षण

आशा सिंह रावत

संस्कृत वाङ्मय में नाट्यशास्त्र का प्रारम्भ भरत मुनि से होता है। भरत मुनि के अनुसार रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्तन काव्य में नहीं होता है- न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।[1] आचार्य अभिनवगुप्त ने इस पर टीका करते हुए लिखा है कि सम्पूर्ण रूपक में रस ही एकमात्र सूत्र की तरह प्रतीत होता है- एक एव परमार्थतो रसः सूत्रस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति।[2] अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्य ही रस है तथा रस का समुदाय ही नाट्य है- नाट्यात् समुदायरूपाद् रसाः। यदि वा नाट्यमेव रसाः। रस समुदायो हि नाट्यम्। न नाट्य एव च रसाः काव्येऽपि।[3] भारतीय काव्यशास्त्रियों और नाट्यशास्त्रियों ने रूपक के भेदक तत्त्व के रूप में वस्तु, नेता और रस को प्रतिष्ठित किया है। प्रायः सभी वरेण्य आचार्यों ने एक स्वर से रस की सर्वातिशायिता स्वीकार की है। वस्तुतः काव्य में सबसे प्रमुख तत्त्व रस ही है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य रस का संचार करना ही है, जिसका आस्वादन करके सहृदय जन आह्लाद का अनुभव करते हैं। अतः काव्य की आत्मा रस ही है। आचार्य विश्वनाथ ने भी रस का विस्तृत विवेचन करके उसको काव्य में सबसे प्रधान प्रतिष्ठित किया- वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।[4] नाट्याचार्य भरत मुनि रस संख्या क्रम में अद्भुत रस को आँठवें स्थान पर प्रतिष्ठित करते हुए उसके स्थायी भावादि के विषय में लिखते हैं- अथाद्भुतो नाम विस्मय स्थायिभावात्मकः। स च दिव्यजनदर्शनेप्सित-मनोरथावाप्त्युपवन-देवकुलादिगमन-सभाविमानमायेन्द्र-जालसम्भावनादिभि-र्विभावैरुत्पद्यते। तस्य नयनविस्तारानिमेष-प्रेक्षण-रोमाञ्चाश्रु-स्वेदहर्षसाधुवाद-दान-प्रबन्ध-हाहाकार-बाहुवदनचेलांगुलिभ्रमणादिभि-रनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। भावाश्चास्य स्तम्भाश्रुस्वे- गद्गदरोमाञ्चावेग- सम्भ्रमजडताप्रलयादयः।[5] परवर्ती आचार्य धनंजय भी अलौकिक पदार्थों को विस्मय की उत्पत्ति का कारणभूत मानते हुए लिखते हैं-

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद् विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः। कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।[6]

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। आचार्य विश्वनाथ ने नाना प्रकार के लोक की सीमा का अतिक्रमण करने वाले अर्थात् अलौकिक पदार्थों में चित्त के विकास को विस्मय कहा है-

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।।[7]

आचार्य भरत मुनि ने निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस के प्रयोग को अभीष्ट माना है-

सर्वेषां काव्यानां नानारसयुक्तियुक्तानाम्। निर्वहणे कर्त्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्ज्ञैः।।[8]

आचार्य विश्वनाथ ने भी इसे स्वीकार किया है- **अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।**[9]

भरत मुनि ने अद्भुत रस के दो भेद स्वीकार किये हैं- दिव्य और आनन्दज-

दिव्यश्चानन्दजश्चैव द्विधा ख्यातोऽद्भुतो रसः। दिव्यदर्शनजो दिव्यो हर्षादानन्दजः स्मृतः।।[10]

जबकि शारदातनय ने वाचिक, आंगिक और मानस ये तीन भेद स्वीकार किये हैं।[11] वस्तुतः वेदों से लेकर आधुनिक संस्कृत साहित्य की सभी विधाओं में अद्भुत रस का न्यूनाधिक्य रूप से प्रयोग होता रहा है। नाट्य परम्परा में नाटककार भवभूति ने अपने नाटकों में इसे यथोचित स्थान दिया है। भवभूति संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के नाटककार और महाकवि हैं। महाकवि कालिदास के बाद महाकवि भवभूति ही सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते हैं। वाग्वश्यानुवर्ती और पदवाक्यप्रमाणज्ञ भवभूति की तीन प्रसिद्ध नाट्य कृतियाँ हैं-
(1) महावीरचरितम् (वीर रस का रामायणाश्रित नाटक), (2) मालतीमाधवम् (श्रृंगार रस प्रधान प्रकरण) और
(3) उत्तररामचरितम् (करुण रस प्रधान नाटक)।

वस्तुतः भवभूति के रूपकों में वस्तुविन्यास में चमत्कार सृष्टि के लिए अद्भुत और अलौकिक तत्त्वों की प्रचुरता सर्वत्र परिलक्षित होती है। महावीरचरितम् नाटक में श्रृंगार, करुण, भयानक आदि अन्य समस्त रसों की नाटकानुकूल अभिव्यक्ति हुई है। नाट्यकार महाकवि भवभूति ने महावीरचरितम् नाटक की प्रस्तावना में स्वयं कहा है कि इसमें वीर एवं अद्भुत रसों की विशेष योजना की है। नान्दी पाठ के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्रधार नाटककार भवभूति को रामकथा के वीर तथा अद्भुत रस प्रधान होने के कारण, प्रिय होने से महावीरचरित में प्रकारान्तर से वीर रस के प्रधान तथा अङ्ग रसों में अद्भुत रस की प्रमुखता की ओर संकेत करता है -

तेनेदमुद्धृतजगत्त्रयमन्युमूलमस्तोकवीरगुरुसाहसमद्भुतं च।
वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरितं निबद्धम्।।[12]

प्रथम अंक में प्रस्तावना के पश्चात् महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में होने वाले यज्ञ में सीता और उर्मिला के साथ आये कुशध्वज राम और लक्ष्मण को देखकर विस्मित हुए सोचते हैं -द्वितीयस्य च वर्णस्य प्रथमस्याश्रमस्य च। अहो रम्यानयोर्मूर्तिर्वयसो नूतनस्य च।।[13] तत्पश्चात् विश्वामित्र के समक्ष राजा कुशध्वज सीता और ऊर्मिला का परिचय देते हुए कहते हैं कि यह हल से जुती हुई यज्ञभूमि से उत्पन्न सीता है और दूसरी यह है जनकतनया उर्मिला - लाङ्गलोल्लिख्यमानाया यज्ञभूमेः समुद्गता। सीतेयमूर्मिला चेयं द्वितीया जनकात्मजा।।[14] राम और लक्ष्मण सीता की यज्ञभूमि से उत्पत्ति सुनकर अत्यन्त विस्मित होते हैं। लक्ष्मण कहता है- (जनान्तिकम्) आचार्यमियद....द्भुतसूतिरार्य। यहाँ पर सीता आलम्बन विभाव, यज्ञभूमि से उसकी उत्पत्ति उद्दीपन विभाव, राम तथा लक्ष्मण आश्रय, नयन विस्तार, रोमांच, अनिमेष प्रेक्षण इत्यादि अनुभाव और सम्भ्रम, वितर्क, आवेग, हर्ष आदि सञ्चारिभाव हैं। इनसे परिपुष्ट विस्मय नामक स्थायी भाव ही अद्भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है।

तदनन्तर राजा कुशध्वज के पूछने पर विश्वामित्र बताते हैं कि पूर्वकृत पाप से प्रस्तर की हुई अहल्या आज रामचन्द्र के प्रताप से उस पाप से मुक्त हो गयी है - अहल्या नाम गौतमस्य महर्षेरौचथ्यस्य धर्मपत्नी, यस्याः शतानन्द आङ्गिरसोऽजायत। तामिन्द्रचकमे। तस्माद्गौतमदारावस्कन्दिनमहल्याजार इतीन्द्रं जानन्ति। अथ भगवान्मन्युमवाप। तस्याः पाप्मना शरीरमन्धतामिस्रमभ्ययात्। सेयमद्य रामभद्रतेजसा तस्मादेनसो निरमुच्यत। विश्वामित्र से यह सब सुनकर सीता, ऊर्मिला और कुशध्वज विस्मित होते हैं सीता अकस्मात् कह उठती है - (सविस्मयानुरागं निर्वर्ण्य अपवार्य च) शरीरनिर्माणसदृशोऽस्यानुभावः। यहाँ विश्वामित्र के द्वारा

रामकृत अहल्योद्धार का वर्णन अद्भुत घटना का समावेश है जो कि विश्वामित्र के 'सेयमद्य रामभद्रतेजसा' इस वाक्य से एवं राजा के 'कथमप्रमेयानुभवसामर्थ्य एष वैकर्तनकुलकुमार' इस वाक्य से व्यक्त हो रही है अतः यहाँ मुख सन्धि का परिभावना नामक अंग है। विश्वामित्र के द्वारा राम को दिव्यास्त्र प्रदान किये जाने पर दिव्यास्त्र अवतरण से विस्मित हुए लक्ष्मण कहते हैं कि यह क्या? द्रतसुवर्ण से सिक्त की तरह दिशायें पीतवर्ण हो रही है। सान्ध्यराग से युक्त की तरह, दिन पीला पड़ गया है। केतु समुदाय से पूर्ण की तरह दिव्यास्त्र व्याप्त आकाश निरन्तर चलित विद्युत्पूर्ण की तरह दिखाई दे रहा है -

झटित्येवोत्तप्तद्रुतकनकसिक्ता इव दिशः पिशङ्गत्वात्संध्यान्तरित इव निर्भाति दिवसः।
ज्वलत्केतुव्रातस्थगितमिव दिव्यास्त्रनिचितं नभो नैरन्तर्यप्रचलितितडित्पिंजरमिव।।[15]

यहाँ जृम्भकास्त्र (दिव्यास्त्र) आलम्बन विभाव हैं। अलौकिक दिव्यास्त्रों के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव है। स्वेद, रोमांच, सम्भ्रम, नेत्रविकास आदि अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, भ्रान्ति आदि व्यभिचारिभाव हैं। इनसे परिपुष्ट विस्मय नामक स्थायी भाव (लक्ष्मण के हृदय में) अद्भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ लक्ष्मण आश्रय है। लक्ष्मण रामभद्र के द्वारा शिवधनुष के टूटने से बहुत समय तक उसे धर्नुभंग के शब्द की दीर्घकालव्यापी टंकार की प्रतिध्वनि को सुनकर विस्मित हुए इस प्रकार कहते हैं-

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभंगोद्यतष्टंकारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः।
द्राक्पर्यस्तकपालसंपुटमितब्रह्माण्डभाण्डोदर भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति।।[16]

यहाँ धनुष की टंकारध्वनि आलम्बन विभाव है। उसकी अतिदीर्घता (विशालता) आदि उद्दीपन विभाव, उसकी महिमा का वर्णन अनुभाव है। लक्ष्मण के इस वर्णन से अनुमित हर्ष, वितर्क, आवेग आदि व्यभिचारी भाव हैं तथा साथ ही लक्ष्मण का विस्मय स्थायीभाव है। इन सबसे मिलकर और परिपुष्ट होकर विस्मय स्थायी भाव सहृदय सामाजिकों के द्वारा अद्भुतरसता को प्राप्त हुआ अनुभव होता है। इस प्रकार यहाँ अद्भुत रस की स्फुट एवं मनोरम निष्पत्ति (अभिव्यञ्जना) हुई है। द्वितीय अंक में समाचार लेकर अपने समीप आई शूर्पणखा से माल्यवान् मनुष्यमात्र के लिए भी चिन्ता व्यक्त करते हुए राम को अद्भुत प्राणी मानता हुआ विस्मित होता है - **उत्पत्त्यैव हि राघवः किमपि तदद्भुतं जगत्यद्भुतं मर्त्यत्वेन किमस्य चरितं देवासुरैर्गीयते।।**[17]

अर्थात राम जन्म से कुछ अद्भुत प्राणी है। उसके मनुष्य होने से क्या होता है, जिसका चरित देव तथा असुर गाते हैं। परशुराम राम के रूप-सौन्दर्य, गाम्भीर्य, मनोहारिता आदि को देखकर क्रोध भूलकर विस्मित हुए मन में सोचते हैं- (निवर्ण्य, स्वगतम्) रमणीय क्षत्रियकुमार आसीत् -

चंचत्पंचशिखण्डमण्डनमसौ मुग्धप्रगल्भं शिशुर्गम्भीरं च मनोहरं च सहजश्रीर्लक्ष्म रूपं दधत्।
द्राग्दृष्टोऽपि हरत्ययं मनः सौन्दर्यसारश्रिया हन्तव्यस्तु तथापि नाम धिगहो वीरव्रतक्रूरताम्।।[18]

तृतीय अंक में शिवधनुभंग पर आये जनक भी क्रोध युक्त हुए परुराम पर धनुष उठाने को उद्यत होते हैं, जिससे परशुराम अत्यन्त विस्मयान्वित हुए कहते हैं कि क्या कहा जी? धनुष! अहा! आश्चर्य है- याज्ञवल्क्य के स्मरण से हमारे द्वारा दत्ताभय होने से सगर्व! मिथ्याभिमानी! जराजीर्ण यह क्षत्रिय धर्म क्षत्रियों को देखने से आग की स्फुलिङ्गसदृश अट्टहास करने वाले शत्रुओं के शिररूप शाण चढ़े हमारे कुठार को देख कर भी प्रलाप ही कर रहा है -

क्षत्त्रालोकक्षुभितहुतभुक्प्रस्फुलिङ्गाहासं हायं पश्यन्नपि रिपुशिरःशाणशातं कुठारम्।
दत्तोत्सेकः प्रलपति मया याज्ञवल्क्यानुरोधान्मिथ्याध्मातः किमपि जरसा जर्जरः क्षत्त्रबन्धुः।।[19]

इस प्रकार धनुर्भंग के प्रकरण में राम-परशुराम वार्तालाप में अन्य अनेक वाक्यांशों में अद्‌भुत रसाभिव्यक्ति होती है। पंचम अंक में, प्रारम्भ में, जटायु सम्पाति को कहता है कि लक्ष्मण के द्वारा शूपर्णखा के नाक, ओठ, कान आदि के काट दिये जाने पर, खरादि के आक्रमण कर दिये जाने पर रामभद्र ने चौदह हजार चौदह राक्षस और तीन खर, दूषण और त्रिशिरा इतने को मौत के घाट उतार दिया।[20] इसे सुनकर सम्पाति आश्चर्यचकित हुआ कहता है- आश्चर्यमाश्चर्यम्। अथवा नाश्चर्य- मेतद् दाशरथौ। लक्ष्मण की मूर्च्छा से चित्ररथ दुःखी होते हैं, तभी हनुमान द्वारा वासव से संजीवनौषधि लाने की बात सुनकर, सभी, पर्वत लिए आते हुए हनुमान् को देखकर विस्मित होते हैं और वासव कहते हैं कि रोंगटे खड़े हो रहे हैं, प्रलयकाल के समान धूलिवृष्टि उससे गिर रही टेढ़ी पूँछ से टकरा जाने के कारण नक्षत्रमण्डल झटका गया है। औत्सुक्यानुसार व्यापार करके कूदकर जाकर एक ही क्षण में पर्वत लिए हनुमान् आ रहे हैं -

उत्स्फूर्जद्रोमकूपः प्रलयपरिमिलत्पांशुवर्षानुकारी किंचिद्‌भुग्नाग्रपुच्छाप्रतिमविचलनापास्तनक्षत्रचक्रः।
भूम्नौत्सुक्यानुरूपव्यवसितिरधिकं पर्यवप्लुत्य गत्वा क्वापि प्राज्ञः क्षणार्धात्कमपि गिरिमसावाहरन्नाजगाम।।[21]

यहाँ वासव का विस्मय स्थायिभाव है। हनुमान् का पर्वत ले आना आलम्बन विभाव है, हनुमान् आदि उद्दीपन विभाव हैं। इस प्रकार हनुमान की महिमा का वर्णन अनुभाव है और इस वर्णन से अनुमित हर्ष, आवेग, सम्भ्रम आदि व्यभिचारिभाव हैं। इन सबसे परिपुष्ट विस्मय नामक स्थायी भाव अद्‌भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। इस प्रकार यहाँ स्फुट एवं साक्षात् अद्‌भुत रसाभिव्यंजना है। सप्तम अंक के प्रारम्भ में, मिश्र विष्कम्भक की समाप्ति के पश्चात् पुष्पकविमान के साथ विभीषण प्रवेश करता है और उन्हें अप्रतिहतगति सदावशर्ती, मनोरथ के समान सर्वगामी, पुष्पक विमान को सौंपता हैं सभी पुष्पक विमान पर चढ़ते हैं। विमान अद्‌भुत रस का आलम्बन विभाव है और दिव्य है, अतः सप्तम अंक के विमान दृश्य में अद्‌भुत रस की अनुभूति होती है जो अंगी रस वीर का उपकारक होने के कारण अपनी उत्कृष्ट नाटकीयता सिद्ध करता है वस्तुतः पुष्पक विमान यात्रा प्रसंग में अयोध्या नगरी तक अनेक ऐसे स्थल हैं, जिनसे अद्‌भुत रसानुभूति होती है। सप्तम अंक में निर्वहण सन्धि भी है, जो स्वयं अद्‌भुत रस को धारण करती है। राम आदि भरत और माता आदि से मिलकर महर्षि वसिष्ठ के समीप जाते हैं, तभी नेपथ्य से राम के राज्याभिषेक में शिष्य विश्वामित्र स्वयं पधार रहे हैं- ऐसा सुनायी पड़ने पर महर्षि वसिष्ठ राम की भाग्यवत्ता पर प्रसन्न एवं विस्मित होते हैं क्योंकि भगवान् विश्वामित्र इन को अभिषिक्त करने स्वयं पधार रहे हैं। (आकर्ण्य) अहो! अयं भाग्यमहिमा वत्सस्य। यद् भगवान् कौशिकः स्वयं सिंहासने समभिषेक्तुं संप्राप्तः। यहाँ विश्वामित्र भी सभी के साथ राज्याभिषेक में पधारने से हर्षज या आनन्द रसानुभूति हुई है। तभी वसिष्ठ भी विश्वामित्र को देखकर उनके अद्‌भुत कृत्यों से विस्मित हुए कहते हैं कि जिनका क्षात्रतेज स्वाभाविक है और ब्रह्मतेज अधिक है। उन विश्वामित्र महाराज के सभी चमत्कार लोकोत्तर ही हैं। वशिष्ठः दृस एष कौशिकः क्षात्रं प्राकृतिकं तेजो ब्राह्मं यस्य विशिष्यते। लोकोत्तरचमत्कारनिधेस्तस्याद्‌भुतं न किम्।।[22] यहाँ राज्याभिषेक के समय अकस्मात् विश्वामित्र का आ जाना अद्‌भुत वस्तु की प्राप्ति है, अतः निर्वहण सन्धि का उपगूहन नामक अंग है। तत्पश्चात् राज्याभिषेक के समय आकाश से पुष्प वृष्टि होने पर सभी लोग विस्मयान्वित होते हैं- (सर्वे सविस्मयं पुष्पवृष्टिं रूपयन्ति)। इस प्रकार नाटककार भवभूति ने अद्‌भुत रस के दोनों ही भेदों की सफल और सार्थक योजना की है। डॉ. मूलचन्द पाठक लिखते हैं कि राक्षसी ताटका वध, शिवधनुष का भंग, सुबाहु और मारीच का दमन, परशुराम जैसे त्रिभुवन प्रसिद्ध वीर पर विजय तथा बाली व रावण जैसे अलौकिक वीरों का वध आदि राम के कार्य जहाँ उनकी महावीरता के व्यंजक हैं, वहाँ वे प्रेक्षकों के

लिए अद्भुत रस के आलम्बन भी हैं। इन सभी प्रसंगों में अद्भुत रस, वीर रस के अंग के रूप में उसकी सौन्दर्य-वृद्धि का हेतु है। नाटक के कुछ अन्य प्रसंग जैसे राम के प्रभाव से अहल्या का उद्धार तथा उसे दिव्य रूप की प्राप्ति, दिव्यास्त्रों का प्रादुर्भाव व उनके द्वारा राम की स्तुति, ध्यानमार्ग से शिवधनुष की उपस्थिति, शूर्पणखा का मन्थरा के शरीर में आवेश, दनुकबन्ध की चिता में से दिव्यपुरुष का आविर्भाव, राम द्वारा दुन्दुभि के अस्थिसंचय का पादांगुष्ठ से क्षेपण, हनुमान् का द्रोण पर्वत उठाकर उपस्थित होना, पुष्पक विमान द्वारा राम की लंका से अयोध्या तक की यात्रा, मार्ग में विमानस्थ राम को अगस्त्य व विश्वामित्र के संदेशों की प्राप्ति, विभिन्न अवसरों पर आकाश से पुष्पवृष्टि व दुन्दुभि-वादन आदि अद्भुत रस के व्यंजक हैं।[23] 'मालतीमाधवम्' में भवभूति ने अनेक अद्भुत एवं आकस्मिक घटनाओं की सरस, कौतूहलपूर्ण और रोचक संयोजना की है। कामन्दकी के मुख से नाटककार ने सगर्व कहा है कि - अस्ति वा कुतश्चिदेवंभूतं महाद्भुतं विचित्ररमणीयोज्ज्वलं महाप्रकरणम् ?[24] इसी प्रकार प्रकरण की प्रस्तावना में भी उन्होंने कहा है कि इस नाटक में रसों का प्रचुर एवं गम्भीर प्रयोग, सौहार्दप्रसूत आनन्ददायी चेष्टाएँ, प्रणय-सूत्र का आयोजक औद्धत्य, आश्चर्यप्रद कथा एवं वाग्वैचित्र्य आदि गुणों का समावेश हैं। प्रकरण होने के कारण यह श्रृंगार रस प्रधान है। अंगभूतों रसों में अद्भुत, वीर, बीभत्स, करुण, रौद्र आदि रसों की सफलतापूर्वक अभिव्यंजना हुई है।

भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि।
औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं चित्राः कथा वाचि विदग्धता च।।[25]

अर्थात् श्रृङ्गार आदि रसों की प्रचुरता से गम्भीर अभिनय, सौहार्द से नायक और उनके मित्र आदि की मनोहर चेष्टायें, काम प्रयोग के विधान से नायक का वीर, बीभत्स, अद्भुत और रौद्र रस का अवलम्बनत्व, अद्भुत रस को उत्पन्न करने वाली कलायें और वचन में चतुरता-ये इतने गुण हैं। यहाँ कामसूत्र के आयोजन से नायक में वीर, अद्भुत रसों के आलम्बनत्व को प्रकट किया गया है। तृतीय अंक में प्रवेश के पश्चात् शिवमन्दिर से सम्बद्ध कुसुमाकर उद्यान में लवङ्गिका के साथ आयी मालती को देखकर पहले से ही विद्यमान माधव आश्चर्यचकित होता है।

आचर्यमुत्पलदृशो वदनामलेन्दुसान्निध्यतो मम मुहुर्जडिमानमेत्य।
जात्येन चन्द्रमणिनेव महीधरस्य संधार्यते द्रवमयो मनसा विकारः।।[26]

अचानक बुद्धिरक्षिता मालती के पास आकर मदयन्तिका (नन्दन की बहिन) पर दुष्ट व्याध्र के आक्रमण की बात कहती है, जिससे मालती आश्चर्यचकित हुई कहती है- सखि लवंगिके! अहो महान्प्रमादः। मदयन्तिका दुष्ट शार्दूल के चपेटे में आ जाती है। चारों ओर हाहाकार मचने लगता है। इसी बीच वीर मकरन्द वहाँ आ जाता हैं और दुष्ट व्याघ्र मकरन्द को ढृढ़ता के साथ आहत कर देता है, परन्तु मकरन्द उस व्याघ्र को निष्प्राण कर डालता है। यहाँ कामन्दकी और माधव का विस्मय स्थायी भाव है। मकरन्द आश्रय है और दुष्ट शार्दूल आलम्बन है। दुष्ट शार्दूल का मदयन्तिका के प्रति उद्धत होना उद्दीपन विभाव है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्गद्द स्वर आदि अनुभाव हैं और (इस प्रकार के वर्णन से अनुमित) हर्ष, वितर्क आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके द्वारा अद्भुत रस की व्यंजना हो रही है।

पंचम अंक में कपालकुण्डला स्वयं अलौकिक तत्त्व है, पात्र है, जिसके दर्शन से पाठक और दर्शक उसके आकाश मार्ग से विचरण करने से अद्भुत रस की अनुभूति करता है। माधव के शस्त्र के स्पर्श से रहित, छल रहित और मरे हुए किसी पुरुष के किसी अवयव से सम्पादित महामांस (नरमांस) की विक्रय की बात कहने

पर नेपथ्य में पुनः कोलाहल होने पर माधव आश्चर्यचकित हुआ कहता है कि कैसे आघोषण के अनन्तर ही चारों ओर से प्रचलित होते हुए, भयंकर संकीर्ण और स्फुट कोलाहल से आकुल और प्रकट होने वाले भूतों से संकीर्ण श्मशान प्रदेश प्रकम्पित के सदृश प्रतीत हो रहा है- कथमाघोषणानन्तरमेव सर्वतः समुच्चलदुत्ताल-तुमुलव्यक्तकलकलाकुलः प्रचलित इवाभिवर्भवद्भूतसंकटः श्मशानवाटः। आश्चर्यम्

कर्णाभ्यर्णविदीर्णसृक्कविकटव्यादानदीप्ताग्निभिर्दृष्टाकोटिविशङ्कटैरित इतो धावद्भिराकीर्यते।
विद्युत्पुञ्जनिकाशकेशनयनभ्रूमश्रुजालैर्नभो लक्ष्यालक्ष्यविशुष्कदीर्घवपुशामुल्कामुखानां मुखैः।।[27]

प्रस्तुत प्रसंग में साक्षात् अद्भुत रस की अभिव्यंजना हुई है। यहाँ पिशाच आलम्बन विभाव है, पिशाचों के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव है। आश्रय माधव है। स्तम्भ, रोमाञ्च, सम्भ्रम, नेत्र विकास, आदि अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, भ्रान्ति आदि व्यभिचारीभाव हैं। इन सबसे परिपुष्ट विस्मय नामक स्थायी भाव ही अद्भुत के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है।

तदनन्तर कपालकुण्डला और उसके गुरु अघोरघण्ट कापालिक के द्वारा मालती को चामुण्डा भगवती को बलि देने के लिए वहाँ लाया जाता है। मालती के करुणक्रन्दन को सुनकर माधव तत्काल वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा करता है। माधव मालती को श्मशान के समीप और इस अवस्था में देखकर आश्चर्य चकित होता है और कहता है कि आश्चर्य है। यह प्रिया का दर्शन काकतालपरूप से हुआ है- अहो नु खलु भोः। तदेतत्काकतालीयं नाम! सम्प्रति हि -

राहोश्चन्द्रकलामिवाननचरीं दैवात्समासाद्य मे दस्योरस्य—पाणपातविशयादाच्छिन्दतः प्रेयसीम्।
आतङ्काद्विकलं द्रुतं करुणया विक्षोभितं विस्मयात् क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसिंत चेतः कथं वर्तते ।।[28]

यहाँ मेरे मन की ऐसी दशा है, जो वर्णित नहीं की जा सकती अर्थात् माधव की अनिर्वचनीय दशा होने से उसे विस्मय होता है, फलतः अद्भुतरसाभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार यहाँ पंचम अंक में श्मशानदृश्य के अन्तर्गत भूत, प्रेत, पिशाच आदि के चित्रों में अद्भुत, रौद्र, बीभत्स आदि रसों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

नवम अंक में शुद्ध विष्कम्भक में, प्रारम्भ में कामन्दकी की प्रधान शिष्या योगिनी सौदामिनी का पञ्चम अंक में कपालकुण्डला की तरह आकाश मार्ग से ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीपर्वत से पद्मावती राजधानी को प्राप्त करने का दृश्य अद्भुत रस की सामग्री प्रस्तुत करता है। वह कहती है कि मैं उस तरह से उड़ी हूँ, जैसे कि सम्पूर्ण ही पर्वत, नगर, ग्राम, नदी और पर्वत इनका समूह नेत्रों से साफ-साफ देख रही हूँ। वह पुनः पद्मावती नगरी की भव्यता पर विस्मित होती है। तत्पश्चात् सौदामिनी मालती को कपालकुण्डला से बचाने के वृत्तान्त को बतलाती है और वह सौदामिनी अपनी आकर्षण सिद्धि के द्वारा माधव को आकाश में उठा ले जाती है तथा उसके मन्त्र प्रभाव से मकरन्द को क्षण भर के लिए अन्धकार व प्रकाश का संयोग-सा दिखाई पड़ता है, जिससे वह अत्यन्त विस्मयान्वित हुआ कहता है कि -आश्चर्यम्-

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतच क्षणमुपहतचक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्तः।
कथमिह न वयस्यस्तत्किमेतत्किमन्यत् प्रभवति हि महिम्ना स्वेन योगीवरीयम्।।[29]

वह पुनः आश्चर्यान्वित एवं मूढ सा होता है। यहाँ सौदामिनी के इन अद्भुत कार्यों से भययुक्त अद्भुत रस की अनुपम एवं प्रभावयुक्त योजना हुई है। इससे कापालिक की सिद्धि की अपेक्षा तपोबलजनित योग सिद्धि के वैशिष्ट्याधान से भी तपसिद्धि की अद्भुतता सर्वानुभव सिद्ध है ही।

दशम अंक में मालती के नहीं मिलने पर कामन्दकी, लवंगिका और मदयन्तिका शोकाकुल होकर अपने जीवन को व्यर्थप्राय समझकर अपने प्राण त्यागने के लिए पहाड़ की चोटी से मधुमती नदी के प्रवाह में

कूदना चाहती थी कि उसी सौदामिनी की प्रशंसा करते हुए हर्ष और विस्मय के अतिरेक से अभिभूत मकरन्द उनके सामने आ गये, जिसे देखकर कामन्दकी आश्चर्यचकित होती है।[30] तभी मालती को निराश जानकर अमात्य भूरिवसु अग्नि में प्रवेश करने को उद्यत होता है, जिसे देखकर कामन्दकी और मकरन्द अत्यन्त आश्चर्यचकित होते हैं और मालती बेहोश हो जाती है, जिससे सभी पीड़ित होते हैं। पुनः मालती को होश आने पर माधव आश्चर्य करता है- (सोच्छ्वासम्) अये, प्रत्यापन्नचेतनेव मालती। तत्पश्चात् आकाशमार्ग से कामन्दकी आदि के समक्ष आती हुई योगिनी सौदामिनी को देखकर माधव और मकरन्द विस्मयान्वित हुए कहते हैं कि पहले देखी गयी यह योगिनी अतिशय वेग से मेघों का विदारण करती हुई हम दोनों के संमुख आ रही है, जिसके वचनामृत की धारावृष्टि मेघ की धारावृष्टि का अतिक्रमण कर रही है। तभी वे दोनों बताते हैं कि इन आर्या योगिनी ने कपालकुण्डला के क्रोध से उत्पन्न आपत्ति से जनित विपत्ति वाले हम लोगों को, मालती को बचाकर, अतिप्रयत्न कर कष्ट से उद्धार किया है। इसे सुनकर लवंगिका और मदयन्तिका विस्मित हुई कहती है- अहो, आश्चर्यम्। पुनरुक्तदारुणस्य परिणामरमणीयत्वं विधेः। मकरन्द और माधव भी सौदामिनी योगिनी के समस्त अद्भुत कार्यों से प्रभावित और आश्चर्यचकित हुए कहते हैं।[31]

इस प्रकार नवम अंक में करुण और अद्भुत और दशम अंक में अद्भुत रस अतिशय मनोहर प्रकार से प्रकाशित किये गये हैं और नवम एवं दशम अंकों में निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत योगिनी सौदामिनी के चामत्कारिक एवं अद्भुत कार्यो के माध्यम से अद्भुत रस की सफल संयोजना की गई है। इस प्रकार मालतीमाधव में नाटककार भवभूति ने अनेक अद्भुत एवं आकस्मिक घटनाओं की रोचक योजना की है। कामन्दकी के मुख से नाटककार ने सगर्व कहा भी है कि - अस्ति वा कुतश्चिदेवंभूतं महाद्भुतं विचित्ररमणीयोज्ज्वलं प्रकरणम्।[32]

उत्तररामचरितम् में प्रधानभूत करुण रस के अतिरिक्त अंगभूत रसों में करुणविप्रलभ्भ श्रृंगार रस, अद्भुत, भयानक आदि रसों की भी सशक्त अभिव्यंजना हुई है। नाटककार भवभूति ने उत्तररामचरितम् के सप्तम अंक के गर्भांक में सूत्रधार के माध्यम से प्रकारान्तर से अपने इस नाटक को करुण और अद्भुत रस वाला घोषित किया है - यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धं तत्र काव्यगौरवादवधातव्यम् इति। प्रथम अंक में, सीता राम के ऊपर सटकर खड़े जृम्भकास्त्रों को देखकर विस्मित हुई पूछती है कि (निर्वर्ण्य) क एते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्? तत्पश्चात् राम सीता से कहते हैं कि अब ये जृम्भकास्त्र सभी प्रकार से तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे- सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति। यहाँ इस वाक्य के द्वारा सुखमय परिपाक प्रस्तुत कराकर तथा इससे पूर्व जृम्भकास्त्र के कारण अद्भुत रसावेश दिखलाकर नाटककार ने परिभावना नामक मुख सन्ध्यंग की सफल संयोजना की है। द्वितीय अंक में, वनदेवता के पूछने पर आत्रेयी कहती है कि उसी देवता ने उन दोनो के कुश और लव में नाम और प्रभाव भी बताया है, जिसे सुनकर विस्मित वनदेवता कहती है- कीदृशः प्रभावः। आत्रेयी बतलाती है कि उन दोनों को रहस्य सहित जृम्भकास्त्र जन्म सिद्ध हैं- तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि जन्मसिद्धानीति। यह सुनकर वनदेवता विस्मित होती है- अहो नु भो चित्रमेतत्। महर्षि वाल्मीकि मुख से वेद से अन्यत्र नये छन्द के आविर्भाव को सुनकर वनदेता आश्चर्यचकित होती है- चित्रम्। आम्नायान्यत्र नूतनश्छन्दसमवतारः। शुद्ध विष्कम्भक की समाप्ति के पश्चात् शम्बूक के पास जनस्थान में जाकर तलवार से प्रहार कर उसकी मृत्यु करते हैं और सोचते हैं कि क्या वह ब्राह्मण पुत्र जीवित हो गया होगा, तभी शम्बूक के स्थान पर आविर्भूत हुआ दिव्य

पुरुष आकर राम से कहता है कि वह ब्राह्मण बालक जीवित हो गया है और मेरी यह समृद्धि हुई है- दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः। शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते सत्संगगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।।[33] यहाँ सहसा आकाशवाणी होने, शूद्र तपस्वी शम्बूक के वध के पश्चात् उसके स्थान पर दिव्यपुरुष के आविर्भूत होने और मृत ब्राह्मण बालक के पुनर्जीवित हो जाने के प्रसंग में साक्षात् एवं स्फुट अद्भुत रसाभिव्यक्ति हुई है। पंचम अंक में, चन्द्रकेतु आश्चर्य के साथ कहता है कि -

मुनिजनशिशुरेकःसर्वत संप्रकोपान्नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धिप्ररोहः।
दलितकरिकपोलग्रन्थिटंकारघोरज्वलितशरसहस्रः कौतुकं मे करोति।।[34]

अर्थात् रघुवंश का नया अप्रसिद्ध अंकुर के समान एक मुनिकुमार अत्यन्त क्रोध से चारों ओर विमर्दित हाथियों की कपोल ग्रन्थियों (कनपटियों) की टंकार से भयंकर और जलते हुए हजारों बाणों से युक्त मेरे कौतूहल को उत्पन्न कर रहा है। अकस्मात् सैनिकों का कोलाहल शान्त हो जाने पर सुमन्त्र विस्मित हुए कहता है कि लगता है, इस कुमार ने जृम्भकास्त्र का प्रयोग किया है। चन्द्रकेतु भी विस्मित हुए इसका समर्थन करता है कि निश्चय ही अज्ञेय शक्ति वाला जृम्भकास्त्र प्रकट हो रहा हे, जिसके प्रभाव से हमारी सेना लिखी हुई के समान निश्चेष्ट हो गयी हैं -

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च प्रणिहितमपि चक्षुर्ग्रस्तिमुक्तं हिनस्ति।
अथलिखितमिवैतत्सैन्यमस्पन्दमास्ते नियतमवीर्य जृम्भकास्त्रम्।।[35]

आश्चर्य है कि ये जृम्भकास्त्र सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त कर रहे है।[36] यहाँ लव के द्वारा जृम्भकास्त्रों का प्रयोग विस्मयमूलक अद्भुत रस की सृष्टि करता है।

तभी सुमन्त्र लव को जृम्भकास्त्र की प्राप्ति से विस्मित हुए चन्द्रकेतु से कहते हैं- कुतः पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात्। दोनों ही कुमार एक दूसरे को देखकर विस्मित होते हैं- (अन्योन्यं प्रति) अहो! प्रियदर्शनः कुमारः। इस प्रकार पंचम अंक में लव का पहले चन्द्रकेतु की सेना के साथ फिर बाद में स्वयं चन्द्रकेतु के साथ युद्ध अद्भुत परिपुष्ट वीर रस का उत्तम उदाहरण है।

षष्ठ अंक के प्रारम्भ में लव और चन्द्रकेतु के युद्ध में दिव्यास्त्रों के प्रयुक्त होने पर अनेक स्थलों पर अद्भुत रस की सहज अभिव्यक्ति हुई है। दोनों पक्षों द्वारा प्रयुक्त दिव्यास्त्र तथा उनका लोकोत्तर प्रभाव अदभुत रस के अभिव्यंजक हैं। लव भी राम को देखकर मन ही विस्मित हुआ सोचता है कि अरे! ये महानुभाव पवित्र सामर्थ्य और दर्शन से युक्त है- (स्वगतम्) अहो! पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः। आवास इव भक्तीनामेकमायतनं महत्। प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः।।[37] पुनः वह आश्चर्यान्वित हुआ सोचता है कि विरोध शान्त हो गया है, आनन्द के द्वारा गाढ अनुराग फैल रहा है, वह दर्प कहीं चला गया है, नम्रता मुझे झुका रही है। इनको देखने पर न जाने क्यों सहसा पराधीन हो गया हूँ अथवा तीर्थस्थानों की तरह महापुरुषों को कोई बहुमूल्य उत्कर्ष होता है-

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिधन स्तदोद्धत्यं क्वापि व्रजति,
विनयः प्रह्वयति माम्। झटित्यस्मिन्दृष्टे किमिति परवानस्मि,
य दिवा महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।।[38]

सप्तम अंक के प्रारम्भ में, प्रस्तावना में महर्षि (भगवान्) वाल्मीकि के अपने प्रभाव से गंगा किनारे सभी देवता, दैत्य, ग्रामवासी आदि के एकत्र नाटक को देखने के लिए आ जाने पर लक्ष्मण विस्मित होते हैं- भोः

किं नु खलु भगवता वाल्मीकिना समुचित स्थानसन्निवेशो मया। सभी के समुचित स्थानों पर बैठ जाने के पश्चात् गर्भनाटक का सूत्रधार आकर महर्षि वाल्मीकि की आज्ञा सुनाते हैं कि आर्ष (अलौकिक) दृष्टि से देखकर पवित्र, अमृततुल्य वचनों से युक्त तथा हमने करुण और अद्भुत रस वाला कुछ (नाटक) बनाया है। उसमें काव्य के गौरव से आप लोगों को ध्यान देना चाहिए- यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किञ्चिदुपनिबद्धम्। तत्र काव्यगौरवादवधातव्यम् इति। कथन से उत्तररामचरितम् नाम नाटक में नाटककार ने स्पष्टतया करुण रस की प्रधानता उद्घोषित की है और अंग भूत रसों में अद्भुत रस की। इस प्रकार इस नाटक में अद्भुत परिपुष्ट करुण रस प्रधान है। और यहा आर्ष चक्षु अद्भुत रस का आलम्बन विभाव स्पष्ट है ही। नाट्यमंचन के समय रंगमंच पर नेपथ्य से जृम्भकास्त्रों के प्रादुर्भूत होने से कोलाहल को सुनकर राम आश्चर्यचकित होते हैं- अद्भुततरं किमपि। सीता भी आकाश के कोलाहलयुक्त होकर चमकने पर विस्मित होती है- किमित्याबद्धकलकलं प्रज्वलितमन्तरिक्षम्? नेपथ्य से आवाज सुनायी देती है कि हे देवि सीते। आपको नमस्कार है। आपके दो पुत्र ही हमारी गति हैं। जिनके लिये चित्रदर्शन के समय से ही रघुकुलश्रेष्ठ रामचन्द्र के द्वारा हम दिये गये हैं।जृम्भकास्त्रों की इस वाणी और राम के सतत अनुग्रह से सीता विस्मित हुई कहती है कि- दिष्ट्या अस्त्रदेवताः एताः। आर्यपुत्र! अद्यापि ते प्रसादाः परिस्फुरन्ति। लव और कुश को सन्तति परम्परा से जृम्भकास्त्रों की प्राप्ति होने पर गंगा और पृथ्वी दोनों ही आश्चर्यान्वित होती है।[39] तत्पश्चात् नेपथ्य से ध्वनि सुनायी पड़ती है कि हे स्थावर और जंगम प्राणिवर्ग, देवता और मनुष्य लोक! इस समय आप लोग महर्षि वाल्मीकि से आदिष्ट 'पवित्र आश्चर्य' को देखें- भो जंगमस्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामिर्व्याः पश्यन्त्विदानीं वाल्मीकिनाभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्। तभी देखकर लक्ष्मण आश्चर्यचकित हुए कहते हैं कि गंगा का जल जैसे मन्थन से क्षुभित हो रहा है। आकाश देवताओं और ऋषियों से व्याप्त है। आर्या (सीता) देवी गंगा और पृथ्वी के साथ जल से निकल रही है। आश्चर्य है -

मन्थादिव क्षुम्यति गांगम्भो व्याप्तं च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां गंगामहीभ्यां सलिलादुपैति।।[40]

यहाँ अन्त में, निर्वहण सन्धि में, नाटक को सुखान्त बनाने के लिए अद्भुत रस का प्रयोग करके गंगा और पृथ्वी के साथ सीता का गंगा प्रवाह से निकलना दिखाया गया है। सीता पिता जनक और लव-कुश को देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुई कहती है कि- (सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य) कथं तातः? कथं जातौ? राम और लक्ष्मण भी लव और कुश को प्राप्त कर अत्यन्त विस्मित और आनन्दित होते हैं- (सहर्षमालिङ्ग्य) ननु वत्सौ। युवां प्राप्तौ स्थः। अतः यहाँ हर्षज या आनन्दज अदभुत रस है और यहाँ अद्भुत अर्थरूप लव-कुश की प्राप्ति होने से निर्वहण सन्धि का उपगूहन नामक अंग है। इस प्रकार नाटककार भवभूति ने गर्भांक नाटक में अदुभुत रस की बड़ी ही कलात्मक निष्पत्ति करायी है।

इस क्रम में अद्भुत जृम्भकास्त्र की अवतारण में दिव्य अद्भुत रस और पृथ्वी और भागीरथी के साथ सीता के गंगा प्रवाह से निकलने मे आनन्दज अद्भुत रस की सफल निष्पत्ति करायी है। जिससें (निर्वहण सन्धि में) अद्भुत रस के सन्निवेश से दुःखान्त ख्यातवृत्त को सुखान्त में परिणत कर दिया है। इस प्रकार नाटक के सप्तम अंक में अद्भुत रस का समायोजन नाटक 'उत्तररामचरित' को शास्त्र सम्मत सुखद परिणति प्रदान करता है। और इस नाटक के अन्त को चमत्कारशाली बनाता है। इस प्रकार 'उत्तरामचरितम्' का सप्तम अंक दर्शकों को बहुत समय तक आश्चर्यचकित रखता है। वे समझ ही नहीं पाते कि नाटककार क्या प्रस्तुत करना चाहता

है। नाटक में नाटक का आयोजन अद्भुत रस की सृष्टि करता है। इधर तो दर्शक उत्तररामचरितम् को देख रहे हैं, उधर नाटक के ही पात्र वाल्मीकि द्वारा आदिष्ट किसी नवीन (पवित्र) आश्चर्य को देख रहे हैं। राम का सीता से पुनर्मिलन भवभूति की नवीन सृष्टि है, जिसमें नाटककार भवभूति आदिकवि वाल्मीकि को 'एष ते काव्यार्थः' की चुनौती देकर अद्भुत रस का संयोजन कर दुःखान्त कथानक को सुखावसायी (सुखान्त) बना देता है।

डॉ. मूलचन्द्र पाठक लिखते हैं कि सप्तम अंक में सीता के पातालगमन की घटना एक गर्भांक के रूप में प्रस्तुत की गई है। यह गर्भांक जहाँ एक ओर अनेक अद्भुत तत्त्वों से पूर्ण है, वहाँ दूसरी ओर करुण रस का भी व्यंजक है। इसमें सीता के परित्याग के बाद की करुण अवस्था का हृदयद्रावक दृश्य प्रस्तुत किया गया है। राम स्वंय इस गर्भांक के दर्शकों में एक सहृदय सामाजिक के रूप में सम्मिलित हैं। निर्जन वन में श्वापदों से त्रस्त सीता की करुण पुकार उसका गंगा प्रवाह में आत्म विसर्जन, लव कुश का जन्म, गंगा व पृथ्वी द्वारा सीता की रक्षा, पुत्री के परित्याग पर पृथ्वी माता का शोक तथा उनके द्वारा राम की भर्त्सना तथा अन्त में सीता का लोकान्तरगमन आदि प्रसंग राम के हृदय को इतना शोकाकुल कर देते हैं कि वे मूर्च्छित हो जाते हैं। इस प्रकार यह सारा दृश्य अद्भुत परिपुष्ट करुण रस का उदाहरण है।[41] वे पुनः लिखते हैं कि 'हमने देखा कि सारा ही सप्तम अंक अतिप्राकृत घटनावली से युक्त है। इसमें भागीरथी व पृथ्वी तो दिव्य पात्र हैं ही, सीता भी अपनी देवी रूप में उपस्थित हुई है। इसमें नाटककार ने अतीत और वर्तमान तथा कल्पना व यथार्थ का आश्चर्यप्रद समन्वय किया है। भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार यहाँ निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत अतिप्राकृत वस्तु योजना के माध्यम से अद्भुत रस की निष्पत्ति करायी गई है।[42] डा. उमेश पाण्डेय लिखते हैं कि 'यहां भी अद्भुत रस को कवि ने अपने नाटकीय कार्य व्यापार की सुखात्मकता का साधन बनाया है। सामान्यत अधिकांश अद्भुत प्रसंगों की योजना करुण रस की पुष्टि तथा तज्जन्य दुःखात्मक बोझिल वातावरण को सुखात्मक तथा सरस बनाने के लिए की गई है। यही कारण है कि गर्भांक में भवभूति ने इसे करुणाद्भुत रस की नवीन संज्ञा से अभिहित किया है। कुल मिलाकर उत्तररामचरित में अद्भुत रस का नाटकीयता पर बहुत ही सुन्दर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह एक ओर उत्तररामचरित नाटक अंगी रस को पुष्ट करता है तो दूसरी ओर कथावस्तु को सुखात्मक नाटकीयता की ओर अग्रसर करता है।[43]

डॉ. श्रीनिवास मिश्र लिखते हैं कि 'इस गर्भांक द्वारा कवि ने एक नाटकीय चमत्कार भी प्रस्तुत किया है। षष्ठ अंक तक तो दर्शक सीता और राम के घोर वियोग सागर में आकण्ठ निमग्न रहते हैं, उन्हें सीता के जीवित रहने की भी आशा नहीं रहती, क्योंकि वे सुन चुके हैं। -'क्रव्याद्भिरंगलतिका नियतं विलुप्ता। परन्तु इस गर्भांक में वे सीता को देखकर और राम द्वारा सीता का पुत्र ग्रहण देख कर सहसा आश्चर्यचकित रह जाते हैं। वियोग देखते-देखते संयोग को देखना उन्हें भी बड़े आश्चर्य में डाल देता है और इस तरह का प्रस्तुतीकरण विचित्र संवेदनशील, आश्चर्यजनक तथा चित्ताकर्षक लगता है। कवि की यह उर्वरा कल्पना का अद्भुत निदर्शन है। इस प्रकार गर्भांक की यह योजना आवश्यक ही नहीं नाट्यकला की दृष्टि से अनिवार्य भी थी, अतएव इसकी योजना की गई है।[44] वस्तुतः उत्तररामचरितम् में निर्वहण सन्धि का क्षेत्र सप्तम अंक ही है, जिसमें नाटक के अन्त में गर्भ नाटक के रूप में अद्भुत रस एवं निर्वहण सन्धि का प्रयोग नाट्यनियमानुसार ही है।

उपर्युक्त विवेचन से संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नाटककार भवभूति ने अद्भुत रस के अनुप्रयोग को महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् के नाटकीय कार्यव्यापार में सुखात्मक पर्यवसान का साधन बनाया है। इनकी कथावस्तु में अलौकिक तत्त्वों के अत्यधिक समावेष से दिव्य अद्भुत रस की अभिव्यंजना ही अधिक हुई

है, आनन्दज या हर्षज अद्भुत रस की न्यून। मालतीमाधवम् में लौकिक तत्त्वों और अलौकिक तत्त्वों के संतुलित समावेश से दोनों ही आनन्दज या हर्षज अद्भुत रस और दिव्य अद्भुत रस की अभिव्यंजना हुई है। इस प्रकार भवभूति अद्भुत रस का नाटकीयता के अनुरूप सन्निवेश करने में कलात्मकता के कारण श्रेष्ठ माने जा सकते हैं। उन्होंने अपने नाटक में अद्भुत रस को यथोचित स्थान देकर भी नाटकीयता पर हावी नहीं होने दिया है, तथापि अद्भुत रस का नाटकीयता पर संतुलित और अत्युत्तम प्रभाव दर्शनीय एवं अनुभवनीय है।

सन्दर्भ -

1. *नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय।*
2. *उपर्युक्त पर अभिनवभारती टीका।*
3. *नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, अभिनवभारती टीका।*
4. *साहित्यदर्पण, 1/3.*
5. *नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, पृ. 329-30.*
6. *दशरूपक, 4/78-79.*
7. *सा. द., तृ. प.,का. सं. 79*
8. *नाट्यशास्त्र, 20/47.*
9. *साहित्यदर्पण, 6/10.*
10. *नाट्यशास्त्र, 7/82.*
11. *भावप्रकाशन, तृतीय अधिकार, पृ. 65-66.*
12. *महावीरचरितम्, 1/6*
13. *महावीरचरितम्, 1/17*
14. *महावीरचरितम्, 1/20*
15. *महावीरचरितम्, 1/43*
16. *महावीरचरितम्, 1/54*
17. *महावीरचरितम्, 2/6*
18. *महावीरचरितम्, 2/32*
19. *महावीरचरितम्, 3/28*
20. *महावीरचरितम्, 5/13*
21. *महावीरचरितम्, 6/17*
22. *महावीरचरितम्, 6/59*
23. *संस्कृत नाटकों में अतिप्राकृत तत्त्व, पृ. 312*
24. *मालतीमाधवम, दशम अंक*
25. *मालतीमाधवम्, 1/4*
26. *मालतीमाधवम्, 3/5*
27. *मालतीमाधवम्, 5/13*
28. *मालतीमाधवम्, 5/28*
29. *मालतीमाधवम्, 9/54*
30. *मालतीमाधवम्, 10/8*
31. *मालतीमाधवम्, 10/22*
32. *मालतीमाधवम्, 10/23 के बाद का गद्य भाग*
33. *उत्तररामचरितम्, 2/11*
34. *उत्तररामचरितम्, 5/3*
35. *उत्तररामचरितम्, 5/3*
36. *उत्तररामचरितम्, 5/14*
37. *उत्तररामचरितम्, 6/10*
38. *उत्तररामचरितम्, 6/11*
39. *उत्तररामचरितम्, 7/11*
40. *उत्तररामचरितम्, 7/17*
41. *संस्कृत नाटकों में अतिप्राकृत तत्त्व, पृ. 333-34*
42. *वहीं, पृ. 223*
43. *भास एवं भवभूति के नाटकों में रस तत्त्व, पृ. 185*
44. *उ. रा. भूमिका, पृ. 44*

25

महाकवि भवभूति की अलंकार-योजना

पवन कुमार पाण्डेय

अलंकरोति इति अलंकारः इस व्युत्पत्ति के अनुसार शोभा बढ़ाने वाले तत्त्व को अलंकार कहते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों का अत्यधिक महत्त्व है। काव्य में रस मनुष्य के हृदय पक्ष को तृप्त करता है और अलंकार बुद्धि पक्ष को। रस और अलंकार के समन्वय से पूर्ण कवि की वाणी भाव-प्रवणक और बुद्धि को चमत्कृत करने वाली होती है। वस्तुतः अलंकारों की समुचित योजना रसोत्कर्ष में सहायक होती है। वामन ने सत्य ही कहा है कि अलंकार काव्य शोभा की अतिशायिता में अनन्य कारण होते हैं- **काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः, तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।**[1] चन्द्रालोक के रचयिता पीयूषवर्ष जयदेव[2] तो अलंकार रहित काव्य की सत्ता ही स्वीकार नहीं करते। यहाँ तक कि ध्वनिकार आनन्दवर्धन जिन्होंने काव्य में अलंकारों को गौण स्थान दिया है, रसोत्कर्ष में उनके प्रयोग को आवश्यक मानते हैं-

रसभावादितात्पर्यमाश्रित्यविनिवेशनम्। अलंकृतीनां सर्वासामलंकारत्वसाधनम्।।[3]

आचार्य राजशेखर तो काव्यमीमांसा में अलंकारों को वेद का सातवाँ अंग ही मानते हैं। उनके अनुसार अलंकार वेद के अर्थ का उपकारक होता है तथा अलंकारों के अभाव में वेदार्थ की अवगति नहीं हो सकती है- **उपकारत्वात् अलंकारः सप्तममंगमिति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगतिः।।** महाकवि भवभूति ने अपनी तीनों रचनाओं में अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में ये अनुप्रास[4], श्लेष[5] तथा पुनरुक्तवदाभास[6] की विरल योजना करते हैं। इसका कारण है शब्दालंकारों की कृत्रिमता, जो भाषा को दुरूह बनाती है। अर्थालंकारां में भवभूति ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, दृष्टान्त, विरोधाभास, अर्थापत्ति, काव्यलिंग, प्रतीप, समुच्चय, परिसंख्या, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुत प्रशंसा, विषम, परिकर, दीपक, अनुमान, पर्यायोक्ति, स्वभावोक्ति, समासोक्ति, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, विभावना, ससन्देह, अपह्नुति, विकल्प आदि अलंकारों की सुन्दर आयोजना की है तथा संसृष्टि और संकर अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं।

अनुप्रास : काव्य में एक ध्वनि की बारम्बार आवृत्ति में जो संगीत प्रस्फुटित होता है, वही अनुप्रास का उद्देश्य है। किन्तु ध्वनि की पुनरावृत्ति मधुर होनी चाहिए। विकट ध्वनि के आघात से वाक्य-विन्यास कर्ण-कटु हो जाता है। भवभूति का कुछ अनुप्रास प्रयोग इसी प्रकार का है। उनके 'गद्गदनदद्- गोदावरीवारयः'[7] या 'नीरन्ध्रनीलनिचुलानि'[8] सुन्दर अनुप्रास हैं किन्तु 'कूजत्कान्तकपोतकुक्कुटकुलाः- कूलो कुलायद्रुमाः[9]', गुंजत्कुंजकुटीरकोशिकघटाघुत्कारवत्कीचकः'[10] आदि अनुप्रास, प्रायासिक होने के कारण भाषा तथा भाव की दृष्टि से भारी हो गए हैं।

उपमा :

काव्य प्रकाशकार ने उपमा का लक्षण दिया है- 'साधर्म्यमुपमा भेदे'[11] लक्षण की दृष्टि से देखें तो भवभूति के नाटकों में वस्तु के साथ वस्तु की उपमा व गुण के साथ गुण की उपमा, गुण के साथ वस्तु की उपमा तथा वस्तु के साथ गुण की उपमा, उपमा के ये तीनों प्रकार प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु वस्तु के साथ गुण की उपमा भवभूति की अपनी विशेषता है। उपमाओं के सम्बन्ध में भवभूति आकाशचारी हैं। उनकी उपमायें मानसिक गुण और अवस्थाओं को लेकर रचित हैं। कवि पृथ्वी, आकाश के सकल पदार्थों से उपमायें लेता है। हृदयकमल को सुखाने वाले दीर्घ शोक ने वृन्त से टूटते हुए पल्लव के समान सीता के पीले और दुर्बल शरीर को वैसे ही विगलित कर दिया है, जैसे शरद ऋतु का घाम केतकी के भीतरी पत्ते को मलिन कर देता है-

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं हृदयकमलशेषी दारुणो दीर्घशोकः।
ग्लपयति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरं शरदिज इव धर्मः केतकीगर्भपत्राम्।।[12]

मेघध्वनि के समान राम के शब्द को सुनकर सीता मयूरी के समान चकित और उत्कण्ठित हो जाती है -

अपरिस्फुटनिक्वाणे कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी। स्तनयित्लोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठितं स्थिता।।[13]

भवभूति का पाण्डित्य सर्वथा दर्शनीय है। उन्होंने अपनी उपमाओं का चयन वेद एवं दर्शन तथा राजनीति आदि शास्त्रों से भी किया है। महावीरचरित में राम आथर्वण अभिचार-विधि के समान ब्रह्मद्रोहियों के विनाशक कहे गये हैं- **ब्रह्मद्विषो ह्येष निहन्ति सर्वानाथर्वणस्तीव्र इवाभिचारः।**[14] वायु ने बहुसंख्यक मेघों का उसी प्रकार लय कर दिया है, जैसे तत्त्वज्ञान ब्रह्मकल्पित नाम रूपात्मक पदार्थों का लय कर देता है- **विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि। ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः।।**[15] व्यावहारिक दृष्टि से भी भवभूति की उपमायें बहुत सुन्दर हैं। उत्तररामचरित के इस श्लोक में विद्यार्थियों की उनकी क्षमता के अनुसार ही उनमें विद्या संक्रान्त होती है, यह वर्णन अत्यन्त ही रोचक तथा उपादेय है-

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथेव तथा जडे न खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति च।
भवति हि तयोर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।।[16]

भवभूति अपनी उपमाओं में उपमान और उपमेय का सर्वांगीण साम्य दिखाते हैं। जैसे- अद्वितीय गुणों की प्रकाशित कान्ति से सुन्दर, कला सम्पन्न और इस लोक में नेत्रवानों के महोत्सव के कारणस्वरूप माधव का जन्म देवरात से वैसे ही हुआ जैसे बालचन्द्र उदयपर्वत से उदित होता है-

तत उदयगिरेरिवैक एष स्फुटितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान्।
इह जगति महोत्सवस्य हेतुर्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः।।[17]

यहाँ उदयगिरि से देवरात की तुलना और बालचन्द्र से माधव की तुलना पूर्णोपमा का सुन्दर चित्र है।

रूपक :

महाकवि भवभूति ने रूपकालंकार की संयोजना कोमल और विकट दोनों पदों में की है। कोमल-कान्त-पदों में प्रकट शृंगार रस-भरी राम की यह उक्ति- हे पक्षलोचने! तुम्हारे ये कोमल वचन मुरझाये हुए जीवन पुष्प को विकसित करने वाले, इन्द्रियों के मोहक, कर्णों में अमृतस्वरूप और रसायन की तरह मन की शक्ति को बढ़ाने वाले हैं-

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहकानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि! कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।[18]

तथा सीता घर में लक्ष्मी है, इसका स्पर्श चन्दन रस है और बाहु गले पर शीतल और कोमल मुक्ताहार है-

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो- रसावस्याः स्पशो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मुक्तिकसरः किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।[19]

उत्प्रेक्षा :

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमेय की उसके समान उपमान से तादात्म्य-सम्भावना होने पर उत्प्रेक्षालंकार होता है। भवभूति का उत्प्रेक्षालंकार-प्रयोग अनोखा है। प्रिया दर्शन के समय नायक का यह कथन कि इसने जैसे मुझे श्वेत कमलों से बाँध लिया है, अतिशय दुग्ध प्रवाह से स्नान कराया है, विस्फारित लोचनों से समूचा ग्रस लिया है और अमृतवर्षी मेघ से सिंचित कर दिया है, उत्प्रेक्षालंकार के सौन्दर्य को पूर्णतया अभिव्यक्त करता है-

अविरलमिव दाम्ना पुण्डरीकेण नद्धः, स्नपित इव च दुग्धस्रोतसा निर्झरेण।
कवलित इव कृत्स्नश्चक्षुषा स्फारितेन, प्रसभममृतमेघेनेव सान्द्रेण सिक्तः।।[20]

सीता के स्पर्श से राम को एक अनिर्वचनीय अनुभूति होती है। प्रतीत होता है, जैसे अमृतमय लेप उनके शरीर को लिप्त कर रहा है और यह स्पर्श चेतना प्रदान करके भी किसी अननुभूत आनन्द से उन्हें जड़ बना रहा है-

आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून्
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपरमिवादधाति मोहम्।[21]

उनके उपमान प्रायः अमूर्त हैं। कवि सीता की तुलना मूर्तिमयी करुणा और शरीरिणी विरह-व्यथा से करता है-

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।[22]

अर्थान्तरन्यास :

यद्यपि 'अर्थान्तरस्य सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते' यह आभाणक प्रसिद्ध है तथापि भवभूति के अर्थान्तरन्यासों में भी उनके व्यावहारिक अनुभवों का सार अत्यन्त सुन्दरता से अभिव्यक्त हुआ है।

यथा- सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति[23], सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति[24], गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः[25], पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति[26] को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तोर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे[27] आदि। स्नेह कारण की अपेक्षा नहीं करता, इसकी पुष्टि के लिए यह उक्ति कि- सूर्य का उदय होने पर श्वेत कमल खिलता है और चन्द्र के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि पिघलती है, अर्थान्तरन्यास की सरस अभिव्यंजना है-

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं, द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।[28]

दृष्टान्त :

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्[29]

आचार्य मम्मट ने दृष्टान्त का यह लक्षण किया है। अन्य अलंकारों की भाँति भवभूति ने दृष्टान्त अलंकार का चित्रण भी बहुत सुन्दर ढंग से किया है। रघुवंशी राम-लक्ष्मण के लिए यह कथन-

नान्यत्र राघवाद्वंशात्प्रसूतिरनयोः समा। दुग्धार्णवादृते जन्मचन्द्रकौस्तुभयोः कुतः।।[30]

किसी क्षीर सागर को छोड़कर चन्द्रमा और कौस्तुभ कहाँ होते हैं- दृष्टान्त का सुन्दर उदाहरण है। जन्म से परिपूत सीता के लिए तीर्थ-जल और वह्नि का दृष्टान्त अत्यन्त रमणीय है-

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः। तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।[31]

इसी प्रकार यहाँ शोक-पूर्ण हृदय के लिए जलपूरित तटाक का दृष्टान्त तथा रुदन के लिए परीवाह का दृष्टान्त भवभूति की कल्पना का अनूठा विलास है-

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।।[32]

निदर्शना :

जहाँ दो वाक्यार्थों अथवा पदार्थों का सम्बन्ध, अनुपपन्न होते हुए भी अन्त में उपमानोपमेय में परिणत हो जाता है, वहाँ निदर्शनालंकार होता है- **अभवन्वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः।**[33] भवभूति निदर्शना की व्यंजना में एक ऐसे धनुर्धारी बालक का चित्र खींचते हैं, जो दोनों ओर से सेना से घिरा होने के कारण वायु से चंचल इन्द्रधनुर्युक्त मेघ की छवि धारण करता है-

दर्पेण कौतुकवता मयि बद्धलक्ष्यः, पश्चाद्बलौरनुसृतोऽयमुदीर्णधन्वा
द्वैधा समुद्धतमरुत्तरलस्य धत्तैर्मघस्य माघवतचापधरस्य लक्ष्मीम्।।[34]

एक अन्य उदाहरण में कवि निदर्शना की सरस व्यंजना करते हुए राम के जगन्मंगलकारी मुख का चित्र प्रस्तुत करता है, जो आँसुओं की वृष्टि से तुषारों से सिंचित श्वेत कमल की सुन्दरता को प्राप्त हो गया है-

वाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मंलमाननम्। अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्।।[35]

विरोधाभास :

भवभूति ने अनुष्टुप् छन्द की सरल पदावली में विरोधाभास की सुन्दर अभिव्यंजना की है। हनुमान ने तूल राशि की भाँति लंका को जला दिया और रावण के प्रताप को बुझा दिया- **तूलदाहं पुरं लंकां दहतैव हनूमता अपि लंकापतेस्तीव्रः प्रतापो निरवाप्यत।।**[36] विरोधाभास अलंकार का सुन्दर उदाहरण है उत्तररामचरित में राम का सीता के प्रति यह वचन-

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।।[37]

तुमसे जगत् पवित्र है, किन्तु तुम्हारे विषय में मनुष्यों की उक्तियाँ अपवित्र हो रही हैं, तुमसे लोक सनाथ हैं, किन्तु तुम अनाथ होकर दुःख पाओगी, विरोधाभास की रमणीय अभिव्यक्ति है।

काव्यलिंग : महाकवि भवभूति के नाटकों में काव्यलिंग के भी अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा- स्त्री के पातिव्रत्य में तथा वाणी की निर्दोषता में लोक सदा दोषदर्शी होता है-

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।[38]

इस पद्य में 'कुतो ह्यवचनीयता' में वाक्य का कारण निहित होने से वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिंग अलंकार है। मालतीमाधव के इस श्लोक में-

प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतै-र्ललित शिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्।
वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः, पततु शिरस्यकाण्डयमदण्ड इवैष भुजः।।[39]

माधव का भुजदण्ड अघोरघण्ट के सिर पर गिरने का कारण है- अघोरघण्ट के द्वारा मालती के शरीर पर शस्त्रपात। यह काव्यलिंग का सुन्दर सरस उदाहरण है जिसे आचार्य मम्मट ने भी अपने काव्यप्रकाश में उद्धृत किया है।[40]

इसके अतिरिक्त उत्तररामचरित के इस श्लोक में आक्षेप-अलंकार का सुन्दर उपन्यास हुआ है-

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं, त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां, तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण।।[41]

इसी प्रकार यह श्लोक अर्थापत्ति का सुन्दर उदाहरण बन पड़ा है-

जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।

यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः।।[42]

मालतीमाधव के इस श्लोक में समुच्चयालंकार अपने पूर्ण वैभव के साथ वर्णित है-

धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते, मार्गे क्षिपति बकुलामोदगर्भस्य वायोः।

दावप्रेम्णा सरसबिसिनीपत्रमात्रोत्तरीय, स्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति बहुशो मृत्यवे चन्द्रपादान्।।[43]

इसी प्रकार उत्तररामचरित का यह पद्य विषमालंकार का सुन्दर उदाहरण बन पड़ा है-

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम्।

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः, कथय नाथ! कथं बत मन्यसे।।[44]

इसी तरह इस पद्य में ससन्देह अलंकार का सुन्दर समन्वय हुआ है-

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां, निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।

आतप्तजीवितपुनः परितर्पणोऽयं, संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः।।[45]

उत्तररामचरित के इस श्लोक में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षादि अलंकारों की परस्पर निरपेक्षता होने पर भी एकत्र अवस्थिति होने से संसृष्टि अलंकार की सुन्दर उपस्थिति हुई है-

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः, श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।

कष्टं बतान्यदिवदैववशेन जाता, दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः।।[46]

विषम एवं उपमा के संकर अलंकार का निदर्शन हमें मालतीमाधव के इस श्लोक में प्राप्त होता है-

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां, प्रथममेकरसामनुकूलताम्।

पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः, प्रविशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम्।।[47]

इसके अतिरिक्त भवभूति ने मालतीमाधव[48], महावीरचरित[49], उत्तररामचरित[50] में विभिन्न स्थलों पर भी अर्थान्तरन्यास, निदर्शना[51], दृष्टान्त[52], विरोधाभास[53], अर्थापत्ति[54], परिसंख्या[55], तुल्ययोगिता[56], आक्षेप[57] आदि अनेक अलंकारों का मनोहारी एवं हृदयवर्जक स्वरूप प्रस्तुत किया है।

संदर्भ -

1. *काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3, 1-2*
2. *चन्द्रालोक, 1/8*
3. *ध्वन्यालोक, 2/28*
4. *महावीरचरित, 1/26, 2/39, 33, 38, 46, 3/28, 29, 31, 32, 4/43, 5/53, 7/33, मालतीमाधव- 5/30, 6/16, 43, 10/18, उत्तररामचरित- 2/9, 5/5, 11,33, 6/1, 8*
5. *महावीरचरित, 1/50 (विश्वामित्र), 2/16 (वंश), 4/33 (दोष एवं शास्त्र), 5/47 (राम), मालतीमाधव- 1/33-34, 2/1-2-3, महावीरचरित- 3/40*

6. मालतीमाधव, 6/13
7. उत्तररामचरित, 2/30
8. वही, 2/23
9. वही, 2/9
10. वही, 2/29
11. काव्यप्रकाश, 10/124
12. उत्तररामचरित, 3/5
13. वही, 3/7
14. महावीरचरित, 1/62
15. उत्तररामचरित, 6/6
16. वही, 2/4
17. मालतीमाधव, 2/10
18. उत्तररामचरित, 1/36
19. वही, 1/38
20. मालतीमाधव, 3/16
21. उत्तररामचरित, 3/39
22. वही, 3/4
23. वही, 2/1
24. वही, 2/11
25. वही, 4/11
26. वही, 4/12
27. मालतीमाधव, 10/13
28. उत्तररामचरित, 6/12
29. काव्यप्रकाश, 10/155
30. महावीरचरित, 1/23
31. उत्तररामचरित, 1/13
32. वही, 3/29
33. काव्यप्रकाश, 10/149
34. उत्तररामचरित, 5/11
35. वही, 6/29
36. महावीरचरित, 6/5
37. उत्तररामचरित, 1/43
38. वही, 1/5
39. मालतीमाधव, 5/31
40. काव्यप्रकाश, 10/502
41. उत्तररामचरित, 3/26
42. उत्तररामचरित, 1/17
43. मालतीमाधव, 3/12
44. उत्तररामचरित, 3/27
45. वही, 3/11
46. वही, 4/6
47. मालतीमाधव, 4/7
48. वही, 1/24, 25, 2/4, 9/26, 30, 10/13
49. महावीरचरित, 2/4, 6/52, 53
50. उत्तररामचरित, 2/1, 11, 19, 4/11, 12, 18, 5/17, 19
51. मालतीमाधव, 5/15, 32, 6/1, 9/51, उत्तररामचरित, 1/14, 5/11, 27, 29, 30, 36, 6/4, 27, 29
52. महावीरचरित, 1/23, मालतीमाधव, 1/27, 8/7, 9/39, 51, उत्तररामचरित, 1/13, 14, 3/29, 5/20
53. महावीरचरित, 4/20, 24, 6/5, 1/9, 4/7, 8, उत्तररामचरित, 1/43, 7/1
54. महावीरचरित, 1/31, मालतीमाधव, 2/7, 4/5, 5/7, उत्तररामचरित, 1/17, 4/13, 5/28, 6/8, 40, 7/4
55. मालतीमाधव, 1/5, 3/15, उत्तररामचरित, 5/32, 6/32
56. मालतीमाधव, 6/9, 15, उत्तररामचरित, 2/23, 3/48, 4/5, 20
57. मालतीमाधव, 1/1, उत्तररामचरित, 1/35, 3/11, 5/16, 6/3

26

भवभूति के नाटकों में रीति तत्त्व

आशुतोष द्विवेदी

प्रस्तावना

साहित्यशास्त्र में रस, अलङ्कार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य आदि कुछ प्रमुख सम्प्रदाय वर्णित है, जो अपने-अपने निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार काव्य की विशिष्टता को उपस्थापित करते हैं तथा व्याख्यायित करते हैं। कोई आचार्य रस को, तो कोई अलङ्कार को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं। इसी क्रम में आचार्य वामन रीति सम्प्रदाय को काव्य की आत्मा मानते हैं। साहित्य शास्त्र में वामन का रीति सम्प्रदाय प्रमुख सम्प्रदाय के रूप में परिगणित होता है तथा विद्वानों को स्वीकार्य भी है। काव्य की आत्मा के रूप में रीति को स्वीकार करने वाले वामन ने रीति की व्याख्या करते हुए 'विशिष्टपदरचनारीतिः' कहा है, अर्थात् कवि को रचना तो करनी चाहिए किन्तु वह रचना विशिष्ट पदों वाली होनी चाहिए। विशिष्ट का यहाँ भाव है ओज, प्रसाद आदि गुण से युक्त होना। पंक्तियों में रचना वैचिर्त्य, लालित्य, आदि कवि के लेखन में ऐसा कुछ अनूठापन हो, जिससे सहृदयी पाठक चमत्कृत हो उठे, अर्थात् लेखक अपनी रूचि तथा स्वभाव के अनुसार अपने हृदय के भावों को एक विचित्र प्रकार से प्रकट करें इसी को रीति कहते हैं। आचार्य वामन ने उक्त रीति सम्प्रदाय का उल्लेख अपने ग्रन्थ काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में किया है। यद्यपि वामन से पूर्व रीति सम्प्रदाय का उद्‌भव हो चुका था। इसका सूत्र, दण्डी और भामह से भी पूर्व विद्यमान था, किन्तु तत्कालीन समय में इसके लिए मार्ग शब्द का प्रयोग होता था जिसका कोई सम्प्रदाय नहीं था। संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति सिद्धान्त की सुदीर्घ परम्परा दिखाई पड़ती है और भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक इसका सम्यक् अनुशीलन होता रहा है। संस्कृत-काव्यानुशीलन की विशाल परम्परा में इस सिद्धान्त में अनेक प्रकार के परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। वामन के अनुसार रीति शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ है मार्ग, जो रीङ् गतौ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। आचार्यों की विभिन्न रूचि के अनुसार पद प्रयोग को दृष्टि में रखकर रीति की संख्या अनन्त मानी है। चूँकि शीर्षक भवभूति के रूपकों से जुड़ा है जिसमें रीति तत्त्व का अन्वेषण करना है इसलिए रीति का सामान्य परिचय देकर भवभूति के काव्यों पर संक्षिप्त दृष्टिपात करते है। संस्कृतजगत् के सर्वमान्य विद्वान् मनीषी महाकवि भवभूति ने अपनी पाण्डित्यपूर्ण रचना से सम्पूर्ण संस्कृतानुरागियों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। उनको पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ कहा गया है। अपनी लेखनी से पाठकों को आनन्दविभोर कर देने वाले भवभूति करुणरस के राजकवि कहे जा सकते है। अपने करुणरस के द्वारा दर्शकों की आँखों से अश्क बहाने

वाले महाकवि भवभूति ने अपने काव्यों के रचना वैचित्र्य का रसपान करा कर समाज में अपना, एक अलग स्थान हासिल किया है। अपने रूपकों (मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित,) की प्रस्तावना में कवि ने अपने सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं दी है। जिससे उनके स्थान का तथा माता पिता के नाम की जानकारी होती है। एक और विशेष बात जो टीकाकारों ने भवभूति के सम्बन्ध में कहा है कि भवभूति का असली नाम श्रीकण्ठ था और औपाधिक नाम भवभूति, जो पार्वती पर लिखे गए एक अद्भुत् श्लोक के कारण विद्वानों द्वारा दिया गया। यह श्लोक है-

गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसितानननौ। तपस्वी कां गतोवस्थामिति स्मेराननाविव।।

यद्यपि इस श्लोक के बारे में अन्य किसी प्रकार जानकारी नहीं मिलती, इसलिए इसका सन्दर्भ प्राप्त होना कठिन है, किन्तु आचार्य गोवर्धन भवभूति के सम्बन्ध में आर्यासप्तशती लिखते है –

भवभूतेः सम्बन्धात्भूधरभूरेव भारती भाति। एतद्—त कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।।[1]

आचार्य भवभूति के इसी विशिष्ट और वैचित्र्य पूर्ण रचना को (जिसको आचार्य वामन रीति कहते है) प्रस्तुत लेख में जानने का सार्थक प्रयास करेंगे –

विषयोपस्थापन

महाकवि भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने अपने को वाणी का स्वामी कहा है - वश्यवाचःकवेर्वाक्यं।[2] अतः वे वर्ण्यविषय के अनुसार उसे यथावसर कहीं प्रसादगुणोपेत रीति के रूप में, कहीं ओजगुणोपेत गौडी रीति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहीं-कहीं मृदुला घाटी तो कहीं पाञ्चाली का प्रयोग करते हैं। उनके नाटकों में विषयानुरूप कहीं कहीं माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णों से अलङ्कृत ललित दिखलायी देती है तो कहीं-कहीं कठोर परुष वर्णों से संयुक्त क्लिष्ट भाषा दृष्टगोचर होती है । वे शृंगार एवं करुण रस के व्यञ्जना में कोमलकान्त आह्लादमयी पदावली का प्रयोग करते हैं तथा वीर, भयानक एवं वीभत्स रसों की व्यंजना के लिए गौडी रीति के आडम्बर से युक्त पदों का प्रयोग करते हैं। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है -

जैसा की पूर्व में उक्त है कि प्रत्येक रीति का अपना-अपना गुण होता है। वीर रस में जहां गौडी का प्रयोग उचित है, ओज गुण होना चाहिए। वहां यदि कवि, प्रसाद अथवा माधुर्य का प्रयोग करता है तब 'बन्ध शिथिल हो जाता है' कवि की काव्यरचना सफल नहीं होती। जैसा कि वेणीसंहार में –

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातः, सञ्चूर्णितोरूयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-, रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः।।[3]

यह भीम की वीरोक्ति है, प्रथम तीन पादों में वीर रस के अनुकूल ओज, गुण और गौडी रीति का प्रयोग उचित ही है। किन्तु चतुर्थ पाद में कवि ने वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण का प्रयोग किया हैं जो वीर रस के अनुकूल नहीं है और जिससे बन्ध में शिथिलता आ गई है। ऐसे ही कई अन्य स्थल है जहां रस के अनुकूल रीति का प्रयोग नहीं हुआ। वहीं 'मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्' भीम की इस उक्ति में वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण का प्रयोग किया गया है जो प्रकृत में वीररस के प्रतिकूल है। इसी प्रकार शृङ्गार व करुण के सन्दर्भ में भी जहां माधुर्य व प्रसाद का प्रयोग अपेक्षित है, वैदर्भी का प्रयोग इष्ट है, वहां गौडी का प्रयोग रसघातक होगा। दोनों रीतियां अपने-अपने गुणों और रसों से मर्यादित है। मर्यादा के उल्लङ्घन से रसान्विति नहीं रहती।

भवभूति के प्रस्तुत नाटक में हम रीतियों का उचित और मर्यादित प्रयोग पाते हैं। करुण रस की अभिव्यञ्जना में भवभूति ने वैदर्भी का आश्रय लिया। कोमल भावों को व्यक्त करने के लिए इस रीति का प्रयोग उचित ही है। देखिए, पञ्चवटी में राम के सीता विषयक शोकोद्गार-

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते वहति विकलःकायो मोहं न तु मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात् प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।[4]

ऐसे स्थलों पर जहां अश्रुपात से मलिनता प्रवाहित होकर हृदय स्वच्छ हो जाता है। भवभूति सरल, कोमल और लघु शब्दों का प्रयोग करते हैं। कोमल भावों के अभिव्यञ्जक संवादों में भी कवि ने इस शैली को अपनाया है। यह एक ऐसी देन है जो संस्कृत साहित्य में बहुत कम मिलती है। देखिए उत्तररामचरित के तृतीय अंक में राम वासन्ती संवाद। वासन्ती राम से कह रही है-

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं, किमयशो ननु घोरमतः परम।
किमभवद्विपिने हरिणी-दृशः, कथय नाथ कथं वत मन्यसे।।[5]

सम्भोग और विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में भी कवि सफल हुए हैं। वैदर्भी रीति का प्रयोग करते हुए उन्होंने पदों का जो मधुर मिलन किया उससे एक अपूर्व अनुरणन उत्पन्न होता है जो शिखरिणी छन्द में और भी अधिक गूँज उठा है। कैसा मधुर है सम्भोग शृंगार की दशा का यह वर्णन-

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो विकारश्चैतन्यं भ्रमयति सम्मीलयति च।।[6]

विप्रलम्भ शृङ्गार के चित्रण में तो कवि अनुपम है। अन्तस्तल में निगूढ़ भावों को मृदु और मधुर शब्दों से अभिव्यक्त करने में वे अतीव कुशल हैं। कैसा मर्मस्पर्शी है मन्दाक्रान्ता में राम का यह करुण आक्रन्दन-

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।[7]

वीर रस के प्रयोग में ओज गुण का प्रयोग परम्परा के अनुकूल है। प्रस्तुत नाटक के लवचन्द्रकेतुसंवाद में इसकी झलक मिलती है। किन्तु इसी सन्दर्भ में वात्सल्य का प्रवेश होने पर गुण और रीति दोनों बदल जाते है क्योंकि गुण और रीति दोनों अपने-अपने रस के साथ ही चलते हैं । कवि के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में एक नवीनता प्रकट होती है। प्रकृति की कठोर, उग्र और रौद्र रूप के वर्णन में समासगर्भित वाक्यों का प्रयोग उचित ही है किन्तु प्रकृति के सुकुमार रूप के वर्णन में भी कवि ने गौडी रीति का प्रयोग किया। साहित्यिक-क्षेत्र में कवि की यह अपूर्व देन है ।

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरु, त्प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः।।[8]

समासगर्भित रचना के माध्यम से प्रकृति के कोमल आकर्षक रूप को चित्रित करने में कवि को अपूर्व सफलता मिली। इसमें संदेह नहीं है। भवभूति की भाषा स्वाभाविक है। उन्होंने प्रचलित भाषा में ही साहित्य का निर्माण किया । दृश्य काव्य में यह उचित भी था। उनके समय में प्राकृत भाषा का प्रचलन कम हो गया था। लोग शौरसेनी प्राकृत को ही समझ पाते थे। उत्तररामचरितम् में केवल चार ही पात्र सीता, कौशल्या, सौधातकि और दुर्मुख इस प्राकृत का प्रयोग करते हैं। कवि को भाषा पर अधिकार था-

यं ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।।[9]

उत्तररामचरित में कोमलकान्तपदावली से विभूषित अधोविन्यस्त रचना का अवलोकन करें, जिसमें राम के कानों को रस से आप्यायित कर देने वाली सुन्दरी सीता की मधुर वाणी की प्रशंसा कर रहे है –

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।[10]

वियोगवेदना से व्यथित करुणमूर्ति जानकी कि प्राणवती मूर्ति सुन्दर चित्राङ्क न कवि स्वाभाविक रूप से इस प्रकार कर रहा है –

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।[11]

उनकी भाषा गम्भीर भावों को व्यक्त करने में समर्थ है। उनकी शैली को सरल, सरस एवं भावानुकूल कह सकते हैं। इस प्रकार से उत्तररामचरित के जैसे ही महाकवि भवभूति के अन्य कृतियों (महावीरचरितम्, मालतीमाधवम्) में भी उत्कृष्ट और वैचिर्त्यपूर्ण सङ्केत प्राप्त होते है। इसमें सबसे अधिक संकेत मालती-माधव में[12], उससे कुछ कम महावीर चरित में[13] और सबसे कम उत्तररामचरित[14] में प्राप्त होता है।

नीचे भवभूति के कृतियों में कुछ विशिष्ट पद आये हैं, जो काव्य के भाषा, भाव, रस आदि मान्यताओं को प्रकट करते हैं। भवभूति की भाषा आदि का मानदण्ड उन्हीं के शब्दों में कुछ यूं ठहरता है कि वाणी का वैदग्ध, प्रौढ़, उदार, गुणभूयसी, प्रसन्न-कर्कश, विपुलार्थ तथा अर्थ गौरव से पूर्ण होना है।

किसी तथ्य को व्यक्त करने का ढंग जब अनूठा हो अथवा उक्ति में चातुर्य का पुट वर्तमान हो उसे ही वाणी की विदग्धता मानेंगे। विदग्ध के कई अर्थों में काव्य क्षेत्र में इसके कुशल, प्रवीण, सहृदय आदि पर्याय ही स्वीकृत है, अतः भाषा की विदग्धता में रचनाकार की भाव-गत और शैली-गत कुशलता, रसात्मकता आदि गुण सन्निविष्ट होते हैं। इसे 'वाणीभंगिमा' भी मान सकते हैं। निश्चय ही भाषा का यह एक श्रेष्ठ गुण है और इससे किसी साहित्यकार की प्रातिभ ऊर्जा प्रकट होती है। भवभूति में इस गुण की सत्ता प्रचुरता से विद्यमान है। नाटकीय संवादों के सन्दर्भ में इसकी उपयोगिता एवं प्रभावोत्पादकता असंदिग्ध हैं। नन्दन के साथ मालती के विवाह के प्रसंग में भूरिवसु द्वारा राजा को दिए गए वचन में विदग्धता की अच्छी निष्पत्ति हुई है[15] -

''कन्यकाप्रदाने च नृपतयःप्रमाणम्''। देखने में यह एक अत्यन्त छोटा सा वाक्य है, किन्तु इसकी विदग्धता का ही परिणाम है कि भूरिवसु अपने राजा को प्रसन्न भी कर देते हैं, और अन्ततः नन्दन के साथ मालती के विवाह के निमित्त अपना वचन भी नहीं हारते। इसी प्रकार मालती वेशधारी मकरन्द के पास लवंगिका और बुद्धिरक्षिता मदयन्तिका के आक्रोश को दूर करने, उसे अपने विश्वास में लाने तथा उसके प्रणयभाव को उभारकर उसे मकरन्द की ओर आकृष्ट करने के लिए जो प्रयत्न करती हैं उसमें वाग्वैदग्ध्य का अच्छा पुट है। यहाँ मदयन्तिका की रुष्ट वाणी को लक्ष्य करके लवंगिका ने अपनी वाणी की जिस कुशलता का परिचय दिया है, भाषा भावभंगिमा की उदाहति में वही अलम् होगा।[16]

प्रौढि - भाषा में प्रौढि तब आती है, जब साहित्यकार अपने विवक्षित अर्थ का निर्वाह अपने शब्दों में कर पाता है। एक पद में पूरे वाक्य को कहा जाए अथवा एक पद के लिए पूरा वाक्य कह जाय। इस प्रकार भाषा या शैली की प्रौढि में एक साथ ही कई गुण समाविष्ट हो जाते हैं। बारह वर्षों के पश्चात् दुःखिनी सीता पञ्चवटी के सुपरिचित वनांचल में जब शोकाकुल राम को देखती है तो उनके मन की अनिर्वचनीय अवस्था हो जाती है। कवि ने सीता की उस अबूझ सी मानसिक स्थिति को जो भाषा प्रदान की है, वह कितनी भावपूर्ण और स्पष्ट है।[17]

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा द्वियोगे दीघेऽस्मिनझटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयित करुणैर्गाढकरुणं द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव।।[18]

उदारता- उदारता का सम्बन्ध काव्यगुण एवं काव्यशैली से माना जा सकता है। मालती माधव के विद्वान् टीकाकर श्री जगद्धर की दृष्टि में उदारता का एक और अभिप्राय अलंकार आदि में दोषों का राहित्य भी है। महाकवि भवभूति के ऐसे कई श्लोक है जिसमें इस प्रकार के गुण की प्रचुर सम्पत्ति भरी हुई है

एते ते कुहरेषु गद्गद्नदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराक्षोणीभृतो दक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुल चलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसपुण्यासरित्सङ्गमाः।।[19]

प्रकृत श्लोक में गोदावरी नदी के पहाड़ी मार्ग तथा गिरि-कन्दराओं से टक्कर लेती हुई उसकी उत्ताल गति 'गद्गद्नदद्गोदावरीवारयो' की झंकार से मूर्त हो जाती है। इसी प्रकार लव और चन्द्रकेतु के अस्त्र-शस्त्रों की ध्वनि भाषा को प्रतिध्वनित कर देती है –

झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकं धनु र्ध्वनद्गुरुगुणाटनी—तकरालकोलाहलम्।
वितत्य किरतोशरानविरतं पुनशूरयो-र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम्।।[20]

माधव द्वारा लिखित पत्र उसके हृदय के मार्मिक भावों की व्यञ्जना कर रहा है –

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दु कलादयः प्रकृति मधुरासन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचन चन्द्रिका नयनविषयं जन्मन्येकस एव महोत्सवः।।[21]

माधव के अनुराग में पूर्ण रूप से निमग्न मालती के हृदय को प्रस्तुत करता हुआ कवि गम्भीर भाव की व्यञ्जना कर रहा है –

मनोरोगस्तीव्रो विषमिव विसर्पत्यविरतं प्रमाथी निर्धूमो ज्वलति विधुतःपावक इव ।
हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानिति इतो न मां त्रातुं तातःप्रभवति न चम्बा न भवती ।।[22]

उत्कण्ठित रावण सीता के स्वाभाविक सौन्दर्य को अत्यन्त कुशलता के साथ अभिव्यक्त कर रहा है –

मुखं यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले लोचने किमुत्पलकदम्बकैर्यदितरङ्गभङ्गी भरुवौ।
किमात्मभवधन्वना यदि सुसंयताः कुन्तलाः किमम्बुवहडम्बरैर्यदि तनूरियं किं श्रिया।।[23]

महाकवि भवभूति ने वर्ण्य विषय के अनुसार यथावसर गौडी रीति तथा ओजोगुण का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार की भाषा वीर, भयानक और रौद्र रसों के अभिव्यञ्जन में भी प्रयोग हुयी हैं। कवि राक्षसी ताटका का वर्णन इस प्रकार कर रहा है-

आन्त्रप्रोतबृहत्कपालनलकक्रूरक्वणत्कङ्कण-प्रायप्रेङ्खितभूरिभूषणरवैराघोषयन्त्यम्बरम्।
पीतोच्छर्दितरक्तकर्दमघनप्राग्भारघोरोल्लल-द्यालोलस्तनभारभैरववपुर्दर्पोद्धतं धावति।।[23]

वीररस की प्रधानता के कारण महावीरचरित में ओजगुण का, शृङ्गार रस की प्रधानता के कारण मालतीमाधव में माधुर्य गुण का और करुण रस की प्रधानता के कारण उत्तररामचरित में प्रसाद गुण का प्राधान्य है। महाकवि भवभूति ने रस व्यञ्जना की दृष्टि से उपयुक्त गुण और रीति का प्रयोग किया है। ओजगुण युक्त गौडी रीति में रचित अधोविन्यस्त पद्य अवलोकन करें-

दोर्लीलाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यत-दृष्टङ्कारध्वनिरार्यबालचरितङ्कस्तावनाडिण्डिम।
द्राक्पर्यस्तकपालसम्पुटमितब्रह्माण्डभाण्डोदर-भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति।।[24]

प्रसाद गुणोपेत वैदर्भी से अलङ्कृत अधोविन्यस्त श्लोक का अवलोकन करें-

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं वा स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां गुणापूजा स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।।[25]

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति ने मानव अनुभूतियों का अत्यन्त स्वाभाविकता, गम्भीरता एवं व्यापकता के साथ विषद चित्रण किया हैं, उन के चित्रण में उनकी शक्तिमती समृद्ध भाषा ही कारण रही है। उनकी अनुभूतियों और भावनाओं की अभिव्यञ्जना में भाषा सर्वत्र अप्रतिहत रहीं हैं। उनका भाव पक्ष भी बहुत सबल है। वे वास्तव में नाटककार से अधिक कवि है। जहाँ कालिदास केवल कोमल भावों को व्यक्त करने में समर्थ है वहीं भवभूति कोमल और कठोर दोनों प्रकार के भावों को व्यक्त करने में समर्थ है। उन्होंने शृंगार और करुण जैसे कोमल रसों के चित्रण में अपनी क्षमता दिखाई तो वीर, रौद्र और वीभत्स के चित्रण में भी वे कम कुशल न थे। शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग को उन्होंने अपने रूपकों में स्थान दिया। अपने नाटकों में वर्ण संघटन, पद संघटन, वाक्य संघटन और लोकोक्तियों आदि के चयन में भी उन्होंने अपनी काव्यशक्ति का प्रयोग किया हैं। यहीं कारण है कि कवि की भाषा प्रतिपाद्य विषय को जितना व्यक्त कर रहीं है उससे कहीं अधिक प्रतिपाद्य की व्यञ्जना में सक्षम हो रहीं हैं। भवभूति द्वारा लिखित संवाद जब नाटकीय पात्रों के मुख से उच्चरित होता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम उस स्थिति को जी रहे है जिस स्थिति काल को विचार कर कवि ने लेखन किया है। यहीं उनका वैदग्ध्य है जिसके कारण भवभूति आज भी विद्वत्समाज में प्रशंसित और अभिनन्दनीय है।

सन्दर्भ -

1. *आर्यासप्तशती/ग्रन्थारम्भव्रज्या /36*
2. *महावीरचरित 1/4*
3. *वेणीसंहार 1/21*
4. *उत्तररामचरित 3/31*
5. *उत्तररामचरित 3/27*
6. *उत्तररामचरित 1/35*
7. *उत्तररामचरित 3/38*
8. *उत्तररामचरित 2/20*
9. *उत्तररामचरित 1/2*
10. *उत्तररामचरित 1/36*
11. *उत्तररामचरित 3/4*
12. *मालतीमाधव*

सूत्रधारः - तत्परिषदं निर्दिष्टगुणप्रबन्धेनोपतिष्ठावः।
नटः- प्रविश्य भाव,कतमे ते गुणा यानुदाहरन्त्यार्यमिश्रा भगवन्तो भूमिदेवाः।
सूत्रधारः- भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगारूसौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि।
औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं चित्राः कथा वाचि विदग्धता च।। मालतीमाधव 1/6
यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद्गुणो नाटके ।

त्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः।। मालतीमाधव 1/10

13. महावीरचरित महापुरुषसंरम्भो यत्र गम्भीरभीषणः। प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती।। म.वी.च. 1/2
किं च अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरः स्थितो रसः।
भेदैः सूक्ष्मैरभिव्यक्तैः प्रत्याशाओं विभज्यते।। म.वी.च.1/3
तेनेदमुद्धृतजगत्त्रयमन्युमूल
मस्तोकवीरगुरुसाहसमद्भुतं च।
वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य
धर्मद्रुहो दमयितुश्चरितं निबद्धम्।। म.वी.च. 1/6

14. उत्तररामचरित पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम............. । उ.रा.च. 1/पृष्ठ-4
यं ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।। उ.रा.च. 1/2
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणत प्रज्ञस्य वाणीमिमाम् ।

15. मालतीमाधव/पृष्ठ 103

16. मालतीमाधव/पृष्ट 128
मदयन्तिका-(तथा कृत्वा) दुर्मनायते कथमियं वामशिला। लवंगिका- कथं नाम नव वधू विश्रम्भणो पायाभिज्ञ लडहं विदग्धं मधुरभाषिणमरोपणं ते भर्तारमासाद्य न दुर्मनायिष्यते मे प्रियसखी।

17. उत्तररामचरित/ 3:13

18. उत्तररामचरित/3:13

19. उत्तररामचरित 6/1

20. मालतीमाधव 1/39

21. मालतीमाधव 2/1

22. महावीरचरित 6/9

23. महावीरचरित 1/35

24. महावीरचरित 1/54

25. उत्तररामचरित 4/11

27

भवभूति के रूपकों में ध्वनि तत्त्व

शैलेन्द्र कुमार साहू

ध्वनि-शब्द और अर्थ एवं पद की उत्पत्ति का बोध कराने वाला इस चेतन जगत का प्रमुख तत्त्व है। आचार्य आनन्दवर्धन की कृति ध्वन्यालोक नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में ध्वनि सम्प्रदाय का प्रतिस्थापन किया गया है। ध्वनि सम्प्रदाय प्रवर्तक के रूप में आचार्य आनन्दवर्धन को श्रेय प्राप्त है। इन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा में स्वीकार किया है। हालांकि ऐसा नहीं है कि आनन्दवर्धन से पूर्व किसी ने ध्वनि पर चर्चा नहीं की। इनसे भी पूर्व अनेक आचार्यों ने ध्वनि को अपने मतानुसार परिभाषित किया है। किन्तु साहित्य जगत में आनन्दवर्धन से पूर्ववर्ती आचार्यों को काव्य जगत में ध्वनि के निरूपण में वह उपलब्धि न मिल सकी जो आनन्दवर्धन को प्राप्त हुई। इन्होंने ध्वनि पर हो रही चर्चा को इतना व्यापक रूप दिया की इन्हें ध्वनि के आचार्य के रूप में जाना जाने लगा। ध्वनि को साहित्यिक आचार्यों ने शब्द शक्तियों के आधार पर रस अलंकार तथा वस्तु ध्वनि के रूप में वर्गीकृत किया। ध्वनि का सर्वाधिक प्रयोग व्याकरण शास्त्र में तथा दर्शन शास्त्र (शैव दर्शन) में हुआ है। ध्वनि सिद्धान्त स्पष्ट रूप से व्याकरण के स्फोट सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। स्फोट का आधार स्तम्भ ध्वनि ही है। नगाड़े के डंके से होने वाला नाद शब्द के अर्थ को अभिव्यंजित करता है। ध्वनि शब्द का सामान्य अर्थ है नाद। व्याकरण शास्त्र में ध्वनि का वर्णन आया है। वैयाकरणी श्रूयमाण वर्णों में ध्वनि का व्यवहार बताते हैं। श्रूयमाण वर्ण ही ध्वनि के सिद्धान्त आधार है। महर्षि पतञ्जलि ने स्फोट को ही ध्वनि सिद्धान्त माना है। ध्वनि ही अर्थ के स्फोट का कारण है। नाद और स्फोट के बीच व्यंजकव्यंग्य संबंध है। वैयाकरणीय आचार्यों का मानना है कि स्फोट नित्य यथार्थ शब्द है किन्तु ध्वनि श्रूयमाण शब्द है जो अनित्य है। ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले आचार्य आनन्दवर्धन ने भी वैयाकरण के स्फोट सिद्धान्त से ही अपना ध्वनि सिद्धान्त ग्रहण किया है, परन्तु उन्होंने ध्वनि को साहित्य ''शास्त्र'' के अनुकूल सरसता प्रदान की है। ध्वनि शब्द का प्रयोग साहित्य शास्त्र में 9वीं शताब्दी में कश्मीरी विद्वान् आनन्दवर्धन के द्वारा किया। उन्होंने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में उनसे पूर्व के आचार्यों के विषय में भी चर्चा की है-

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व, स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्वमूचुस्तदीयं, तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्।।[1]

इससे ज्ञात होता हैं कि ध्वनि का उल्लेख उनसे पूर्व भी किया जा चुका था। किन्तु ध्वनि के विषय में किसी भी मूल ग्रन्थ की प्राप्ति न होने से ध्वनि तत्त्व का प्रतिपादन करने का श्रेय आनन्दवर्धन को ही दिया जाता

है। आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि है, एवं ध्वनि का सम्बन्ध व्यञ्जना से है। ध्वनि की स्थापना को विधि और निषेध दो रूपों में प्रस्तुत किया है। विधिरूप स्फोट है और निषेध रूप में जो आचार्य अभिधा लक्षणा के अलावा व्यञ्जना शक्ति का निषेध करते हैं उनके मतों का खण्डन किया है। जिस प्रकार शब्द के अलग-अलग वर्णों के उच्चारण से अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं होती है, उसी प्रकार अभिधा और लक्षणा के बिना भी सम्पूर्ण अर्थ की तथा विशेष रूप से लक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति कर पाना असम्भव है। अभिधा, लक्षणा के बाद जो अर्थ का बोध होता है, वह व्यंजना वृत्ति के द्वारा ही व्यंग्य अर्थ प्राप्त होता है, जैसे किसी वाद्य यंत्र नगाड़े या ढ़ोलक पर आघात करने पर जो मधुर रूप में प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है उसी प्रकार शक्ति भी व्यंग्यार्थ में ध्वनित होती है। अतः ध्वनित होने वाला व्यंग्यार्थ जहाँ प्रधानभूत वही ध्वनि होती है। आनन्दवर्धन ने इसे दर्शित किया है-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ। व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।[2]

अर्थात् जहाँ पर स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करते है, उस काव्य विशेष को विद्वानों के द्वारा ध्वनि कहा गया है। कहने का तात्पर्य यहाँ यह है कि ध्वनि में व्यंग्यार्थ से अधिक महत्वपूर्ण होना भी अपेक्षित है। आचार्य आनन्दवर्धन की पुनरावृत्ति करते हुए मम्मटाचार्य तथा पण्डितराज जगन्नाथ उतमोमत्तम काव्य रूप में (ध्वनि काव्य) स्वीकार करते है। आनन्दवर्धन प्रतीयमान अर्थ को ही मानते हुए कहते हैं कि महाकवियों की वाणी में वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान अर्थ कुछ और ही वस्तु है, जो प्रसिद्ध अलंकारों अथवा प्रतीत होने वाले अन्य गुणादि तत्वों से भिन्न सुन्दरियों के लावण्य के समान अलंकारादि से भिन्न ही प्रकाशित होता है, जिस प्रकार सुन्दरियों का सौन्दर्य समस्त अंगो से पृथक दिखाई देता है, उसी प्रकार ध्वनि भी काव्य के सभी रूपों में अपना पृथक अस्तित्व रहती है। यथा-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीताम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभति लावण्यमिवाङ्गनासु।।[3]

यह प्रतीयान अर्थ ही काव्य की आत्मा है- काव्यस्यात्मा स एवार्थः।। यद्यपि ध्वनिशब्दसङ्कीर्तनेन काव्यलक्षणविधायिभिर्गुण-वृत्तिर्व्यो वान कश्चित् प्रकारः प्रकाशितः, तथापि अमुख्यवृत्या काव्येषु व्यवहार दर्शयिता ध्वनिमार्गो मनाक् स्पृष्टोऽपि न लक्षितः।

पूर्ववर्ती आचार्यों ने जिन आक्षेप समासोक्ति, विशेषोक्ति, पर्यायोक्त, अपह्नुति, दीपक अप्रस्तुत प्रशंसा अर्थान्तरन्यास, सङ्कर आदि अलंकारों की विवेचना तो कि किन्तु वाच्यार्थ से अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ की भी प्रतीति होती है, यह स्वीकार किया। इससे स्पष्ट है कि प्रतीयमान अर्थ को वे स्वीकार तो करते थे, लेकिन उन्होंने उसे ध्वनि नहीं माना। पण्डित जगन्नाथ ने 'पर्यायोक्त' अंलकार की विवेचना में इसे स्वतंत्र रूप में स्वीकार किया है-

ध्वनिकारात् प्राचीनैर्भामहोदभटप्रभृतिभिः स्वग्रन्थेषु कुत्रापि 'ध्वनि', 'गुणीभूत' व्यंगयादि शब्दाः न प्रयुक्ता इत्येतावतैव तैर्ध्वन्यादयो न स्वीक्रियन्ते इत्याधुनिकावा वागे युक्तिरयुक्तैव। यतः समासोक्तिव्याजस्तुत्यप्रस्तुत प्रशंसाद्येलंकारनिरूपणेन कियन्तोऽपि गुणीभूतव्यंग्यभेदास्तैरपि निरूपिताः।[4]

ध्वनि के अन्तर्गत आचार्य आन्दवर्धन ने अलंकार और वस्तु ध्वनि की अपेक्षा रस ध्वनि को सर्वोत्तम स्थान दिया है। ध्वनि को दो लक्ष्यों में निश्चित किया है - 1. ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना। 2. रस अलंकार रीति गुण दोष काव्य भेदादि का सुचारू ढंग से निरीक्षण करते हुए उनसे सम्बन्ध स्थापित करना है।

रस ध्वनि के बिना कोई भी काव्य उत्तम कोटि का नहीं और ध्वनि के बिना कोई रस की उत्पत्ति नहीं। अतः काव्यगत ध्वनि को सरसायुक्त रमणीय और रस को व्यंग्य पूर्व होना ही पड़ेगा। इसीलिए रस को काव्य में व्यापकता से ग्रहण किया जाता हैं जहाँ पर व्यंग्यार्थ-विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव के संयोग पर आश्रित हो वहाँ पर रस ध्वनि की प्रमुखता मानी जाती है। भरतमुनि, कालिदास, भास, भवभूति आदि कवियों ने भी नाटक परम्परा में ध्वनि तत्व को प्रमुख स्थान दिया है। अतः नाटक को दृश्यकाव्य की कोटि में रखा गया है। 'काव्येषु नाटक रम्यम्' । कहकर नाटक की विशिष्टता को परिभाषित किया गया है। लेखन से लेकर अभिनय के द्वारा नाटक में कलाओं का संश्लिष्ट रूप होता है- तब जाकर काव्यात्मक सौन्दर्य की विलक्षता की सृष्टि करने में कवि सक्षम हो पाता है। नाटक में अभिनय और बोलचाल दोनो साथ-साथ चलते है। जिसके कारण इहलोक में भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र की इतनी प्रसिद्धि हुई की उसे पंचम वेद् के नाम से जाना जाता है। नाटक को तीनों लोंको के विशाल भावों का अनुकीर्तन कहा जाता हैं। अतः भरतमुनि के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग एवं कर्म नहीं है जो ध्वनि से युक्त रस से युक्त नाटक में दिखाई न दे-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[5]

रचनात्मक दृष्टि के आधार पर यदि देखा जाय तो भारतीय आचार्यों द्वारा निर्धारित आधार तत्वों को ही अपने नाटकों में समन्वित करके भवभूति ने अपने नाट्य साहित्य को विशेष स्वरूप दिया। संस्कृत साहित्य के नाट्य जगत में कालिदास, भास आदि की तरह भवभूति भी अग्रगण्य है। मुख्यतः राम के जीवन पर आधारित नाटकों में तो वह प्राण हैं। उनके नाटकों में राम का जीवन चरित्र सुदीर्घ परम्परायुक्त, निर्जीव सा दृष्ट होता है। नाटककार महाकवि भवभूति की नाट्य प्रतिभा और उदात्त भाव का यदि चिन्तन करें तो उनके नाटकीय तत्वों एवं उपजीव्य साहित्य का विश्लेषण करना अति आवश्यक है। संस्कृत साहित्य में काव्य को दो भागों में विभाजित किया है- 1. दृश्य काव्य 2. श्रव्य काव्य।

नाटकों को दृश्य काव्य की कोटि में रखा गया है-**'रूपं दृश्यतयोच्यते'।**[6]

क्योंकि नाटकों का काव्य जगत में स्वतंत्र स्थान रहा है। समयानुसार साहित्यकार भी किसी युग विशेष को ही, विशेष प्रवृत्तियों की देन है। अतः यह विभूतियां युगान्तों तक कभी न धुँधली होने वालीं नूतन महत्वाकांक्षाओं की ही स्वभावतः उपलब्धि है। प्रारम्भ से बहती आ रही अनवरत साहित्य रूपी धारा में भवभूति जैसे महान नाटककार अपनी स्फुटित वाणी के नाद से नूतन स्वर प्रदान करते हैं। उनके काव्य शैली को मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। भवभूति की पूर्व कृति 'महावीरचरितम्' का उपजीव्य महाकवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायाण ही है। अपने नाटकों के उपजीव्य ग्रन्थों के विषय में भवभूति ने स्पष्ट रूप से बताया है। नाटक में अलंकार, रस निष्पत्ति, संवादात्मक दृश्य नाटक के प्रमुख अंग होते हैं। कवि द्वारा कल्पित भाव भाषिक स्वरूप रस अलंकार आदि तत्वों को समाहित करके सहृदयों को भाव गाम्भीर्य और अनिवर्चनीय इस अनुभूति को महत्वता देकर महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में ध्वनि तत्व को विशेष महत्व दिया है। महाकवि भवभूति का 'उत्तररामचरितम्' ध्वनि तत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाकवि की रचना 'उत्तररामचरितम्' सात अंको में निबद्ध उनकी श्रेष्ठतम कृति है। जिसके विषय में कहा जाता है-

''जडानपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा। ग्रावाप्यरोदीत्पार्वत्या हसतः स्मस्तनावपि।।''[7]

'हरिहर कवि'

भवभूति के नाटकों को कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। महाकवि भवभूति द्वारा विरचित 'महावीरचरितम्', 'मालतीमाधवम्' और 'उत्तररामचरितम्' ये तीन नाटक सुप्रसिद्ध हैं। सात अंकों के नाटक महावीरचरितम् में राम-सीता विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं के साथ राम के महावीरत्व को मुख्य रूप से वर्णन का विषय बनाया गया है। और दस अंकों युक्त 'मालतीमाधवम्' प्रकरण में मालती और माधव की प्रणय कथा का वर्णन किया गया है।

वस्तु, नेता रस की दृष्टि से उपलब्ध दोनों रचनाओं में महाकवि भवभूति ने परम्परागत शैली को प्रदर्शित किया है। परन्तु वहीं 'उत्तररामचरितम्' में भावनात्मक दृष्टि से ओत-प्रोत होकर अनेक विलक्षणीयतागत प्रयोग करके परम्परा की रज्जुओं को मुक्त कर नये रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया है। जिसके लिए उन्हें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है। महाकवि ने श्रृंगार, वीर रस को अंगी के रूप में स्थान देने में अग्रणी रहे हैं फिर भी उन्होंने 'उत्तररामचरितम्' में करूण रस को महत्वपूर्ण रूप से रखते हुए स्पष्टतः उद्घोष किया कि-

एको रसः करूण एव निमित्त भेदाद्, भिन्नः पृथक् पृथगिवश्रयते विवर्तान्।[8]

श्लोक के माध्यम से भवभूति कहना चाहते हैं कि श्रृंगार आदि रस भी करूण रस के ही विवर्त है। यद्यपि ऐसा नहीं हैं कि करूण रस का प्रयोग किसी ने किया ही नहीं है, जबकि आदिकवि वाल्मीकि कालिदास आदि विद्वानों ने पूर्व में ही प्रयोग किया है। किन्तु उन्होंने करूण रस को अंगी का स्वरूप नहीं माना जैसा कि भवभूति के उत्तररामचरितम् मे सहृदयों को अनुभव होता है। ऐसा करूण रस निःसंदेह रूप से अन्यत्र दुर्लभ है। भवभूति का अभिप्राय यही है कि रस सदैव सजीव चैतन्य का स्वात्मपरामर्श है, रस की गहनता जितनी करूण रस मे सम्भव है, उतनी अन्य रसों में भला कहाँ? अन्यत्र सम्भव ही नहीं है। करूण रस, श्रृंगार, हास्य, वीर, क्रोध रसों की अपेक्षा अधिक गहन एवं अधिक व्यापक है। अन्तरदाह से दग्ध होकर पीड़ा के ताप से घिरे हुए राम का मन भवभूति ने अपने उत्तररामचरितम् में ध्वनि के माध्यम से अभिव्यंजित किया है, कि राम की विवशता उनके हृदय की ज्वाला को उद्घाटित कर रही है। हृदय फट रहा है, किन्तु विदीर्ण होकर विभाजित नहीं होता है, श्वासों को बार-बार विच्छेद होने से मूर्च्छा आ रही है, देह अचेतन अवस्था के आवरण से आच्छादित है और आन्तरिक पीड़ा तीक्ष्ण ज्वाला से दग्ध है, किन्तु पूर्णतः दग्ध होकर राख नहीं बनने देती है। पीड़ा का प्रहार बारम्बार हृदय पर होने से भाी वह निष्प्राण नहीं होते हैं। मुरला, राम के शोक को पुटपाक के समान बताती है-

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करूणो रसः।।[9]

शम्बूक वध के दौरान जब राम पंचवटी में पुनः प्रवेश करते हैं तब सीता से वियोग की वेदना से द्रवीभूत हो जाते हैं-

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगंधिषु। इतीवारमतेहासौ स्नेहस्तस्याः सतादृशः।।[10]

राम का यह सीता के प्रति करूणता के रूप में स्फुटित हो रहा है। आपके साथ पुष्प-पराग की गंध से युक्त मैं विन्ध्य के वनों में रह लूंगी। आपके बिना मैं अयोध्या में कैसे रहूँगी, इस प्रकार कहती हुई सीता इसी पंचवटी के अरण्य में निवास करती थी। यहाँ व्यंग्यार्थ यह है कि सीता राम के साथ जंगल के निवास को राज्यसुख की अपेक्षा अधिक सुखद समझती थी। यह वस्तुध्वनि का स्पष्ट उदाहरण है। इस प्रकार वनवास के समय उसी स्थान पर राम का पुनः आगमन अतिशय पीडात्मक है-

एतत्पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं, यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा बसन्तः।
आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे, सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः।।[11]

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि राम राज्य का परित्याग कर मुनिवृत्ति से जीवन निर्वाह करने के लिए वन में आए थे। अतः वे वानप्रस्थ थे। और वे वन में सपत्निक थे अतः गृहस्थ भी हुए। यहाँ व्यंग्य रूप में शांत और श्रृंगार दोनों रसों का अद्भुत संयोग देखने को मिल रहा है।

महाकवि भवभूति ने 'महावीरचरितम्' में राम राज्याभिषेक से पूर्व उनके जीवन का वर्णन किया गया है। जो कि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण पर आधारित है। वाल्मीकि रामायण में राम के चरित्र का सर्वप्रथम वर्णन प्राप्त हुआ है। इसके उपरान्त तुलसीदास कृत रामचरितमानस में राम के जन्म से पूर्व लेकर राज्याभिषेक तक का वर्णन है। राम के जीवन पर आधारित अनेक कवियों ने कालकृत कृतियों द्वारा अद्भुत रचनाएँ लिखी है। उन्हीं विद्वानों में से भवभूति का भी अनन्य स्थान रहा है। महाकवि भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में क्रमशः वीर, श्रृंगार और करूण रस को प्रधान मानकर रचना की है। जिसमें 'महावीरचरितम्' भवभूति की प्रथम रचना प्रतीत होती है। जिसमें प्रारंभ से ही हृदय स्पर्शी कला का बड़ा ही कुशलता से सरसता पूर्ण, ध्वन्यात्मक दृष्टि से भी प्रसङ्गानुसार दृश्यों का वर्णन किया गया है-

आतङ्कश्रमसाध्वसव्यतिकरोत्कम्पः कथं सहृयता
मङ्गैर्मुग्धमधूकपुष्परूचिभिर्लावण्यसारैरयम्।
उन्नद्ध स्तनयुग्मकुड्मलगुरूश्वासाव भुग्नस्यते,
मध्यस्य त्रिबलीतरङ्गकजुषो भङ्गः प्रियेमा च भूत्।।[12]

प्रस्तुत श्लोक में रस ध्वनि की अद्भुत झलक दृष्टव्य है। व्यंजना के माध्यम से रसयुक्त, शब्दों में व्यक्त करते हुए ऐसे दृश्य का वर्णन किया है कि जब परशुराम राम को सम्बोधित करते हुए बुलाते है और सीता भी राम के साथ पीछे-पीछे जाती हुई राम को लौटाना चाहती है। सीता के हृदयात्मक संवेगों का जो कौतूहल है उसका महाकवि भवभूति ने रसध्वनि (व्यंग्य) के माध्यम से महावीरचरितम् के उपर्युक्त श्लोक में वर्णन किया है।

वहीं एक और अन्य प्रसंग में भी राम की मनोहरी दशा का बड़ी ही नैपुण्यता से चित्रण किया है कि राम अपने पिता महाराज दशरथ की आज्ञा को शिरोधार्य कर वनगमन करते है। तभी उनकी आत्मा भरत के व्याकुल हृदय की पीड़ा पर उद्वेग होने लगती है। क्योंकि भरत को जब इस घटना के विषय में ज्ञात होगा तब वह करूणता की ज्वाला से जल उठेगा। और समय राम को वनवास जाना अत्यन्त असम्भव हो जाएगा। इसीलिए राम भरत के ननिहाल से वापस अयोध्या लौट आने का इंतजार नही करते है वरन् उनका वनगमन कर पाना स्तब्ध हो जायेगा ऐसे दृश्य से ओत-प्रोत भाव का वर्णन यहाँ महाकवि भवभूति द्वारा किया गया है-

अपरिष्वज्य भरतं नास्ति मे गच्छतो धृतिः। अस्मत्प्रवासदुःखार्तं न त्वेनं प्रष्टुमुत्सहे।।[13]

ऐसे ही अनेक प्रसंङ्गों के द्वारा रस अलंकार वस्तु ध्वनि का कवि ने वर्णन किया है कौशल काव्यगत शैली की अप्रतिम प्रतिभा दृष्टव्य है-

लोकालोकालबालस्खलनपरिपतत्सप्रमाम्भोधिपूरं,
विश्लिष्यत्पूर्वकल्पत्रिभुवनमखिलोत्खातपातालमूलम्।
पर्यस्तादित्यचन्द्रस्तबकमबपतद्भूरिताराप्रसूनं
ब्रह्नस्तम्बं धुनीयामिह तु मम विद्यावस्ति तीव्रो विषादः।।[14]

महावीरचरितम् में राम के बाल्यकाल से लेकर सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन किया गया है-

विश्वामित्र के आश्रम में राक्षसों से त्रासित ऋषियों की रक्षा करते हुए, अहिल्या उद्धार जनकपुरी गमन, शिव धनुष भंग, परशुराम वृतान्त, राम-विवाह, वनगमन बालीवध, सीताविजय अयोध्या आगमन तक का बड़े रसिकतापूर्ण दृश्यों को चित्रित कर दिया है। भवभूति की काव्यशैली कवित्व जगत में हृदयावर्जक भावों की सूक्ष्म से भी सूक्ष्म दृश्यों को उद्घाटित करती हुई विलक्षणीय काव्यकला है वही भवभूति कृत मालतीमाधवम् में भी श्रृंगाार रस से ओतप्रोत से ध्वनि की झलक का मनोहारी वर्णन-

भूम्ना रसानाम् गहनाः प्रयोगाः सौहार्द्रहृदयानि विचेष्टातानि।
औद्धत्यमायोजित कामसूत्र चित्रः कथा वाचि विधग्ता च।।[15]

महाकवि भवभति ने एक ही जगह पर उन समग्र तत्वों को संगठित किया है जिसके माध्यम से वह अपनी वाणी की प्रौढ़ता, उदारता अभिव्यक्त कर सकें। इस प्रकार कवि अपनी नाटकीय दक्षता के प्रायः प्रत्येक मूल्य को तो इस कृति में संपुष्ट करना ही चाहता है, साथ ही वह अपने अथक प्रयासों से अपने पूर्ववर्ती 'वाल्मिकी' तथा समकालीन कवियों को भी अपने नाट्य चित्रण के माध्यम से उन्हें भी उभारना चाहता है। एक साथ ही इतनी सापेक्ष घटनाओं की भाँति, कलापूर्ण तथा साहसपूर्ण आकांक्षाएँ इसी बात की साक्षी है कि कवि अपनी काव्यकला के सर्जन में कितना चौकन्न है। ऐसे दृष्टान्तों पर कवि का प्रकाश डालना काव्य वैचित्र्य नही तो क्या है? मालतीमाधवम् के अध्ययन से उसके विलक्षण वृत्त का मार्मिक दृश्यात्मक रूप उभर आता है। -

मालतीमाधवम् के नाटकीय बीज का संबंध देवराज और भूरिवस के वचन दान से है किन्तु उनका यही निश्चय ही उनको संकट में डाल देता है। माधव के परम स्नेही मित्र मकरंद तथा नन्दन की बहन मदयन्तिका का प्रणय गौण वृत्त है। इस प्रकरण में मूलतः रति ही है। भवभूति ने मालतीमाधवम् के प्रेम जगत में संयम को भी विशेष प्रधानता दी है। माधव के प्रति प्रेम होते हुए भी मालती स्वयं की मनोवृत्तियों पर काबू रखती है। मालती के इसी भावात्मक अंकुश के विलोम मदयन्तिका का चरित्र भी भवभूति ने निरूपित किया है। वह उस प्रणय प्रस्ताव को प्रसन्नता के साथ मान लेती है। वह सामाजिक मर्यादाओं की भित्ति को तोड़ने में एक पल का भी विस्तार नही करती है। वही जब मालती की बात आती है, तब मालती लवंगिका से माधव के प्रति प्रेम पीड़ा के विषय में कहती है और लवंगिका उसे माधव से प्रेम विवाह करने का सुझाव देती है। परन्तु मालती इस सुझाव से इन्कार करते हुए कहती है कि वह एक कुलीन परिवार से होने की वजह से सामाजिक मर्यादाओं का पूर्णतः पालन करेगी यदि उसे माधव और अपने परिवार में से किसी एक का चयन करना पड़े तो उस स्थिती में अपने जीवन से भी अधिक प्रिय अपना परिवार अग्रणी है। यहाँ पर सामाजिक मर्यादाओं का दायरा प्रखर रूप से दिखाई देता है। मालती की असहनीय स्थिती को देखकर लवंगिका ने पूजनीय कामन्दकी से अपनी सखी को उस स्थिति से बचाने का अनुरोध किया। कामन्दकी को मालती के दुःख पर बहुत करूणा हुई और वह दुविधा में पड़ गये वह सोचने लगे कि मालती के दुःख का निवारण इतना सहज नहीं है। यह शकुंतला, उर्वशी, वासवदत्ता आदि की तरह अपनी मर्जी से प्रेम विवाह नहीं करती है। किन्तु कामंदकी ने अंतिम अंक में सुखद मोड़ पर नाटक को सुखान्त बना दिया है। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि भवभूति ने रामायण की कथा को आधार बनाया तो बनाया ही साथ ही रोचक तथ्य यह भी है कि उन्होंने अपने नाटकों कों सुखान्त रूप को भी साकार किया है। भवभूति ने इस लक्ष्य को अग्रपथ पर ले जाने के लिए घटनाओं में यथास्थान परिवर्तन भी किया है। तथा अपनी कृतियों में नये-नये दृश्यों को भी जोड़ा है, नये पात्रों की कल्पना की है इन्हीं परिवर्तनों के

कारण भवभूति की मौलिकता और नाटकीय प्रतिभा के परिप्रेक्ष्य में ही उन्हें स्मरण किया जाता है। भवभूति ने अपनी काव्यगत शैली में विभिन्न रोचक तत्वों को इस तरह से जोड़ा है कि नाटकीय दृश्य और मौलिकता स्वभाविक रूप में प्रतीत होती है। भवभूति ने अपने रूपकों में सजीवतापूर्ण घटनाओं एवं ध्वनितत्त्व का अद्‌भुत सामंजस्य अपनी कृतियों में किया है।

संदर्भ -

1. *ध्वन्यालोक - 1/1*
2. *ध्वन्यालोक - 1/13*
3. *ध्वन्यालोक - 1/4*
4. *रसगंगाधर पृष्ठ संख्या-360*
5. *नाट्यशास्त्र - 1/113, 114*
6. *दशरूपक - 1*
7. *हरिहर कवि की उक्ति*
8. *उत्तररामचरितम् - 3/47*
9. *उत्तररामचरितम् - 3/1*
10. *उत्तररामचरितम् - 2/18*
11. *उत्तररामचरितम् - 2/22*
12. *महावीरचरितम् - 2/21*
13. *महावीरचरितम् - 4/43*
14. *महावीरचरितम् - 5/45*
15. *मालतीमाधवम् - 1/4*

28

उत्तररामचरितम् में वक्रोक्ति

सन्दीप कुमार यादव

संस्कृत के काव्यों का अनेक आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से अनुशीलन किया। किसी ने रस को ही काव्य का सर्वस्व माना तो किसी ने अलंकार को, किसी ने रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य को काव्य का सर्वस्व स्वीकार किया। इन आचार्यों ने इन्हीं को काव्य का जीवनाधायक तत्त्व माना। यह तत्व ही आगे चलकर के संप्रदाय के रूप में प्रसिद्ध हुए और संस्कृत काव्यशास्त्र के जगत् में षट् संप्रदायों का आविर्भाव हुआ। रस संप्रदाय, अलंकार संप्रदाय, रीति संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय, वक्रोक्ति संप्रदाय और औचित्य संप्रदाय। इन संप्रदायों में वक्रोक्ति का अपना विशेष महत्त्व है। यद्यपि सभी आचार्यों ने वक्रोक्ति को एक अलंकार विशेष मानकर ही चिंतन किया है परंतु आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को एक व्यवस्थित एवं मौलिक सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठापित किया। उनकी वक्रोक्ति केवल एक अलंकार के रूप में नहीं अपितु एक व्यापक दृष्टि के रूप में दृष्टिगत होती है।

संस्कृत के आर्षकाव्य रामायण में राम के पवित्र चरित्र का वर्णन किया गया है। इसको उपजीव्य बना करके अनेक महाकवियों ने अपनी लेखनी चलाई है। उसी परंपरा में महाकवि भवभूति का अपना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। भवभूति का उत्तररामचरित नाट्यसाहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है इसमें सात अंक हैं। यह नाटक वक्रोक्ति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। वक्रोक्ति का स्वरूप बताते हुए आचार्य कुन्तक कहते हैं - **उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः। वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते।।**[1]

अर्थात् यह दोनों शब्द और अर्थ अलंकार्य होते हैं तथा इन दोनों की अलंकृति चातुर्यपूर्ण कथन वक्रोक्ति कहलाती है। यह शब्द और अर्थ दोनों ही अलंकार्य अर्थात् अलंकार द्वारा अलंकरणीय है अर्थात् शोभातिशयकारी, किसी न किसी अलंकार से युक्त करने योग्य होता है। इन दोनों का अलंकरण एक ही अलंकृति है, जिसे वक्रोक्ति कहते हैं। यह वक्रोक्ति प्रसिद्ध कथन से भिन्न अभिधा से विचित्र उक्ति है - वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी-वैदग्धभङ्गीभणितिः। वैदग्ध्यं विदग्धभावः, कवि कर्म कौशलं, तस्य भङ्गी विच्छित्तिः तया भणितिः। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते।[2] अर्थात् वैदग्ध्यपूर्ण शैली से कथन ही वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य का आशय चतुरतापूर्ण भाव से है। कवि के कर्म का कौशल उसकी शोभा होती है अर्थात् विदग्धभाव से युक्त कवि के काव्य-निर्माण का कौशल से, जो अभिधा से विचित्र उक्ति कहीं जाती है उसे वक्रोक्ति कहते हैं। आचार्य कुन्तक कहते हैं कि कवि के सभी तत्त्वों का सन्निवेश वक्रोक्ति के अंतर्गत हो जाता है इनके अनुसार वक्रोक्ति के मुख्य रूप से षट् भेद होते हैं-

कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः सम्भवन्ति षट्। प्रत्येकं बहवो भेदास्तेषां विच्छित्तिशोभिनः।।
वर्णविन्यासवक्रत्वं पदपूर्वार्द्धवक्रता। वक्रतायाः परोऽप्यस्ति प्रकारः प्रत्ययाश्रयः।।[3]

अर्थात् कवियों के व्यापार की वक्रता के मुख्यतः 6 प्रकार हो सकते हैं। उनमें से प्रत्येक भेद के वैचित्र्य से शोभित होने वाले अनेक भेद हो सकते हैं। वक्रोक्ति के 6 प्रकार हैं - (1) वर्णविन्यासवक्रता (2) पदपूर्वार्द्धवक्रता (3) प्रत्ययवक्रता (4) वाक्यवक्रता (5) प्रकरणवक्रता (6) प्रबन्धवक्रता।

1. वर्णविन्यासवक्रता- आचार्य कुंतक के अनुसार वर्णों का विन्यास अर्थात् वर्णों का संयोजन वर्णविन्यास कहलाता है तात्पर्य यह है कि अक्षरों का विशेष प्रकार से रचना में रखना ही वर्ण विन्यास है। वर्णों की विशिष्ट प्रकार की रचना के वक्रत्व से आशय यह है कि प्रसिद्ध प्रस्थान सभी वर्णों का विशिष्ट प्रकार का विन्यास जो शब्दशोभातिशय से युक्त होकर सहृदयों के लिए आह्लादकारी होता है, इसे ही वर्णविन्यासवक्रता कहते हैं। सामान्यतया जिस प्रकार की वर्ण योजना होती है, उससे भिन्न एक विशेष प्रकार की वर्ण-योजना के कारण शब्द शोभा में अतिशय उत्पन्न होता है। यह शब्दशोभातिशय ही वर्णविन्यासवक्रता है- वर्णानां विन्यासो वर्णविन्यासः। अक्षराणां विशिष्टन्यासनं, तस्य वक्रत्वं वक्रभावः प्रसिद्धप्रस्थानातिरेकिणा वैचित्र्यणोपनिबन्धः सन्निवेश-विशेषविहितस्तद्विदाह्लादकारी शब्दशोभातिशयः।[4] उत्तररामचरित के तृतीय अंक का यह श्लोक वर्णविन्यासवक्रता का एक उदाहरण है -

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्टः।
परिकम्पिनः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्।।[5]

इस श्लोक में जडो जडात्, परिकम्पिनः प्रकम्पी, और स्विद्यतः स्विद्यन् आदि शब्दों में बिना किसी व्यवधान के दो वर्णों की बारंबार आवृत्ति हुई है। अतः यह वर्णविन्यासवक्रता का उदाहरण हुआ। अनेक वर्णों की आवृत्ति रूप वर्णविन्यासवक्रता का उदाहरण प्रथम अंक में दर्शनीय है-

स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन, प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा, स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि।।[6]

इस श्लोक के तीनों चरणों में स्मरसि पद का विन्यास के कारण अनेक वर्णावृत्ति विन्यासवक्रता का उदाहरण है।

2- पदपूर्वार्द्धवक्रता - प्रातिपदिक रूप सुबन्त का तथा धातु रूप तिङन्त का पूर्वार्द्ध में विन्यास वक्रता पदपूर्वार्द्ध वक्रता कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जहां सुबन्त अथवा तिङन्त पद का विन्यास पूर्व में किया जाता है और वह सहृदयों के लिए आह्लादकारी होता है, वह पदपूर्वार्द्ध वक्रता होती है उसके रूढ़ि, संज्ञा, पर्याय, उपचार, विशेषण, संवृति, वृत्ति, लिंग, क्रिया आदि बहुत से भेद संभव हैं - पदस्य सुबन्तस्य तिङन्तस्य वा यत्पूर्वार्द्धं प्रातिपदिकलक्षणं धातुलक्षणं वा तस्य वक्रता वक्रभावो विन्यासवैचित्र्यम्। तत्र च बहवः प्रकाराः सम्भवन्ति।[7]

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में पर्यायवक्रता का उदाहरण है। पर्यायवक्रता उसे कहते हैं, जिसमें वस्तु का अनेक शब्दों से कथन संभव होने पर भी प्रकरण के अनुरूप होने से कोई सर्वातिशायी विशेष पद ही प्रयुक्त किया जाता है- पर्यायवक्रत्वं नाम प्रकारान्तरं पदपूर्वार्द्धवक्रतायाः। **यत्रानेकशब्दाभिधेयत्वे वस्तुनः किमपि पर्यायपदं प्रस्तुतानुगुणत्वेन प्रयुज्यते**[8]**-**

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।[9]

इस श्लोक में सीता वाचक अनेक पद रहते हुए भी विशेष रुप से जानकी यह पर्याय शब्द कुछ अपूर्व

चमत्कार को प्रकाशित कर रहा है, क्योंकि जानकी कहने से यह विदित हो रहा है कि यह सीता जितनी अपने पति के लिए प्रिय है, उतनी ही प्रिय अपने पिता के लिए भी हैं अर्थात् जानकी अपने पिता और पति दोनों की प्रिय है, ऐसे प्रियतमा को भी प्रजा के अनुरंजन के लिए राम को परित्याग करने में कोई कष्ट नहीं होगा। यह जो चमत्कार है वह जानकी के अन्य पर्यायपद के होने पर संभव नहीं है, अतः यह पदपूर्वार्द्धवक्रता के पर्यायवक्रता का उदाहरण है।

3- प्रत्ययाश्रितवक्रता - वक्रता का प्रत्यय के आश्रित रहने वाला भेद प्रत्ययाश्रित वक्रता कहलाता है। यहां प्रत्यय से तात्पर्य सुप् और तिङ् से है अर्थात् जहां प्रत्ययों का विन्यास इस प्रकार किया गया हो जो चमत्कार को उत्पन्न करता हो, वह एक प्रकार की वक्रता होती है, जिसे प्रत्ययाश्रितवक्रता कहते हैं। इसके भी अनेक भेद संभव है। जैसे संख्यावैचित्र्यकृता, कारक-वैचित्र्यकृता और पुरुष-वैचित्र्यकृता आदि। वक्रतायाः परोऽप्यस्ति प्रकारः प्रत्ययाश्रय इति। वक्रभावस्यान्योऽपि प्रभेदो विद्यते। कीदृश-प्रत्ययाश्रयः। प्रत्ययः सुप् तिङ् च यस्याश्रयः स्थानं स तथोक्तः। तस्यापि बहवः प्रकाराः सम्भवन्ति - संख्यावैचित्र्यविहितः, कारकवैचित्र्यविहितः, पुरुष-वैचित्र्यविहितश्च।[10]

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में प्रत्ययवक्रता के कारकवैचित्र्यकृत का उदाहरण है। जहां अचेतन पदार्थ में भी चेतनत्व का अध्यारोप करके रसादि के परिपोषण के लिए उनमें चेतन की ही क्रिया का समावेश रूप कर्तृत्वादि कारक के रूप में उस चेतन पदार्थ का वर्णन किया जाता है वहां कारकवैचित्र्यकृत प्रत्ययवक्रता होती है - कारकवैचित्र्यविहितः - यत्राचेतनस्यापि पदार्थस्य चेतनत्वाध्यारोपेण चेतनस्यैव क्रियासमावेशलक्षणं रसादिपरिपोषणार्थं कर्तृत्वादिकारक निबध्यते।[11]

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना तथा वृत्तं पापर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।[12]

दण्डकारण्य के वर्णन के प्रसंग में लक्षण कहते हैं कि आपके चरित से पत्थर भी रो पड़ा था और वज्र का भी हृदय फट गया था। इस श्लोक में पत्थर और वज्र आदि चेतन पदार्थों में भी चेतनत्व का अध्यारोप करके कवि ने उनमें रोदिति और दलति क्रियाओं का कर्तृत्व प्रदान किया है। तात्पर्य है कि जब राम के चरित को देखकर पत्थर और वज्र जैसे अचेतन कर्ताओं का इस प्रकार का व्यवहार है, तब चेतन प्राणियों की क्या दशा रही होगी ? यह कवि का अभिप्राय है। इसलिए यह क्रियावैचित्र्य का भेद है।

4- वाक्यवक्रता - वाक्यवक्रता के विषय में आचार्य कुन्तक कहते हैं कि समुदायभूत वाक्य का वक्रभाव पदादि वक्रता से भिन्न प्रकार का है। जिसके सहस्रों भेद हो सकते हैं और जिसमें कवि प्रसिद्ध उपमा आदि समस्त अलंकार वर्ग का अन्तर्भाव हो जाता है। यहां वाक्य से तात्पर्य पद समुदाय रूप है अर्थात् अव्यय, कारक, विशेषण आदि से युक्त क्रिया वाक्य कहलाती है। तात्पर्य है कि उक्त लक्षण से युक्त श्लोकादि रूप वाक्य का वक्रभाव अर्थात् वर्णन - शैली का वैचित्र्य पूर्वोक्त वर्णविन्यासवक्रता आदि से भिन्न, समुदाय रूप वाक्य वैचित्र्यमूलक वाक्य का कुछ अपूर्व अर्थात् सहृदयों को आह्लादित करने वाला वक्रभाव होता है -

वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते यः सहस्रधा। यत्रालंकारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति।।[13]

उत्तररामचरित के तृतीय अंक में शोक-संतप्त राम दण्डकारण्य में सीता को खोजते हुए अत्यन्त दुःखित हो जाते हैं और सीता कहीं नहीं दिखाई देती हैं तब राम कहते हैं कि जहां वानरराज सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता भी व्यर्थ है, वानर का पराक्रम भी व्यर्थ है, जाम्बवान् की बुद्धि भी काम नहीं कर सकती, वायुपुत्र हनुमान्

की भी गति नहीं है, विश्वकर्मा का पुत्र नल भी मार्ग बनाने में असमर्थ है, लक्ष्मण के बाणों के भी गुजरसे भी परे ऐसे किस स्थान पर हे मेरी प्रिय सीता! तुम रह रही हो? यह वाक्य वक्रता का उदाहरण है -

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे वीर्यं हरीणां वृथा प्रज्ञा जाम्बवतो न यत्र न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये क्वासि मे।।[14]

इस श्लोक में करुण रस से आक्रान्त हृदय वाले राम सीता के प्रति कहते हैं कि जब रावण तुम्हें हर करके लंका ले गया था तो उस समय वानर राज सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, नल-नील और लक्ष्मण की सहायता से तुम्हें खोज लिया गया था, लेकिन आज तुम कहां हो? तुम्हारी प्राप्ति का कोई साधन नहीं दिखाई पड़ रहा है। मेरे पास जो भी साधन थे, वे सभी साधन आज व्यर्थ हो गये हैं अर्थात् आज तुम्हें कोई खोज नहीं पा रहा है यहां तक कि स्वयं मैं भी।

5. प्रकरणवक्रता - प्रबन्ध के एकदेश रूप प्रकरण में जो वक्रभाव सहज स्वाभाविक आहार्य अर्थात् व्युत्पत्ति द्वारा उत्पन्न किया गया तथा रमणीयता से मनोहर अथवा हृदयहारी किया हुआ प्रकरणवक्रता कहलाता है-

वक्रभावो विन्यासवैचित्र्यं प्रबन्धैकदेशभूते प्रकरणे या दृशोऽस्ति यादृग् विद्यते, प्रबन्धे वा नाटकादौ सोऽप्युच्यते कथ्यते। कीदृशः, सहजाहार्यसौकुमार्यमनोहरः। **सहजं स्वाभाविकं, आहार्यं व्युत्पत्युपार्जितं, यत्सौकुमार्यं रामणीयकं तेन मनोहरो हृदयहारी यः, स तथोक्तः।**[15] वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में सीता के परित्याग के पश्चात् राम का सीता से पुनर्मिलन नहीं होता है। परंतु महाकवि भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरित के तृतीय अंक में जब राम सीता को दण्डकारण्य में खोजते खोजते उनके वियोग में मूर्च्छित हो जाते हैं, तब तमसा के कहने पर अदृश्य रूप में सीता अपने हाथ से राम को स्पर्श करती है और राम चैतन्य हो जाते हैं। महाकवि भवभूति का यह जो छाया रूप में सीता का राम से मिलन की घटना प्रकरण वक्रता का उदाहरण है।

त्वमेव ननु कल्याणि संजीवय जगत्पतिम्। प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष निरतो जनः।।

सीता- यद् भवतु तद् भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति।(इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्रया सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छवासो रामः)[16]

महाकवि भवभूति ने सीता को अदृश्य रूप में रखकर राम के साथ जो मिलन कराया है, वह नैसर्गिक-सा ही प्रतीत होता है। जो सहृदयों को भी आह्लादित करता है।

6. प्रबन्धवक्रता - आचार्य कुन्तक प्रबन्धवक्रता के विषय में कहते हैं कि किसी महाकवि के बनाए हुए रामकथामूलक या कृष्णकथामूलक काव्य या नाटक में वर्णविन्यास वक्रता आदि पांच प्रकार की वक्रता से सुंदर सहृदयहृदयाह्लादकारी नायक रूप महापुरुष का वर्णन प्रतीत होता है परंतु वास्तव में कवि का प्रयोजन केवल उस महापुरुष के चरित्र का वर्णन करना मात्र नहीं होता है अपितु राम के समान आचरण करना चाहिए रावण के समान नहीं, इस प्रकार का विधि और निषेधात्मक धर्म का उपदेश उस काव्य या नाटक का फलितार्थ होता है। यही उस प्रबन्ध काव्यादि की वक्रता या सौन्दर्य है- प्रबन्धे वक्रभावो यथा - कुत्रचिन्महाकविविरचिते रामकथोपनिबन्धे नाटकादौ पञ्चविधवक्रतासामग्रीसमुदायसुन्दरं सहृदयहृदयहारि महापुरुषवर्णनमुपक्रमे प्रतिभासते। परमार्थतस्तु विधिनिषेधात्मकधर्मोपदेशरूपर्यवस्यति, रामवद्वर्तितव्य न रावणवदिति।[17]

जैसे उत्तररामचरित नाटक में राम के राज्याभिषेक के पश्चात् सीता के परित्याग और सीता के वियोग में राम के विरह का वर्णन किया गया है। परन्तु वास्तव में कवि ने राम के चरित्र के माध्यम से यह बतलाया है

कि राजा का प्रधान कर्तव्य होता है कि वह अपनी प्रजा को सुखी एवं सन्तुष्ट करे। इसके लिए उसे यदि अपने की परिवार की आहुति देना पड़े तो उसे दे देना चाहिए। यह उपदेश इस नाटक की रचना द्वारा उसके निर्माता महाकवि भवभूति ने दिया है। यही प्रबन्धवक्रता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति द्वारा विरचित उत्तररामचरित नाटक में आचार्य कुन्तक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति, जिसके षड् भेद होते हैं, का सुंदर निदर्शन होता है।

सन्दर्भ -

1. *वक्रोक्तिजीवित - 1/10*
2. *वही - पृ. 51*
3. *ही-1/18-19*
4. *वही- पृ.68*
5. *उत्तररामचरित-3/41*
6. *वही. 1/26*
7. *वक्रोक्तिजीवित-पृ.-69-70*
8. *वही- पृ.-71*
9. *उत्तररामचरित-1/12*
10. *वक्रोक्तिजीवित-पृ.-86*
11. *वही-पृ.-87*
12. *उत्तररामचरित-1/28*
13. *वक्रोक्तिजीवित-1/20*
14. *उत्तररामचरित- 3/45*
15. *वक्रोक्तिजीवित- पृ.-95*
16. *उत्तररामचरित- 3/10, पृ.-176-177*
17. *वक्रोक्तिजीवित- पृ.97*

29

भवभूति के रूपकों में औचित्यिक संदर्भों की प्रासंगिकता

नीरज कुमार

भारतीय ज्ञान परंपरा में महाकवि भवभूति रससिद्ध, ज्ञाननिधि और क्रान्तदर्शी कवि के रूप में लोक विश्रुत हैं। उनके नाटकों में लोक परंपराओं तथा नाटकीय विधानों का उचित सन्निवेषण परिलक्षित होता है। भवभूति की लेखनी से क्रमशः कुल तीन नाटकों का सर्जन हुआ - महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम्। ये क्रमशः वीररस, शृंगार रस और करुण रस से अनुप्राणित हैं। महाकवि भवभूति के ये तीनों नाटक औचित्य के सिद्धान्तों से युक्त हैं जिससे सामाजिक को सम्यक् रसानुभूति होती है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में औचित्य को परिभाषित करते हुये लिखते हैं-

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्। उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।[1]

अर्थात् जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है, वह उचित कहलाता है और उसी के भाव को विद्वानों ने औचित्य का नाम दिया है। औचित्य के अभाव में अलंकार गुण आदि अपनी महत्ता को खो देते हैं तथा काव्य बोझिल प्रतीत होने लगता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने रससिद्ध औचित्य को ही काव्य का प्राण माना है।[2] महाकवि भवभूति के तीनों नाटकों में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा विभाजित औचित्य के सभी सत्ताईस[3] भेदों प्रभेदों के सम्यक दिग्दर्शन होते हैं। उनके नाटकों में प्रयुक्त अलंकार, गुण, रीति, छन्द, व्याकरणिक सिद्धान्त, दार्शनिक आख्यान तथा सामाजिक नैतिक विमर्श सभी औचित्य के धरातल पर ही लिखे गये हैं यथा महाकवि भवभूति ने अपने सुप्रसिद्ध करुण रस नामक प्रधान नाटक उत्तररामचरितम् के अनेक प्रसंगों पर पदों का औचित्यिक प्रयोग किया है। एक सुन्दर प्रयोग यहाँ दृष्टव्य है-

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं, त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुध्य मुग्धां, तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।[4]

उपर्युक्त पद्य में 'मुग्धा' पद चमत्कार का हेतु है। यहाँ वासन्ती राम से कहती है कि आप सीता को अपना जीवन, दूसरा हृदय, नेत्रों के लिए कौमुदी, अंगों के लिये अमृत आदि सैकडों प्रिय वचनों से बहलाते थे किन्तु वह भोली भाली आपके द्वारा किये गये इस त्याग रूपी व्यवहार से अपरिचित थी। अर्थात् वासन्ती कहना चाहती है कि जो सीता राम के मीठे वचनों के पीछे छिपे त्याग रूपी तिरस्कार को न समझ सकी वह 'मुग्धा' (अत्यन्त सरल, भोली- भाली) ही हो सकती है, उसके लिये यही पद वांछनीय है जिसका अनुभव सहृदय ही कर सकता है। इस अर्थ के लिए तन्वी, श्यामा, प्रभृत् शब्दों के प्रयोग से सायद यह पद्य इतना चमत्कृत न होता। इसी प्रकार उत्तररामचरितम् में ही वाक्य औचित्य का भी एक सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है -

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वृथा, प्रज्ञा जाम्बवतोऽपि न यत्र, न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे।।[5]

इस पद्य के प्रत्येक पाद में प्रयुक्त वाक्य पूर्ण हैं तथा अपने अर्थ की अभिव्यक्ति स्वयं करने में समर्थ हैं। यथा - यत्र मे कपीन्द्रसख्यम् अपि व्यर्थं, हरीणां वीर्यं वृथा, यत्र जाम्बवतः प्रज्ञा न, वायोः पुत्रस्य अपि गतिः न, यत्र विश्वकर्मतनयः नलः अपि मार्गं कर्तुं न क्षमः तथा सौमित्रेः अपि पत्रिणाम् अविषये तत्र। करुण रस में प्रयुक्त इन पूर्णार्थक वाक्यों के प्रयोग से यह श्लोक चमत्कृत है अतः इसे वाक्यौचित्य का अनुपम उदाहरण कहा जा सकता है। उत्तररामचरितम् में ही महाकवि भवभूति ने पद, वाक्य और प्रबन्धादि के औचित्यपूर्ण प्रयोग किये हैं, इस नाटक का छाया अंक (तृतीय अंक) की कल्पना ही महाकवि की अनुपम कल्पना शक्ति का परिचायक है जहाँ पर सीता परित्याग को राम का निर्णय न बताकर अयोध्या की जनता का निर्णय बताया गया है यही इस नाटक का मुख्य प्रयोजन है, राम ने स्पष्ट किया कि सीता का परित्याग सीता के पति राम ने नही किया अपितु अयोध्या के नागरिकों के उलाहनों के कारण राजा राम ने किया है-

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।
चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा-मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते।।[6]

यही इस प्रबन्ध की रचना का मुख्य उद्देश्य विदित होता है अतः इस पद्य को प्रबन्धौचित्य की दृष्टि से देखा जा सकता है।

महाकवि भवभूति ने तीनों नाटकों में भावानुरूप अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे उनके नाटक सहृदय जन संवेद्य बने हुये हैं। मालतीमाधवम् के एक प्रसंग में मकरन्द कहता है कि प्रेम कारण की अपेक्षा नही करता है-

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।[7]

अर्थात् अन्तस्तल में विद्यमान कोई कारण पदार्थों को परस्पर मिलाता है। प्रेम बाहर के कारणों का आश्रय नही करता, क्योंकि सूर्य के उदय होने पर श्वेत कमल खिलता है और चन्द्रमा के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि पिघलती है। यहाँ पर पूर्वार्ध में वर्णित सामान्य अर्थ का उत्तरार्ध में वर्णित दो विशेष बातों बातों से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।[8] कवि ने इसी पद्य को उत्तररामचरितम्[9] के षष्ठ अंक में राम के मुख से कहलवाया है। मालनी वृत्त[10] में रचित यह पद्य अर्थान्तरन्यास के प्रयोग से ही सौन्दर्यवर्धक हुआ है। इसके अतिरिक्त कवि ने महावीरचरितम् के एक प्रसंग में परशुराम के मुख से वीर रस में अनुप्रास अलंकार की सुन्दर अभिव्यंजना कराई है-

अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते। कुठारः कम्बुकण्ठस्य कष्टं कण्ठे पतिष्यति।।[11]

उपर्युक्त पद्य में कवि ने कवर्ण की बार बार अवृत्ति करके अनुप्रास अलंकारौचित्य का प्रयोग किया है जिससे पद्य में अधिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है।

रसौचित्य के प्रयोग में तो कवि भवभूति सर्वमान्य सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। क्योंकि इनके तीनों नाटक तीन प्रमुख रसों का प्रतिनिधित्व करते हैं। रसों के प्रयोग में भवभूति ने उत्तरोत्तर सफलता को प्राप्त किया है। उत्तररामचरितम् करुण रस का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जाता है। इसी लिये विद्वत्परिषद में उक्ति प्रचलित है कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते। यहीं से करुण रसौचित्य का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

हा हा देवि! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।[12]

यहाँ पर राम दण्डकवन में सीता का स्मरण करते हैं और बार बार मूर्छित होते हैं वे कहते हैं हे देवि सीता, मेरा हृदय फट रहा है। मेरे शरीर की संधियाँ ढीली पड रही हैं संसार सूना प्रतीत हो रहा है। मै अन्दर ही अन्दर अनवरत विरहाग्नि से जल रहा हूँ। खिन्न और व्याकुल मेरा अन्तस्तल घोर अन्धकार में डूब रहा है। मूर्छा मुझे चारों ओर से घेर रही है मै मन्दभाग्य वाला अब क्या करूँ।

यहाँ पर राम की करुणा और वेदना का चर्मोत्कर्ष दिखाई दे रहा है। इस पद्य का संयोजन मन्दाक्रान्ता छन्द[13] में किया गया है। इस छन्द का प्रयोग करुण रस और वर्षा ऋतु के प्रयोग में अच्छा माना जाता है। महाकवि भवभूति ने करुण रस को ही सर्वश्रेष्ठ रस माना है।[14] भावों के अनुरूप उचित रस और रसों के अनुरूप उचित छन्दों के प्रयोग में भवभूति को सिद्धता प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त महाकवि भवभूति कारकों का भी औचित्यपूर्ण प्रयोग अपने ग्रन्थों में करते हैं। जिनके सुष्ठु प्रयोग से पद्य का आकर्षण स्वतः बढ जाता है। नमस्कार के अर्थ में सम्प्रदान कारक का एक सुन्दर प्रयोग महावीरचरितम् नाट्कृति से उद्धृत है-

अथ स्वास्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने। त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः।।[15]

उपर्युक्त पद्य में नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारक का प्रयोग कवि ने किया है। सम्प्रदान के प्रयोग से ही पद्य में शोभातिशयता की अभिवृद्धि हुई है। सम्प्रदान का सम्पूर्ण पद्य में इतना सुन्दर प्रयोग कम ही देखने को मिलता है।

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में वचनों के प्रयोग में भी बडी सतर्कता दिखाई है यथा जब कवि एकवचन का प्रयोग करता है तो नायक से अपनी बात पर जोर देने के लिए सहज रूप से एक वचन का ही प्रयोग करता है और पद्य सहृदय जन संवेद्य बना रहता है यथा-

त्वं जीवितं त्वमसि में हृदयं द्वितीयं, त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।[16]

यहाँ पर सीता के लिये राम के कथन को बल देकर कहलवाया जा रहा है इसीलिए 'त्वम्' पद का प्रयोग उचित ही प्रतीत होता है। बार- बार त्वम् पद के प्रयोग से पद्य का अपकर्ष नही होता अपितु उत्कर्ष ही हुआ है। इसके अतिरिक्त आदर और सम्मान[17] के अर्थ में कवि ने बहुवचन के प्रयोग में भी संकोच नही किया-

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथाङ्गिराः। यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः।।[18]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने अपने गुरु ज्ञाननिधि के सम्मान में समस्त विशेषणों का बहुवचन में प्रयोग करते हैं। जो औचित्यपूर्ण तथा पद्य के चमत्कार का हेतु है।

महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरितम् में काल अथवा समय का बडा ही औचित्यपूर्ण वर्णन किया है-

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति।।[19]

इस पद्य में दण्डकारण्य का वर्णन है राम देखते हैं कि पदार्थों की स्थिति सदा परिवर्त माना है, जहाँ पर पहले नदियों का प्रवाह था, वहाँ अब रेतीला किनारा है। वृक्षों की सघनता और विरलता में भी परिवर्तन हो गया है। बहुत समय के बाद देखा गया यह वन अलग- सा प्रतीत हो रहा है। किन्तु पर्वतों की स्थिति यह बता रही है कि यह वही वन है। यहाँ पर काल के प्रभाव को देखा जा सकता है। काल के प्रभाव से इन भौतिक परिवर्तनों

का होना यह बता रहा है कि न केवल वन, नदी, पर्वतादि में परिवर्तन हुआ है बल्कि राम के जीवन को भी इस काल ने प्रभावित किया है। प्रकारान्तर से कवि का राम के जीवन के मार्मिक परिवर्तन को भी बताना एक ध्येय है, इसलिए इस पद्य को कालौचित्य का उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है। कुलौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि जिस प्रकार उत्तम वंश के सम्बन्ध पुरुषों को बहुत बडे उत्कृष्टता और लोकप्रियता प्रदान करता है उसी प्रकार कुलमूलक औचित्य अर्थात् महाकुलानुरूप वर्णन काव्य की उत्कृष्टता का कारण होता है।[20] महाकवि भवभूति अपने नाटकों के अनेक प्रसंगों पर पर कुलौचित्य के सजीव वर्णन से काव्य को उत्कृष्टता प्रदान की है। उत्तररामचरितम् के एक प्रसंग में जब सीता अष्टावक्र से पूछती है कि गुरु वशिष्ठ आदि गुरुजन हम लोगों को याद करते हैं तो अष्टावक्र जी कहते हैं भगवान् वशिष्ठ ने आपसे कहा है-

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत, राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां, येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।[21]

अर्थात् हे सौभाग्यवती, भगवती पृथ्वी ने आपको जन्म दिया है। प्रजापति के समान राजा जनक आपके पिता हैं। आप उन श्रेष्ठ राजाओं की कुल वधू हैं, जिनके कुलप्रवर्तक सूर्य हैं और शिक्षक हम हैं।

यहाँ पर सीता का सम्बन्ध उच्चकुल से बताया गया है क्योंकि सूर्यवंश का सम्बन्ध और गुरु वशिष्ट की तत्त्ववेता लोक विश्रुत है इसलिये कहा जा सकता है कि कवि ने इस पद्य में कुलौचित्य का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों में भी महाकवि भवभूति ने कुल का औचित्यपूर्ण वर्णन किया है।[22]

इसके अतिरिक्त महाकवि भवभूति ने स्वभाव का भी औचित्य पूर्ण वर्णन अपने नाटकों में किया है। स्वभावौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र का अभिमत है कि काव्यों के लिये स्वभावानुरूप वर्णन आभरण स्वरूप होता है जैसे किसी नायिका का साधारण अकृतिम सौन्दर्य अत्यधिक भूषित होता है।[23] इन्ही भावों से अनुप्राणित उत्तररामचरितम् से एक पद्य दृष्टव्य है-

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।[24]

यहाँ पर वासन्ती कहती है कि वज्र से भी कठोर और पुष्प से भी कोमल महापुरुषों के चित्त को भला कौन जान सकता है। अर्थात् महापुरुषों के चित्त को समझना प्रत्येक व्यक्ति के सामर्थ्य का विषय नही है। गाोस्वामी तुलसीदास भी रामचरितमानस में लिखते हैं कि संतों का हृदय मक्खन के समान होता है बल्कि मक्खन से भी मुलायम कह सकते हैं क्योंकि मक्खन तो अपने ताप मिलने से पिघलता है किन्तु संत तो दूसरों के दुःखों से पिघल जाते हैं-

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्हि परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर सुख द्रवहिं संत सुपुनीता।।[25]

उत्तररामचरितम् नाटक में कवि ने सारसंग्रह का भी औचित्यपूर्ण प्रयोग कर सहृदय के अन्तःस्तल को छुआ है-

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो- रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः, किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।[26]

राम के वक्षस्थल पर स्नेहयुक्त सीता सो जाती हैं तो राम कहते हैं कि यह (सीता) घर में लक्ष्मी के समान है, इसका स्पर्श शरीर पर घने चन्दन रस के सदृश है। इसकी बाहें मेरे गले के लिए कोमल मोती के हार के समान है। मुझे इसकी कौन सी वस्तु प्रिय नही है। किन्तु यदि इससे विरह हुआ तो वह अत्यन्त असह्य होगा।

यहाँ पर सीता के राम के प्रति निःस्वार्थ प्रेम को दिखाया गया है जो इस पद्य का सार है। यह घटना सीता परित्याग के पूर्व की घटना है, सीता को तनिक भी आभास नही है कि उनका परित्याग होने वाला है। अतः कहा जा सकता है कि कवि ने निःस्वार्थ प्रेम का सार तत्व को दिखाने में उचित सफलता प्राप्त की है।

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में अवस्था वर्णन के प्रसंगों का भी यथार्थ और उचित प्रयोग किया है। जैसे जो स्थिति उत्तररामचरितम् नाटक में राम की सीता के विरह में कारुणिक अवस्था होती है[27] यहाँ पर भवभूति करुण रस की उचित और यथार्थ वर्णन किया है। दूसरी तरफ मालतीमाधवम् नाटक में माधव के प्रेम में विह्वल मालती की वियोग शृंगार वर्णन की अवस्था का वर्णन भी कवि सधे हुये उचित शब्दों में करता है -

मनोरोगस्तीव्रो विषमिव विसर्पत्यविरतं, प्रमाथी निर्धूमो ज्वलति विधुतः पावक इव।
हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानित इतो, न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती।।[28]

मालती अपनी सखी लवङ्गी से कह रही है यह असह्य और प्रमथशील चित्तविकार विष की तरह लगातार मेरे ऊपर व्यापप्त हो रहा है, धुआं से रहित अग्नि की तरह यह जल रहा है और भयंकर ज्वर के समान प्रत्येक अङ्ग को भीतर और बाहर पीडित कर रहा है। मेरी रक्षा के लिए न पिता जी न माता जी और न ही आप ही समर्थ हैं। यहाँ पर कवि एक विरह व्यथा में व्यथित नाइका का यथार्थ और औचित्यपूर्ण वर्णन किया है। महाकवि भवभूति ने नाम का भी औचित्यपरक प्रयोग अपने नाटकों में करते हैं जिससे पद्यों का सौन्दर्य और बढ जाता है। यथा -

येनैव खण्डपरशुर्भगवान्प्रचण्डश्चण्डीपतिस्त्रिभुवनेषु प्ररूढः।
तेनैव तारकरिपोर्विजयार्जितेन दीप्तिं गता परशुराम इति श्रुतिस्ते।।[29]

यहाँ पर राम परशुराम को सम्बोधित करके कह रहे हैं कि जिस परशु के टुकडे को लेकर भगवान शिव संसार में 'खण्डपरशु' इस नाम से जाने जाते हैं। तारकरिपु के जीतने के कारण लभ्यमान उसी परशु के टुकडे से आप 'परशुराम' कहलाने लगे। इस पद्य में कवि ने परशु का सम्बन्ध भगवान शिव से जोडा है और उसी देदीप्यमान परशु से परशुराम नाम के औचित्य को बताया गया है। जिससे पद्य के सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि महाकवि भवभूति के तीनों नाटकों में औचित्य के सिद्धान्तों का विशेष ध्यान दिया गया है। जिससे इन ग्रन्थों का महत्त्व और अधिक बढ जाता है। क्योंकि जिन ग्रन्थों में औचित्य का प्रयोग नही किया जाता वे ग्रन्थ न तो समाज में आदर सत्कार पाते हैं और न ही चिर काल तक लोगों के हृदय में स्थान बना पाते हैं। कहा जाता है कि जिस प्रकार नियत स्थान से रहित दन्त, केश, नख आदि अवयव शोभा को प्राप्त नहीं कर पाते उसी प्रकार काव्यात्मक प्रसंगों के भी उचित सन्निवेषण न करने से काव्य शोभा विवर्धक नहीं होता है -

'स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः।'

सन्दर्भ -

1. *औचित्यविचारचर्चा 7*
2. *औचित्यविचारचर्चा 5*
3. *औचित्यविचारचर्चा 8-10*
4. *उत्तररामचरितम् 3/26*

5. उत्तररामचरितम् 3/45
6. उत्तररामचरितम् 3/32
7. मालतीमाधवम् 1/25
8. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
   यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। काव्यप्रकाश 10/109
9. उत्तररामचरितम् 6/12
10. ननमयययुतेयं,मालिनी भोगलोकैः।। वृत्तरत्नाकर 3/ 83
11. महावीरचरितम् 2/46
12. उत्तररामचरितम् 3/38
13. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।। वृत्तरत्नाकर 3/ 95
14. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्.................उत्तररामचरितम 3/ 47
15. महावीरचरितम् 1/01
16. उत्तररामचरितम् 3/26
17. आदरार्थे बहुवचनम्।। अष्टाध्यायी 2/4/8
18. महावीरचरितम् 1/05
19. उत्तररामचरितम् 3/27
20. औचित्यविचारचर्चा 28
21. उत्तररामचरितम् 1/09
22. उत्तररामचरितम् 1/17,7/9, महावीरचरितम् 1/57, 2/36
23. औचित्यविचारचर्चा 33
24. उत्तररामचरितम् 2/07
25. रामचरितमानस 7/125
26. उत्तररामचरितम् 1/38
27. उत्तररामचरितम् 3/32
28. मालतीमाधवम् 2/01
29. महावीरचरितम् 2/35

30

उत्तररामचरित में मनोवैज्ञानिकता

आनन्द कुमार

भवभूति विरचित प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरितम् में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का स्पष्ट उल्लेख अनेक स्थानों पर दिखलाई पड़ता है। यद्यपि यह नाटक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखा गया नाटक नहीं है । परन्तु इसमें मनोविज्ञान की अवधारणा मिलती है जो मानव जीवन का अभिन्न अंग है। अभिन्न भाग होने के कारण यह नाटक भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों से अछूता नहीं है। यदि इस नाटक का निकटता से अवलोकन किया जाय तो इसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों और तथ्यों का सायुज्य दिखलाई पड़ता है। यह नाटक सात अंकों में विभाजित है। प्रत्येक अंक में कुछ न कुछ मनोवैज्ञानिक तत्त्व निश्चित रूप से समाहित हैं। जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन अधोलिखित रूपों में किया जा रहा है- प्रायः संस्कृत के नाटकों में मनोविज्ञान की मूलप्रवृत्तियां और उनके संवेगों का दिग्दर्शन होता है। यह मूलप्रवृत्ति मानव का सहज कर्म है और यह सर्वथा आन्तरिक होता है। जब ये आन्तरिक भाव संवेग रूप में बाहर आते हैं अर्थात् जब अन्तर्भाव बाहर की ओर परिवर्तित होता है तो उसे संवेग से अभिहित किया जाता है। यथा- भय, क्रोध, प्रेमादि। इसका सुन्दर दिग्दर्शन तृतीयांक में दिखलाई पड़ता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडूगल ने चौदह मूलप्रवृत्तियों को परिभाषित करते हुए उनके संवेगों की चर्चा की है। उनमें से प्रथम पलायन है और उसका संवेग भय है। उत्तररामचरितम् के तृतीयांक में उक्त का उल्लेख मिलता है। मुरला तमसा से कहती है कि रामभद्र पञ्चवटी वन में सीता के सहवास के समय विलास युक्त क्रीड़ा के स्थानों को देखेंगे तब इस प्रकार की अवस्था अत्यन्त विस्तृत शोक से उत्पन्न प्रमाद सहित शोक स्थलों को देखेंगे-**'निसर्गधीरस्याप्येवंविधायामवस्थायामतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगात्मपदे पदे महाप्रमादानि शोकस्थानानि शंकनीयानि रामभद्रस्य**[1]' उक्त वाक्य में मुरला के साथ तमसा को भी भय नामक संवेग उत्पन्न होता है कि उक्त स्थलों को देखकर राम कहीं मूर्छित न हो जायें। इस कारण से तमसा गोदावरी नदी से कहती है कि 'गोदावरि! त्वया तत्रभवत्या सावधानया भवितव्यम्[2]। इसलिए इसमें मनोवैज्ञानिक भय नामक संवेग के साथ संसर्जित हो जाता है। यदि मनुष्य का इष्ट व्यक्ति विपत्ति में होता है तब भय नामक संवेग प्रवेश करता है। जिस करिशावक को सीता द्वारा पाला पोसा गया था उस पर किसी बड़े हाथी ने आक्रमण कर दिया उस समय सीता में भय का संचार हुआ उसी क्षण सीता कहती है कि- **(ससंभ्रमं कतिचित्पदानि गत्वा) आर्यपुत्र, परित्रायस्व परित्रायस्व मम तं पुत्रकम्**[3]। हे आर्यपुत्र! मेरे पुत्र (गज शिशु) की रक्षा कीजिए।

द्वितीय मूलप्रवृत्ति (अप्रियता) है और इसका संवेग द्वेष है। इस प्रकार की मूलप्रवृत्ति और संवेग चतुर्थ

अंक में दिखलाई पड़ता है। यह उस समय की बात है जब राम ने सीता को जंगल में छोड़ दिया था। तदनन्तर कञ्चुकी राजा जनक से कहते हैं कि हे राजर्षि! क्रोध के कारण चिरकाल से रामभद्र का दर्शन त्याग दिया है इसलिए अत्यन्त दुःखिता देवी कौशल्या को और दुःख देना उचित नहीं है। रामभद्र का यह दुर्भाग्य है कि - **'यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौराः। न चाग्निशुद्धिमनल्पकाः प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन**[4]। उपर्युक्त वाक्य में राम के घृणित जनश्रुति के लिए इस प्रकार का कठोर कार्य किया है। इस पर जनक क्रुद्ध होकर कहते हैं कि- **को'यमग्निनामास्मत्प्रसूति परिशोधने? कष्टमेवंवादिना जने जने रामभद्रपरिभूतापि पुनर्परिभूयामहे**[5]। इस प्रकार राम के प्रति अप्रियता मूलप्रवृत्ति और राम की प्रति द्वेष संवेग है।

तृतीय मनोवैज्ञानिक मूलप्रवृत्ति युयुत्सा और इसका संवेग क्रोध है इसका दर्शन उत्तररामचरित में यत्र तत्र दिखलाई पड़ता है। जब राम अश्वमेध यज्ञ करते हैं तदनुसार विजय पताका हेतु अश्व को छोड़ते हैं। उसको लव पकड़ लेते हैं। तब उक्त मूल प्रवृत्ति और संवेग दिखलाई पड़ता है। वीर उद्‌भट्ट चन्द्रकेतु के साथ युद्ध के लिए लव ललकारते हुए कहते हैं कि--

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे।
समन्तादुत्सर्पन्घनतुमुलहेलाकलकलः, पयोराशेरोघः प्रलयपवनास्फालित इव[6]।।

युद्ध में वीर रस होता है। यह सुमन्त्र के वाक्यों में परिलक्षित होता है। वह कहता है कि उत्कृष्ट तेजस्वी व्यक्ति के प्रति शस्त्र उठाने के अतिरिक्त उपाय ही क्या है? जो कठोर वीर रस से युक्त वीरों के आचरण एवं प्रेम व्यवहार का निवारण करता है-'वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते[7]। उपर्युक्त उदाहरण वाक्यों में युद्ध के प्रति प्रियता मूलप्रवृत्ति और उससे उत्पन्न क्रोध नामक संवेग भाव होता है।

मैकडूगल ने चौथी मूल प्रवृत्ति बालरक्षण और उसका संवेग वात्सल्य/प्रेम बतलाया है। तृतीय अंक में सीता तमसा के साथ अपने पुत्रों के विषय में वार्तालाप करती है। सीता कहती है कि मैं ऐसी अभागिनी हूं जो न केवल पति से अपितु अपने पुत्रों से भी विरक्त हूँ[8]। पुत्र स्नेह के कारण सीता क्षण मात्र के लिए गृहिणी का अनुभव करती है[9]। तब तमसा सीता से कहती हैं कि पुत्र प्रेम की पराकाष्ठा होती है तथा यह माता-पिता को परस्पर मिलाने वाली कड़ी है[10]-

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेको'यमपत्यमिति पठ्यते[11]।।

अर्थात् पति-पत्नी और पुत्रों का हृदय प्रेम के आश्रय के कारण अद्वितीय सुख की गांठ(पुञ्ज) से अभिहित की जाती है। इस प्रकार का प्रकरण पुत्र के प्रति प्रेम/स्नेह को अभिव्यञ्जित करता है। एतदतिरिक्त जब जनक लव को देखते हैं, तब लव की निर्दोषता एवं स्वाभाविकता उनको अपनी ओर खींचते हैं, वह कहते हैं कि इसमें विनय के कारण शीतल तथा भोलेपन के कारण कोमल, जो महत्व का उत्कर्ष है, उसे विशेषज्ञ व्यक्ति ही भांप सकते हैं, सामान्य अचतुर व्यक्ति नहीं। शक्ति संपन्न यह अपरिचय के कारण स्थिर हुए भी मेरे मन को इसी प्रकार अपनी ओर खींच रहा है, जैसे चुंबक का लौहखण्ड आकर्षित करता है-

महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो, विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः।
मनो मे संमोहस्थिरमपि हरत्येष बलवानयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः[12]।।

उपर्युक्त श्लोक में वात्सल्य संवेग दिखलाई पड़ता है। जिसके मूल में बाल रक्षण की प्रवृत्ति है ।

पांचवीं मूल प्रवृत्ति संवेदनशीलता है और उसका संवेगभाव कष्ट है। यदि व्यक्ति संवेदनशील होता है तो संवेगभाव दुःख ही प्राप्त होगा जो राम में दिखलाई पड़ता है। सीता के परित्याग से राम अतीव दुःखी हैं

इसलिए उनके वियोग में चिन्तामग्न हैं। उनका जीवन शोक के कारण संकट ग्रस्त हो गया था। अतः तमसा कहती है कि -**'शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते'**[13] । शोक पीड़ा को शोक मात्र से ही पार किया जा सकता है। अतः रोना भी लाभप्रद सिद्ध हुआ- **'ननु लाभो हि रुदितम्'**[14] राम कहते हैं कि दुःख का विषय है कि मेरा हृदय शोक की चिंता से फट रहा है परंतु दो टुकड़े नहीं होता है, व्याकुल शरीर अचेतन हो जाता है लेकिन चेतना का परित्याग नहीं करता है, आन्तरिक सन्ताप शरीर को जला रहा है परंतु भस्मसात् नहीं करता, मर्मस्थल को बींधने वाला भाग्य प्रहार करता है परन्तु जीवन को सर्वथा नष्ट नहीं करता है[15] । उपर्युक्त उदाहरणों में पांचवीं मूलप्रवृत्ति और उसके संवेग का वर्णन प्राप्त होता है।

छठवीं मूल प्रवृत्ति है- काम प्रवृत्ति और उसका संवेग कामुकता है। उत्तररामचरित करुण रस से आच्छादित ग्रन्थ है। प्रायः उक्त मूलप्रवृत्ति का अभाव-सा है। इसका प्रमुख कारण है कि जब व्यक्ति करुणा के सागर में डूबा रहता है तब उसमें न काम की प्रवृत्ति होती है और न ही उसका संवेग कामुकता की दशा को प्राप्त कर पाती है, स्मरण होता है किन्तु समय परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण उद्भूत नहीं हो पाता है। इसलिए इस ग्रन्थ में उक्त मूलप्रवृत्ति का अभाव है।

मैकडूगल ने सातवीं मूल प्रवृत्ति जिज्ञासा बतलाई है। जब व्यक्ति में जिज्ञासा होती है तब उसमें आश्चर्यरूपी संवेग होता है। तमसा रामचन्द्र को होश में लाने का उपाय बतलाती है। तब मुरला कहती है कैसे? तब पुनः तमसा कहती है- पूर्व में जब लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि के तपोवन के समीप छोड़कर लौट गये, तब देवी सीता ने प्रसव वेदना से पीड़ित होकर घोर दुःख के आवेग के कारण अपने आपको गंगा में फेकना, वहीं पर दो बालकों का उत्पन्न होना, भगवती पृथ्वी और गंगा उनको पाताललोक ले जाना और माता सीता का दूध छूटने पर दोनों बालकों को गंगा द्वारा वाल्मीकि को सौंपना। इस प्रकार के प्रसंग में मुरला को जिज्ञासा हुई तब मुरला कहती है कि आश्चर्य है-

ईदृशानां विपाकोपि जायते परमाद्भुतः। यत्रोपकरणीभावमायात्येवं विधो जनः[16] ।।

अर्थात् ऐसे व्यक्तियों की दुरावस्था भी अत्यन्त आश्चर्य जनक होती है, जिसमें ऐसे लोग सहायक होते हैं । इस प्रकार मुरला को उक्त के विषय में जिज्ञासा हुई तब तमसा ने जिज्ञासा को शान्त किया तदनन्तर मुरला में आश्चर्य नामक संवेग का आधान हुआ।

आठवीं मूलप्रवृत्ति आत्महीनता है और उसका संवेग अधीनता की भावना है। इसका सुंदर दिग्दर्शन तृतीय अंक में मिलता है। जब राम वासन्ती से वार्तालाप करते हैं। तब उनमें आत्महीनता की भावना प्रवेश कर जाती है क्योंकि 'अन्तःकरण में छिपी हुई और आज भयंकर रूप में जलने वाली दुःख रूपी अग्नि धूम राशि के तुल्य मूर्च्छा मुझे ढक रही है-' हृदि निगूढः शोकवह्निः उग्रदह्यमानः धूम इव मां आच्छादयति[17]' । उक्त में राम की आत्महीनता प्रदर्शित हो रही हैं। इसके तृतीयांक के श्लोक संख्या- 12,14,19,28,29,30,31,32 आदि में उक्त मूलप्रवृत्ति देखने को मिल जाती है। नौवीं मूलप्रवृत्ति आत्म प्रदर्शन का दिग्दर्शन है जो चौथे/पांचवें अंक में लव और चन्द्रकेतु के युद्ध में दिखलाई पड़ता है- 4/29,5/9,10। दसवीं मूलप्रवृत्ति सामूहिकता है। इस प्रकार की मूलप्रवृत्ति चौथे एवं पांचवे अंक में दिखलाई पड़ता है। ग्यारहवीं मूलप्रवृत्ति भोजन की खोज है और बारहवीं संचय एवं तेरहवीं श्रचना है। उक्त तीनों मूलप्रवृत्तियों का दर्शन उत्तररामचरित में प्राप्त नहीं होता है और अंतिम यानी चौदहवीं मूलप्रवृत्ति हास और उसका संवेग आमोद का भी उल्लेख नहीं मिलता है; क्योंकि करुण रस होने के कारण एवं विदूषक का अभाव होने के कारण हास के लिए कोई स्थान बचता ही नहीं है।

मैकडूगल द्वारा बताए गए 14 मूलप्रवृत्तियों के सापेक्ष उत्तररामचरित में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों एवं उनके संवेग को बतलाया जा चुका है। सम्प्रति, अन्य मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। वृद्धि एवं विकास प्रत्यय एक मनोवैज्ञानिक पहलू या पक्ष है। यह मानव जीवन से जुड़ा हुआ है। वृद्धि मुख्य रूप से विकास की सतत् प्रक्रिया का एक छोटा सा आरंभिक चरण स्वीकार किया जाता है। जबकि विकास जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। शारीरिक आकार बढ़ने तक वृद्धि चलती है जबकि विकास व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं को दर्शाता है। उत्तररामचरित नाटक में वृद्धि नामक अवधारणा का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता है, किन्तु विकास की तीनों अवस्थाओं का वर्णन प्रसंगानुसार आया है जो अधोलिखित है- बाल्यावस्था का वर्णन उत्तररामचरित में निम्न रूपों में दिखलाई पड़ता है। राजा जनक, जो भी बालसुलभ विशेषताएँ होती है उसको बतलाते है। नियत रूप से रोने और हंसने वाले, कलियों के अग्रभाग तुल्य कोमल, कुछ दांतों से सुशोभित, तोतली असंगत और मधुर ध्वनि से युक्त, बाल्यावस्था के तुम्हारे मुख कमल को मैं स्मरण कर रहा हूं-

अनियतरुदितस्मितं विराज-त्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि, स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं ते[18]।।

उपर्युक्त श्लोक में बाल्यावस्था में होने वाले स्वाभाव का चित्रण किया गया है।

विकास की दूसरी अवस्था युवावस्था या प्रौढ़ावस्था होती है। उत्तररामचरित के छठे अंक में राम सीता के युवावस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस समय एक ओर युवावस्था, प्रेम और पारस्परिक अभिलाषा के संपर्क के कारण प्रबुद्ध कामदेव हृदय में प्रौढ़ चेष्टा से युक्त था और दूसरी ओर शरीर में लज्जा के कारण मुग्धता से युक्त था, उस समय धीरे-धीरे अपना स्थान बनाने वाले मृगनयनी सीता की वे कली के तुल्य सुन्दर उरोज कुछ ही दिनों में थोड़े विस्तृत हो गए थे -

तदा किंचित्किंचित्—तपदमहोभिः कतिपयै-स्तदोषद्विस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगदृशः।
वयः स्नेहाकूतव्यतिकरघनो यत्र मदनः प्रगल्भव्यापारः स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि[19]।।

स्पष्ट है कि युवावस्था में होने वाले परिवर्तनों का स्पष्ट दिग्दर्शन है।

विकास की तीसरी अवस्था जरावस्था या वृद्धावस्था होती है। चतुर्थ अंक में सौधातिक कहता है कि 'स्थाविराः परस्परं मिलिताः[20]'। अर्थात् बुड्ढे परस्पर मिल गये है। यह संकेत वृद्धावस्था की ओर है। आगे राजा जनक भी वृद्धावस्था में होने वाले दुःखों की चर्चा करते हैं- **'कष्टम् एवं नाम जरया दुःखेन च दुरासदेन भूयः पराकसन्तापनप्रभृतिभिस्तपोभिः शोषितान्तः शरीरधातोरवष्टम्भ एव[21]'** अर्थात् खेद की बात है कि इस प्रकार वृद्धावस्था तथा दुःसह दुःखों से और फिर पराक तथा संतापनादि शरीरशोधक व्रतों से शरीर की आन्तरिक धातुओं को सुखा दिये जाने पर भी मेरा शरीर रुका हुआ है। इस प्रकार विकास की तीनों अवस्थाओं की मनोवैज्ञानिक चर्चा की गई है।

मनोविज्ञान में बुद्धि की अधिक चर्चा की जाती है। इसलिए इसके विभिन्न सिद्धान्त बतलाए गए हैं। पूर्व में कहा गया है कि उत्तररामचरित मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा हुआ ग्रन्थ नहीं है इसलिए बुद्धि के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं मिल पाता है लेकिन बुद्धि से संबंधित तत्त्वों की विवेचना की जा सकती है। आत्रेयी लव कुश के सन्दर्भ में कहती है कि **'न त्वेताभ्यामतिदीप्तिप्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति[22]'**। अर्थात् अति व्युत्पन्न बुद्धि वाले इन दोनों के साथ हम लोगों का पढ़ सकना संभव नहीं है; क्योंकि प्रत्येक मानव की बुद्धि की क्षमता अलग-अलग होती है। यहां पर आत्रेयी लव कुश की बुद्धि से अपनी बुद्धि को कमतर मानती है इसलिए-

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे, न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा, प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः[23] ।।

अर्थात् गुरु जिस प्रकार व्युत्पन्न शिष्य को उसी प्रकार मन्द बुद्धि को भी विद्या देता है। उन दोनों शिष्यों के ज्ञान में न सामर्थ्य की वृद्धि करता है और न ही सामर्थ्य नष्ट करता है। इस तरह से आत्रेयी बुद्धि को दो भागों में व्युत्पन्न बुद्धि और अति व्युत्पन्न बुद्धि में बांटती है। इसमें बुद्धि के सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं।

स्मृति और विस्मृति, मनोविज्ञान के अभिन्न विषय-वस्तु हैं। पूर्व में हुए घटनाओं का स्मरण करना स्मृति और भूल जाना विस्मृति कहलाता है। राम ने जब सीता का परित्याग कर दिया था तब उनके वियोग में राम मूर्च्छित हो जाते हैं तदनन्तर सीता द्वारा स्पर्श करने पर सचेतन हो जाना और सचेतन होने पर सीता के हाथों के स्पर्श का स्मरण करना स्मृति की श्रेणी में आता है। राम कहते हैं कि पूर्व परिचित जीवन की शक्ति प्रदान करने वाला और मन को संतुष्ट करने वाला यह निश्चय ही वही स्पर्श है, जो वियोग दुःखजन्य मूर्च्छा को दूर कर तुरन्त आनन्द प्रदान करके फिर निश्चेष्टता को फैला रहा है-

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव संजीवनश्च मनसः परितोषणश्च।
संतापजां सपदि यः परिहृत्य मुर्च्छा- मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति[24] ।।

अतः सीता के हाथों का स्पर्श का अनुभव जो कि पूर्व में हो चुका है इसलिए उन्हें स्मरण आ गया। केवल राम को नहीं अपितु सीता को भी अपने पुत्रों का स्मरण होता है- 'एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसित प्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः संनिधानेन क्षणमात्रं संसारिणी संवृत्तास्मि[25]'। इस प्रकार सीता को अपने पुत्रों का स्मरण हो आया ।

मनोविज्ञान के प्रमुख विषय वस्तु है- अधिगम। इसका अर्थ होता है- सीखना। अधिगम का सीधा-सीधा वर्णन उत्तररामचरित में प्राप्त नहीं होता किन्तु जृम्भकास्त्र को लव ने कैसे सीखा? इसकी चर्चा की गई है। जो अधिगम की ओर संकेत करता है। इस विषय में राम कहते हैं कि चित्र दर्शन के प्रसंग में गर्भस्थ बालक के लिए मैंने जृम्भकास्त्रों की प्राप्त की जो स्वीकृति दी थी, वही संभवतः प्रकट हुई है। हमने अभी तक ऐसा नहीं सुना है कि पूर्वजों को भी ये जृम्भकास्त्र बिना गुरु परम्परा के प्राप्त हुए हों- **'चित्रदर्शनप्रासङ्गिकमस्त्राभ्यनुज्ञानं प्रबुद्धं स्यात्। न ह्यसांप्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामपि शुश्रुम[26]'**। स्पष्ट है कि लव ने स्वयं से सीखा है। जो अधिगम की श्रेणी में आता है। इन सबके अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक तत्त्व उत्तररामचरित में प्राप्त होते हैं। जिनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है- महापुरुषों के दर्शन से मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह वर्णित है[27], सीता स्मरण से मानसिक चंचलता का वर्णन प्राप्त होता है[28], विचारों का मनुष्य पर प्रभाव वर्णित है[29], प्रेम को आन्तरिक कारणों पर निर्भर यह अकारण बताया गया है[30], प्रिय वियोग जन्य दुःख में सम्बन्धियों के दर्शन को अधिक दुःखद बताया गया है वियोग का मन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह बतलाया गया है। इस तरह के बहुत से मनोवैज्ञानिक तत्त्व उत्तररामचरित में प्राप्त होते हैं।

संस्कृत नाटक यद्यपि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं लिखे गये हैं फिर भी संस्कृत के नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का अनायास अर्थात् स्वाभाविक रूप से समावेश कराया है। भवभूति द्वारा रचित नाटक उत्तररामचरित भी उक्त मत का समर्थन करता दिखलाई पड़ता है। भवभूति ने अपने नाटकों के सापेक्ष उत्तररामचरित में मनोवैज्ञानिकता का बेजोड़ नमूना प्रस्तुत किया है, जिसका प्रभाव आने वाले संस्कृत के नाटककारों पर स्पष्ट रूप से पड़ा है।

सन्दर्भ -

1. उत्तररामचरितम्, अंक 3, वाक्य 2
2. वही, अंक 3, वाक्य 2
3. वही, अंक 3, वाक्य 18
4. वही, अंक 4, वाक्य 36
5. वही, अंक 4, वाक्य 34
6. वही, अंक 5, श्लोक 9
7. वही, अंक 5, श्लोक 19
8. वही, अंक 3, वाक्य 77
9. वही, अंक 3, वाक्य 81
10. वही, अंक 3, वाक्य 82
11. वही, अंक 3, श्लोक 17
12. वही, अंक 4, श्लोक 21
13. वही, अंक 3, श्लोक 29
14. वही, अंक 3, श्लोक 30
15. वही, अंक 3, श्लोक 31
16. वही, अंक 3 श्लोक 3
17. वही, अंक 3, श्लोक 9
18. वही, अंक 4, श्लोक 4
19. वही, अंक 6, श्लोक 25
20. वही, अंक 4, वाक्य 22
21. वही, अंक 4, वाक्य 24
22. वही, अंक 2, वाक्य 18
23. वही, अंक 2, श्लोक 4
24. वही, अंक 3, श्लोक 12
25. वही, अंक 3, वाक्य 81
26. वही, अंक 6, वाक्य 58
27. वही, अंक 6, श्लोक 11
28. वही, अंक 4, श्लोक 22
29. वही, अंक 6, श्लोक 12
30. वही, अंक 4, श्लोक 8
31. वही, अंक 6, वाक्य 35

31

महाकवि भवभूति का राष्ट्र प्रेम

बाबूलाल मीना

'यतेमहि स्वराज्ये' [1] 'वयं राष्ट्रे जागृयाम'[2] 'माता भूमिः पुत्रेऽहं पृथिव्याः'[3] 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'[4] 'गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तुते भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।[5] इत्यादि उल्लेखों से स्पष्ट है कि अखिल विश्व में व्यक्ति के लिये अपना राष्ट्र, अपनी मातृभूमि या अपना देश परम प्रिय एवं परम सम्मान्य है। व्यक्ति के लिये सबसे बडा धर्म राष्ट्रधर्म है। इसलिये व्यक्ति को स्वार्थ-रहित होकर समर्पित भाव से राष्ट्रसेवा में संलग्न रहना चाहिये। वैदिक काल से अद्यपर्यन्त हमारे देश भारतवर्ष के कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी काव्यकृतियों में अपनी इस मातृभूमि के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का चिन्तन संजोया है। अथर्ववेद में मातृभूमि के प्रति जो अतुल आत्मीयता और श्रद्धा की अभिव्यक्ति है, वह अद्वितीय है। यथा-

''यत् ते मध्यं पृथिवि ! यच्च नभ्यं, यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूबुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व, माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।।''[6]

अर्थात् हे पृथिवी माता ! आपके मध्यभाग और शरीर से जो पोषण युक्त पदार्थ प्रादुर्भूत होते हैं, उनमें आप हमें प्रतिष्ठित करें तथा हमें पवित्रता प्रदान करें। यह धरती हमारी माता है और हम सब इसके पुत्र हैं। आदि-महाकवि महर्षि वाल्मीकि ने तो मातृभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर मान्य किया है। यथोल्लेख है कि- ''अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी''।। हमारे देश 'भारत' की तो महिमा ही अलौकिक आनन्दप्रद है। यहाँ पर्वतराज हिमालय देवतात्मा निरूपित है, जो पृथ्वी के मानदण्ड स्वरूप अलंकृत है। यथा निदिष्ट है कि-

''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।[7]

प्रायः सभी संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों में मातृभूमि भारतभूमि की महिमा का गायन है एवं अपने इस राष्ट्र 'भारत' के प्रति भक्ति का निरूपण है। महाकवि भवभूति (सप्तम शताब्दी) संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार विश्रुत ही हैं। इनकी तीन कृतियाँ - महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् संस्कृत साहित्यजगत् में अपना प्रतिष्ठित स्थान बनाये हुये हैं। महाकवि की उक्त नाटक-त्रयी में भारत और भारती के प्रति अगाध प्रेम, भक्तिभाव एवं समर्पण तथा राष्ट्रीयता के भावों का उन्मेष बड़ी पावनता से प्रदृष्ट है। भारत की देवभाषा संस्कृत

के प्रति आत्मीय लगाव होने से ही तो कविश्रेष्ठ भवभूति यह कह पाये हैं कि- **''यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।''**[8] और भी दृष्टव्य है कि- **''वश्यवाचः कवेर्वाक्यं सा च रामाश्रया कथा''।।**[9] यहाँ ''वश्यवाचः'' यह कथन महाकवि का भारत भारती के प्रति अगाध प्रेम एवं आत्मीयता का प्रतीक है, साथ ही ''रामाश्रया कथा'' कहकर महाकवि भवभूति ने समग्र भारत राष्ट्र के पुरोधा एवं इस महान् राष्ट्र के महापुरुष श्री राम के माध्यम से अपनी भारत भूमि के प्रति अतिशय प्रेमाभिव्यक्ति से अपनी उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। ''महाकवि भवभूति' भव की भूति थे, तथापि अपने राष्ट्र भारत के प्रति भक्तिभाव से वे इस राष्ट्र की महाविभूति बन गये। महाकवि भवभूति को अपने राष्ट्र भारतवर्ष के योगक्षेम की चिन्ता थी। यजुर्वेद में उल्लिखित ''वयं राष्ट्रे जागृयाम्''[10] अर्थात् ''हमें अपने राष्ट्र के हित में जाग्रत रहना चाहिये''; इस सुविचार को महाकवि भवभूति ने अपने नाटक 'महावीर चरितम्' में बड़े उत्प्रेरणाप्रदायिरूप में प्रस्तुत करते हुये लिखा है कि- **''न तस्य राष्ट्रं व्यथते, न रिष्यति न जीर्यति। त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्र गोपः पुरोहितः।।''**[11] अर्थात् वह राष्ट्र कभी व्यथित नहीं होता और न कभी टूटता है, न जीर्ण होता है, जिस राष्ट्र में विवेकी, विद्वान् एवं कर्तव्यनिष्ठ नेतृत्व होता है। महाकवि भवभूति ने अपनी रचनाओं में स्वराष्ट्रभक्ति चिन्तन को प्रश्रय प्रदान कर राष्ट्रभक्ति जागरण हेतु उत्प्रेरणा प्रदान करने का सदुपक्रम किया है। राष्ट्र की समुन्नति में राष्ट्रवासियों की वाणी की प्रखरता एवं सुशिक्षा अपेक्षित है। महाकवि भवभूति ने सभी प्रजाजनों में वाणी या सरस्वती की शोभन प्राप्ति के लिये अपने श्रेष्ठ नाटक उत्तररामचरितम् के प्रारम्भ में ही यह कामना एवं प्रार्थना की है। यथा- **''इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमो वाकं प्रशास्महे। विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्''।।**[12] प्रस्तुत मंगलाचरण में महाकवि द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में प्रार्थना की गई है। यह महाकवि के प्रबल राष्ट्रभक्ति चिन्तन को द्योतित करता है। उत्तररामचरितम् के भरत वाक्य में भी महाकवि ने सर्व जनमंगल की कामना को प्रश्रय देकर राष्ट्रभक्ति का मन्तव्य प्रगट किया है। यथा-

''पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा। मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च।।
तमेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः। शब्द ब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्।।''[13]

अर्थात् जगत् की माता और गङ्गा के समान मंगल के लिये हितकारिणी एवं मनोहर यह राम कथा लोक को पवित्र करने वाली है। यह कल्याण-वर्धन करती है। शब्द-ब्रह्म को जानने वाले कवि भवभूति द्वारा इसे अभिनव रूप में दिखाया गया है। इस रामचरितरूपवाणी का विद्वान् लोग समादर करें। यहाँ लोक कल्याण का चिन्तन राष्ट्रोन्नयन के लिये इंगित करता है। महाकवि भवभूति ने अपने 'उत्तररामचरितम्' नाटक में शासन और प्रशासन को गुरुजनों के माध्यम से अपने राष्ट्र और प्रजाजनों के योगक्षेम के लिये जाग्रत रहने के लिये निर्देश दिये हैं। ऋषिवरेण्य अष्टावक्र के माध्यम से महाकवि भवभूति ने राजा राम के लिये अपनी उक्त चिन्तना को परिपुष्ट किया है। महर्षि अष्टावक्र का राजा राम के प्रति यह कथन प्रमाण है, कि-

''जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः।।''

अर्थात् जामातृ ऋष्यशृंग के यज्ञ से हम लोग यहाँ रुके हुये हैं। आप बालक हैं और राज्य नया है, अतः आप प्रजाजनों को प्रसन्न करने में तत्पर हों। इससे यश मिलता है। यही आप लोगों का श्रेष्ठ धन है। यहाँ ऋषि द्वारा राजा के लिये राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं राष्ट्रभक्ति हेतु सीधा सीधा संदेश है, जो महाकवि की वाणी से स्फुरित है। महाकवि भवभूति ने राजा राम के माध्यम से राष्ट्र के हित में अपना सर्वस्व न्योछावर करने का जो

चिन्तन प्रस्तुत कराया है, वह अद्वितीय तो है ही, साथ ही सभी शासकों व राजाओं के लिये अनुकरणीय आदर्श भी है। महाकवि द्वारा राजाओं के लिये प्रस्तुत यह राष्ट्रभक्ति धर्म परम श्लाघनीय है ! यथा निर्दिष्ट है कि-

''स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा''।।[14]

अर्थात् (राजा राम का कथन है कि) प्रजाओं के अनुरञ्जन या प्रसन्नता एवं सुख के लिये स्नेह, दया, सौख्य और सीता को भी त्यागने में मुझे दुःख नहीं है। राष्ट्रहिताय अपनी सर्वस्व सुख सुविधा का त्याग ही श्रेष्ठ राष्ट्रभक्ति है, जिसे महाकवि भवभूति ने बड़ी गरिमा से प्रस्तुत किया है। यह विश्व के सम्पूर्ण प्रशासकों के लिये अनुकरणीय आदर्श है। 'राष्ट्रभक्ति' में राष्ट्र और भक्ति दो शब्द है। 'राष्ट्र' शब्द राज् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय से निर्मित है। जो एक दीप्तमान या स्वतन्त्र देश का अर्थ प्रस्तुत करता है। 'भक्ति' पद 'भज्' (सेवायां) धातु से क्तिन् प्रत्यय से निर्मित है। इस प्रकार 'राष्ट्रभक्ति' पद का अर्थ देश या जनता की सेवा को प्रस्तुत करता है। राष्ट्र की सेवा में सुसंस्कारों की शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। महाकवि भवभूति ने अपनी कृतियों में भारतीय सुसंस्कारों को परमोपादेय स्वीकार कर महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। ये सुसंस्कार ही तो प्रदान करते हैं। महाकवि भवभूति ने अपनी कृतियों में भारतीय शुभ संस्कारों को प्रतिष्ठापित किया है जो राष्ट्रभक्ति के प्रेरणा के मूल आधार हैं। तन के पवित्रता और मन की प्रसन्नता के लिये गोदान और चौलकर्म संस्कार का उल्लेख कर महाकवि भवभूति ने संस्कारित जीवन जीकर देश हिताय अनुशासन के अनुकरण का पाठ पढ़ाया है। संस्कारों की सरणि यहाँ दृष्टव्य है। यथा- **''एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिताः।।''**[15] अर्थात् गोदान-कृत (केशान्त संस्कार कृत) विवाह दीक्षित ये चारों भाई हैं। इसी प्रकार ''निवृत्तचौलकर्मणोः''[16] का उल्लेख भी संस्कारों की महनीयता को प्रगट करता है। वस्तुतः राष्ट्रभक्ति के आधान में या राष्ट्रभक्त होने में भारतीय सोलह संस्कारों की अहं भूमिका है, जिन्हें महाकवि भवभूति ने अपनी कृतियों में स्थान देकर जन जन के मन में राष्ट्र प्रेम-जागरण का कार्य किया है। राष्ट्रभक्ति के लिये ज्ञानार्जन या शिक्षित होना अनिवार्य होता है। महाकवि भवभूति ने त्रिविद्या-आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति के ज्ञान की महत्ता को निरुपित किया है। यथा-''तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिश्ठिताः''[17]। पुनः उल्लेख है कि- ''भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ''[18]। अपने राष्ट्र के पर्वत, नदियों, वनों एवं उपवनों को स्मृत करना एवं उनके प्रति अनुरागाभिव्यक्ति महाकवि भवभूति की राष्ट्रभक्ति का ही परिचायक है। उल्लेख है कि-

''एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसाश्रिततरुनि तपोवनानि।
येश्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।।''[19]

अर्थात् पर्वत की नदियों के तीरों में वानप्रस्थों से आश्रित वृक्षों से युक्त ये वे तपोवन हैं, जिनमें अतिथि सत्कार में तत्पर मुट्ठी भर नीवार का पाक करने वाले अहिंसा आदि धर्मों के पालक गृही आश्रय लेते हैं। यहाँ अपने देश की प्रकृति से प्रेमोद्भाव राष्ट्रभक्ति का सूचक है और भी उल्लेख्य है कि- **स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा। स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि।''**[20] अर्थात् सुस्वादु जल वाली गोदावरी स्मृत हैं? उसके उपान्त में हम दोनों के रहने के क्षण याद हैं? यहाँ भी प्रकृति से आत्मीयता 'राष्ट्रप्रेम' को प्रद्योतित करती है। महाकवि भवभूति लोकाराधन या लोकसेवा में दत्तचित्त व्यक्ति के भक्तिभाव को ही प्रश्रय देते हैं। राष्ट्र और उसकी जनता को सम्पन्नता प्रदान करने वाले उनकी दृष्टि में सज्जन और देशभक्त हैं। यथा-

''सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम्। तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता।।''[21]

अर्थात् किसी भी कार्य से लोक का अनुरञ्जन करना सज्जनों का श्रेष्ठ कार्य है। मुझे और प्राणों को

छोड़ते हुये पिताजी ने उस कर्म को प्रख्यात किया। ''यहाँ राष्ट्रधर्म प्रधानतया निरूपित है।'' मानव समाज को सुशील, सदाचारी और निश्चल बनाने की सीख देने के लिये सज्जनों के चरित्र को उजागर करना भी देशभक्ति को प्रद्योतित करना ही है। महाकवि भवभूति ने एक आदर्श मानव-समाज की स्थापना के लिये सज्जनों के चरित्र का निदर्शन अपने ग्रन्थों में कराया है। यथा-

''प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः। प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं, रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते।।''[22]

अर्थात् व्यवहार अतिशय प्रीतिकारक, वचन में नियम, नम्रता से मनोहर, बुद्धि स्वभाव से ही मंगलरूपा और परिचय अनिन्दित तथा संगम से पहले या पीछे प्रेम का उल्लंघन नहीं करने वाला, निश्छल और विशुद्ध- ऐसा सज्जनों का चरित्र सबसे उत्कृष्ट होता है। उपर्युक्त सद्‌गुणों से युक्त अच्छे मानव-समाज के स्थापन का निदर्शन कर महाकवि भवभूति ने राष्ट्रोन्नयन को ही सम्बल प्रदान किया है एवं राष्ट्रभक्ति को दर्शाया है। महाकवि भवभूति द्वारा एक बृहत् राष्ट्र की परिकल्पना उनकी राष्ट्रीय भावना का ही परिचायक है। 'उत्तररामचरितम्' नाटक के चतुर्थ अंक में उल्लिखित अश्वमेध यज्ञ की विभावना के प्रस्तुतकर्ता महाकवि भवभूति ने पूर्ण भारत के एकत्व और समत्व को प्रदर्शित कर अपनी राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। महाकवि ने यहाँ यह उद्‌घोष किया है कि जो व्यक्ति आत्मघाती अर्थात् राष्ट्रद्रोही होते हैं, वे अन्धतामिस्र नरक के भागी होते हैं। यथोल्लेख है कि- **''अन्धतामिस्रा ह्यसूर्यानाम ते लोकास्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य 'आत्मघातिनः' इत्येवमृषयो मन्यन्ते।''**[23]

अर्थात् जो आत्मघाती या राष्ट्रद्रोही होते हैं, उनके मरने पर उनको अन्धा करने वाले सूर्यरहित लोक मिलते हैं- ऋषि लोग ऐसा मानते हैं। मानव-समाज के शुद्ध चरित्र से एक श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण होता है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरितम् एवं महावीरचरितम् में लोककल्याणकारी एवं सुमंगल चरित्र श्रीराम के आदर्श को प्रस्तुत कर जन जन में लोककल्याण के भाव भरने का जो सदुपक्रम किया है, वह राष्ट्रभक्ति-भावना के सम्वर्धन का जीता जागता प्रमाण है। महाकवि ने अपने महावीरचरितम् नाटक में श्रीराम के पावन चरित्र का वर्णन करते हुये उस वाणी को विद्वज्जनों द्वारा ग्रहण के योग्य माना। यथा- **'प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां तत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्। भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाचस्-तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्'**[24] अर्थात् आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का जो पावन चरित्र वर्णन किया है, भक्त होने से हमारी वाणी भी उस पर अनुरक्त हो गई, विद्वान् जन प्रसन्न हृदय से उसका आस्वादन करें। श्रीराम की भक्ति एक व्यक्ति की भक्ति नहीं है, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र की भक्ति है। एक महापुरुष स्वयं ही एक महान् राष्ट्र के निर्माण का पुरोधा होता है और वह सम्पूर्ण राष्ट्र के सुख और आनन्द का पुरोधा तथा विधाता भी बनता है। महाकवि भवभूति के इस विशय में उल्लेख किया है कि-

'क्षमायाः स क्षेत्रं गुणमणिगणानामपि खनिः। प्रपन्नानां मूर्तिः सुकृतपरिपाको जनिमताम्।
कृपा रामो रामो बहिरिह दृश्योपास्यत इति। प्रमोदाद्वै तस्याप्युपरि परिवर्तामह इमे।।'[25]

अर्थात् जो 'राम' क्षमा के निधान और गुणगणों की खान हैं, शरणागतों के पुण्यों के परिणाम हैं, वे ही हमारी आँखों के समान हैं। इस आनन्द से मैं सभी तरह के आनन्दों से ऊपर हो रहा हूँ। भगवान् सूर्यदेव की स्तुति में महाकवि भवभूति अपने माध्यम से मानो सम्पूर्ण समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याण तथा मंगल की कामना करते हैं। यथा-

''कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते ! धुर्या लक्ष्मीमिह मयि भृशं धेहि देव ! प्रसीद।
यद्यत्पापं प्रति जहि जगन्नाथ ! नम्रस्य तन्मे। भद्रं भद्रं वितर भगवन् ! भूयसे मङ्गलाय।।''[26]

अर्थात् हे विश्वमूर्ति ! सविता देव। आप कल्याणों के निधान हैं। आप लक्ष्मी प्रदान करें एवं प्रसन्न हों। जो मेरे पाप हैं, उन्हें दूर करें। हे भगवन् ! आप कल्याणों को प्रदान करें।'' यहाँ कवि की वाणी समष्टि के हित का चिन्तन करती हुई प्रस्फुरित हुई है। इसमें सम्पूर्ण राष्ट्र की सम्पन्नता और मंगलकामना की अभिव्यक्ति है। राष्ट्र के योगक्षेम-हेतु एवं प्रजा में विप्लवन होने के लिये राजाओं को सुशासनरत रहने की चेतावनी महाकवि भवभूति की राष्ट्रीय भावना का ही प्रतीक है। यथोल्लेख है कि- **''राजा चेत् पुरुषं न शास्ति तदयं प्राप्तः प्रजाविप्लवः।।''**[27] अर्थात् असद् आचरण करने वाले व्यक्ति को यदि राजा शासित न करे, तो प्रजा विप्लव उत्पन्न हो जाता है। यहाँ पर महाकवि भवभूति ने राज्यानुशासन को राष्ट्रीय भावना के अन्तर्गत निरूपित किया है। महाकवि भवभूति के अनुसार राज्य का राजा मनीषी अर्थात् मननशील, राष्ट्रहिताय चिन्तनशील एवं राष्ट्रभक्त होना चाहिए। यथोल्लेख है कि- **''स एष राजा जनको मनीषी।''**[28] अपने उत्तररामचरितम् नाटक में प्रकृति प्रेम की वर्णनानुसार ही महाकवि भवभूति ने 'महावीरचरितम्' नाटक में भी प्रकृति और उसके अङ्गोपाङ्गों-पर्वत, नदी आदि निसर्ग माधुर्य को प्रस्तुत कर राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त किया है। महाकवि भवभूति ने प्रस्तुत छन्द में भारत के विभिन्न प्रदेशों एवं प्राकृतिक अङ्गों का मनोरम वर्णन बड़ी आत्मीयता से किया है। यथा-

''एते ते सुरसिन्धुधौतदृशदः कर्पूरखण्डोज्ज्वलाः, पादा जर्जर भूर्जवल्कलभृतो गौरीगुरोः पावनाः।
तत्त्वालोकनिरस्तमोहतमसामध्यात्मविद्याजुशां। यत्र ब्रह्मविदां निसर्गमधुरं जागर्ति सौम्यं महः।।''[29]

अर्थात् ''ये हिमालय के पवित्र शिखर हैं, जिनके चरण को गङ्गा पी रही हैं और जो कर्पूर की तरह स्वच्छ है, जहाँ पुराने भूर्ज वल्कल हैं। अध्यात्मविद्या के प्रेमी तत्त्वज्ञान से अज्ञान को दूर कर देने वाले ब्रह्मज्ञानियों के स्वभाव सुन्दर तेज वहाँ बिखर रहे हैं।'' यहाँ राष्ट्र की प्रकृति से आत्मीयता के भाव राष्ट्रीय भावना के द्योतक हैं। राष्ट्रभक्ति या राष्ट्रीय भावना श्रेष्ठ धन और श्रेष्ठ उपलब्धि है। राजाओं के अन्तस् में यह भाव लोकहितार्थ होना ही चाहिये, क्योंकि लोगों को प्रसन्न रखना उनका कर्त्तव्य है। महाकवि भवभूति इस विषय में उल्लेख करते हैं कि- **''क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयः।''**[30] 'लोकाराधन' राष्ट्रीय भावना की प्रदीप्ति से ही सम्भव होता है। महाकवि ने उक्तभाव को इक्ष्वाकु राजाओं का कुलधन कहा है। यह भाव समस्त लोक के द्वारा समाराधनीय भी कहा गया है। यथा- **''इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं। यत्समाराधनीयः कृत्स्नो लोकः।।**[31] राजा और प्रजा दोनों में ही यह राष्ट्ररञ्जन भाव या राष्ट्रीय भावना सुस्थित हो, इसी उद्देश्य से महाकवि भवभूति ने उक्त चिन्तन प्रस्तुत किया है। महाकवि भवभूति ने राज्ञी में भी राष्ट्रीय भाव की सुस्थिति का निरूपण कर समस्त नारी समाज में राष्ट्रीय भावना जागरण की अलख जगाई है। यथा-

''विष्वंभरा भगवती भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि। पार्थिवानां येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।''[32]

अर्थात् हे सौभाग्यवती ! भगवती पृथ्वी ने आपको उत्पन्न किया है, प्रजापति के तुल्य राजा जनक आपके पिता हैं। आप उन राजाओं की कुलवधू हैं, जिनके कुल में सूर्य और हम जैसे गुरु हैं। उपर्युक्त वाक्य से सीता के विशाल हृदय और सर्वहितैषी तथा श्रेयस्कर रूप का प्रत्यक्षीकरण सिद्ध है। सब के प्रति सदाशयता का भाव राष्ट्रीय भावना को यहाँ प्रगट करता है। राष्ट्र और समाज की एकता, समुन्नति, अभ्युदय तथा प्रेम-प्रतीति

में मधुर, हितकारी एवं सत्यान्वित वाणी-व्यवहार परम आवश्यक है। महाकवि भवभूति ने कटुवाणी के दोष तथा सुन्दर वाणी की श्लाधनीयता को बड़े ही सरल, सहज, सुग्राह्य शब्दों में प्रस्तुत कर राष्ट्रीय भावना के सुस्थापन को सम्बल दिया है। यथा- **''ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः,सा योनिः सर्व वैराणां सा हि लोकस्य निऋतिः।।''**[33] अर्थात् ऋषि लोग उन्मत्त और अहङ्कारी पुरुष की वाणी को राक्षसी कहते हैं। यह सम्पूर्ण वैर या शत्रुता का कारण है। यही राक्षसी वाणी लोक के तिरस्कार का कारण है। सत्य और प्रिय वाणी के सुप्रभाव को निरूपित करते हुये महाकवि ने उसकी प्रतिष्ठा का वर्णन करते हुये उल्लेख किया है कि-

''कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं, कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां, धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः।।''[34]

अर्थात् सत्य और प्रिय वाणी अभिलाषा को पूर्ण करती है। निर्धनता दूर करती है। यश देती है। दुष्कृत विनष्ट करती है। इसीलिये विद्वान् पुरुष सत्य और प्रिय वाणी को कल्याणों की उत्पत्ति करने वाली कामधेनु के तुल्य कहते हैं। राष्ट्रीय भावना की उद्भूति में मन, वाणी और कर्म का ऐक्य अनिवार्य है। इनमें सत्य और प्रिय वाणी परमोपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है, जिसे अपनाने के लिये महाकवि भवभूति ने सहजभाव से इसे प्रस्तुत कर लोक एवं राष्ट्रहिताय उत्प्रेरणा प्रदान की है। इस प्रकार महाकवि ने राष्ट्रीय भावना के जागरण में सूनृत वाणी की महत्ता प्रतिपादित की है। राष्ट्रभक्ति या राष्ट्रीय भावना का सुदृढ़ आधार व्यक्ति का दया एवं करुणापूर्ण चरित्र है। 'राम' की दया और करुणा से तो ग्रावा भी द्रवित हुये थे। यथोल्लेख है कि- **''जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-रपिग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।''**[35] अर्थात् निर्जन जनस्थान में नेत्र आदि इन्द्रिय क्रिया में असमर्थ आर्य के चरित्रों से पत्थर भी आँसू गिराता है और वज्र का भी हृदय द्रवित होता है। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि राष्ट्रीयभावना की सुस्थिति में सदाचार पूर्ण चरित्र का प्रामुख्य है, जो महत् प्रभावी होता है। महाकवि भवभूति द्वारा वर्णित श्रीराम की करुणा एक रस होकर सबको प्रभावित करती है। यह राष्ट्रप्रेम के जागरण का मूलाधार भी है। यथा- **'अनिर्भिन्नोगभीरत्वा- दन्तर्गूढ़धनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।'**[36] अर्थात् गम्भीरता से अव्यक्त, भीतर छिपी हुई गाढ़-वेदना से युक्त राम का करुण रस पुटपाक से सदृश है। उक्त कथन से सभी में करुणा, प्रेम तथा भक्ति का भाव उत्पन्न करने एवं प्रसारित करने का महाकवि का सुप्रयास निर्दिष्ट है। महाकवि भवभूति ने छोटे छोटे राज्यों की परिकल्पना से हटकर एक विशाल एवं महान् भारत राष्ट्र का चित्रांकन किया है। भारत के दक्षिण क्षेत्र के समस्त पर्वतों, गुफाओं, नदियों आदि को महाकवि भवभूति ने राम के अन्तर्मन से जोड़ा और समूचे भारत को एकरूपता में चित्राङ्कित किया है। यथा-

''एते ते कुहरेषु गद्गदनदद् गोदावरी वारयो, मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः।।''[37]

अर्थात् गुफाओं में कलकल शब्द कर चलने वाली गोदावरी के जल से युक्त और मेघ से अवलम्बित शिखर के अग्रभाग वाले, नीलवर्ण की चोटियों से युक्त ये दक्षिण दिशा के पर्वत हैं। परस्पर में आघात से अत्यधिक चञ्चल महातरंगों के कोलाहलों से वेग वाले ये गहरे जल से युक्त पवित्र नदियों के संगम हैं।

महाकवि भवभूति का उक्त कथन दक्षिण भारत के प्रति आत्मीय चिन्तन एवं प्रेम प्रस्तुत करता है तथा समूचे भारत राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त करता है। श्रेष्ठ पात्रों का चरित्राङ्कन राष्ट्रीय भावना की जागृति में विशेष प्रभावकारी होता है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों के श्रेष्ठ पात्रों- यथा राम, सीता, वासन्ती, जनक, दशरथ, विश्वामित्र, वशिष्ठ, शतानंद आदि का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह सभी के लिये

अनुकरणीय है, क्योंकि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व तथा चरित्र में राष्ट्रीय भावना या राष्ट्र भक्ति समाहित है। वस्तुतः व्यक्ति के द्वारा उसके कर्त्तव्यपालन में ही राष्ट्रीय भावना का उन्मेष प्रदृष्ट होता है। 'उत्तररामचरितम्' नाटक के नायक राजा राम एक महान् व्यक्ति, कर्मनिष्ठ प्रजापालक, लोकनायक एवं लोकरञ्जक महापुरुष होने के साथ ही एक आदर्श गृहस्थ भी हैं। अतः वे अपने राष्ट्र के गरिमा और गौरवमय 'गर्व' निरुपित हैं। एक आदर्श एवं सात्त्विक गुण प्रधान राजा के गुणों का प्रभाव 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार जनता पर सहज ही होता है। राजा राम की राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रभक्ति का प्रभाव सम्पूर्ण जनता पर था। श्रीराम का अद्वैतभाव और सुखदुःखादि में समभाव तथा एकरस दाम्पत्य उनके अध्यात्म ज्ञान का परिणाम है, जो समूचे राष्ट्र के कल्याण के लिये प्रतिबद्ध करता है। राम के इस व्यक्तित्व को महाकवि ने इस प्रकार व्यक्त कर लोक-हेतु अनुकरणीय निरुपित किया है। यथा-

''अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्, विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं। भद्रं तस्य सुमानुशस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते।।''[38]

अर्थात् जो सुख और दुःख में एक रूप है, जो सभी अवस्थाओं में अनुगत है, जिसमें हृदय का विश्राम है, जिसमें सब समय समान प्रीति है, ऐसा दाम्पत्य जीवन बड़े पुण्य से प्राप्त होता है। उपर्युक्त वर्णन से सत्कर्म से पुण्य प्राप्त श्रीराम की एक रस स्थिति का निरुपण जन-जन के लिये अनुकरणीय आदर्श तो है ही, यह राष्ट्रभक्ति का प्रेरक एवं जनक भी है। राष्ट्रीय भावना की जागृति में शिक्षा बड़ी महत्त्वपूर्ण है। महाकवि भवभूति के समय में वर्णव्यवस्था और आश्रमव्यवस्था की सुचारुता थी। ब्रह्मचर्याश्रम में कर्मकाण्ड, वेदवेदाङ्ग एवं शास्त्रादि का ज्ञान करणीय था। महाकवि भवभूति की कृतियों में राष्ट्रभक्ति भाव जाग्रत करने वाली शिक्षा का प्रसार था। महाकवि की कृतियों में तद्विषयक श्रुतिसिद्धान्तों आदि के अध्ययन अध्यापन विषयक विचार सन्नद्ध हैं। नर और नारी की समान शिक्षा-ग्रहण की पद्धति का उल्लेख भी महाकवि की कृतियों में दृष्टव्य है। महाकवि भवभूति की कृति मालतीमाधव में कामन्दकी और भूरिवसु के साथ साथ पढ़ने का उल्लेख है। इस प्रकार महाकवि भवभूति ने राष्ट्रीय भावना के जागरण के लिये नर और नारी दोनों की शिक्षा पर बल दिया है। दोनों की समानता और मैत्रीभाव को भी निरुपित किया है। यथा-

''प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामा ़ेवधिर्जीवितं वां
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु।।''[39]

समाज के सभी वर्णों एवं पुरुष में समानता की भावना की प्रस्तुति महाकवि भवभूति के राष्ट्र प्रेम राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रीय भावना को प्रद्योतित करते हैं। शिक्षा के विविध आयाम भी महाकवि भवभूति ने चित्रित किये हैं। यथोल्लेख है कि- **'इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च। भवन्त एव जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम्।।'**[40] अर्थात् इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और रघुवंश के राजाओं की वंश मर्यादा को आप जानते हैं। यहाँ महाकवि ने विविध प्रकार की शिक्षा के प्रचलन से अवगत कराया है, जो राष्ट्रीय भावना के जागरण का मूलाधार हैं। महाकवि भवभूति पुरुषार्थ को राष्ट्रभक्ति का श्रेष्ठ गुण मानते हैं। पुरुषार्थ के प्रति उदासीनता उनके मत में अवनयन या विपदा का कारण बनती है। प्रत्येक व्यक्ति का धर्म 'पुरुषार्थ' का वर्णन करते हुये महाकवि ने इसे समाज और राष्ट्र के हित में अवश्यमेव करणीय कहा है। यथा-

''जयो वा मृत्युर्वा भवतु नियतं मे मतमिदं, रिपावौदासीन्यं मनसि न समाधानमयते।
अनारम्भे नित्या विपदितरथा चेदनियता, तदानीमुद्योगो ननु पुरुषधर्मो बहुमतः।।''[41]

निष्कर्षतः - महाकवि भवभूति के सभी नाटकों में लोकाराधन का दर्शन निहित है। विनम्रता, समता, पुरुषार्थ, करुणा, सेवा, मानवता, राष्ट्रप्रेम आदि सद्गुण उसके आदृत आधार हैं। यही सद्गुण राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय भावना के जीते जागते प्रमाण हैं। महाकवि भवभूति ने जन जन में राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय प्रेम की जागृति-हेतु महनीय श्रेष्ठ गुणधर्मों को अपनी कृतियों में स्थान दिया है। जिन्हें आत्मसात् कर हम 'वयं राष्ट्रे जागृयाम' की सूक्ति को सार्थक कर अपने जीवन को धन्यता प्रदान करें।

सन्दर्भ -

1. *ऋग्वेद, 5-66-6*
2. *यजुर्वेद, 9-23*
3. *अथर्ववेद, 12-1-12*
4. *वाल्मीकिरामायण*
5. *विष्णुपुराण, 3-24*
6. *अथर्ववेद, 12-1-12*
7. *कुमारसम्भव, 1-1*
8. *उत्तररामचरितम् , 1-2*
9. *महावीरचरितम् , 4-4*
10. *यजुर्वेद, 9-23*
11. *म.च., 3-18*
12. *उ.रा.च., 1-1*
13. *वहीं, 7-21*
14. *वहीं, 1-12*
15. *वहीं, अङ्क-1*
16. *वहीं, अंक 2*
17. *वहीं, द्वितीय अङ्क*
18. *वहीं, द्वितीय अङ्क, पृ. 87*
19. *वहीं, 1-25*
20. *वहीं, 1-26*
21. *वहीं, 1-41*
22. *वहीं, 2-2*
23. *वहीं, 4-3 के पश्चात् उल्लेख*
24. *महावीरचरितम्-1-7*
25. *वहीं,-33*
26. *मालतीमाधवम्-1-3*
27. *महावीरचरितम्-3-35*
28. *वहीं, 2-43*
29. *वहीं, 7-27*
30. *उ.रा.च., 1-14*
31. *वहीं, 7-6*
32. *वहीं, 1-9*
33. *वहीं, 5-29*
34. *वहीं, 5-30*
35. *वहीं, 1-28*
36. *वहीं, 3-1*
37. *वहीं, 2-30*
38. *वहीं, 1-39*
39. *मालतीमाधवम्, 6-18*
40. *उ.रा.च., 5-23*
41. *महावीरचरितम्, 6-16*

32

भवभूति के रूपकों में मानवीय मूल्यों की अवधारणा

दिनेश शर्मा भारद्वाज

शास्त्रों के अनुसार मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। मनुष्य को यह गौरव किन्हीं विशेष गुणों के कारण प्राप्त हुआ है। इन्हीं गुणों को मानवीय मूल्य कहा जाता है। सत्यनिष्ठा, पवित्रता, ईमानदारी, सच्चरित्रता, प्रेम, दया, करुणा, क्षमा, विनम्रता, मैत्रीभाव, सेवा, त्याग, धैर्य, सन्तोष तथा सदाचार आदि ऐसे अनेक गुण हैं, जिन्हें हम मानवीय मूल्यों की उच्च कोटि में रख सकते हैं। ये मानवीय मूल्य ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से सर्वथा अलग रखते हैं। इन मूल्यों का मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व है। यदि ये मूल्य किसी मनुष्य के जीवन में दिखायी नहीं देते हैं, तो उसे पशु की श्रेणी में ही रखा जाता है। नीतिशास्त्र का वचन है- **धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः।**[1] धर्मयुक्त आचरण ही वास्तविक अर्थों में मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करता है। वेदों का उद्घोष है- 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो। तात्पर्य यह है कि सच्चे अर्थों में एक मनुष्य कहलाने के लिये समुचित मानवीय मूल्यों को जीवन में प्रतिष्ठापित किया जाना चाहिये, ताकि जिस उद्देश्य के लिये यह जीवन मिला है, उसकी प्राप्ति सहजतया की जा सके। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की स्थापना में संस्कृत साहित्य के कवियों में महाकवि भवभूति अग्रणी रहे है। भवभूति के अधिकांश नाटकों का उपजीव्य आदिकाव्य रामायण रहा है, कवि की आदर्शवादी विचारधारा के समर्थ प्रतीक राम मानवता के परम अधिष्ठान है। भवभूति के दो नाटक राम कथा पर आश्रित है। गहन शास्त्र अध्ययन करने के बाद भी उनका हृदय शुष्क नहीं था, वे वेदाभ्यास जड़ न होकर बड़े ही भावुक थे। भवभूति राम या सीता के चरित्र को मानवीय मूल्यों के निकष पर कसते हैं, उन्हें मानव हृदय के स्वाभाविक द्वन्द्वों, पीड़ाओं, निर्बलताओं और शक्तियों की समन्वित आग में तपाते हैं। इस प्रकार भवभूति की रचनाओं में कई प्रसंग हैं, जो जीवन के आदर्श मूल्यों को उजागर करते हैं। मानवीय मूल्यों की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिये कुछ प्रमुख प्रसंगों का विवेचन इस प्रकार से है-

सात्विक प्रेम

महाकवि भवभूति सात्त्विक प्रेम एवं आदर्श प्रेम के प्रतिनिधि कवि हैं। वासनामय कलुषित प्रेम को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान नहीं दिया है। भवभूति की दृष्टि में प्रेम किन्हीं बाह्य कारणों पर आश्रित नहीं होता, कोई आन्तरिक अज्ञात हेतु ही पदार्थों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता है। वह तो आन्तरिक हेतु पर निर्भर है, जो उसे गहरी आत्मीयता में निमग्न कर सात्विक रूप प्रदान करता है। इसलिए तो सूर्य के उदय होने पर ही कमल खिलता है और चन्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रकान्तमणि द्रवित होने लगती है-

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।[2]

सात्विक प्रेम सर्वदा एक सा रहता है, उसमें समय के साथ कमी नहीं आती; वह उत्तरोत्तर समृद्ध होता ही रहता है। सात्विक प्रेम में हृदय को परम विश्राम मिलता है, ऐसा प्रेम बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। प्रेमी अपने प्रिय के लिये कुछ भी न करने पर भी एक बहुत बड़ी निधि होता है।

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति। तत्तस्य किमपि द्रव्यं, यो हि यस्य प्रियो जनः।।[3]

भवभूति के अनुसार पति-पत्नी के स्नेह युक्त हृदयों को एक बन्धन में बाँधने वाली ग्रन्थि तथा हृदय में बिखरे हुए प्रेमकणों के मूर्त रूप को ही 'सन्तान' कहते हैं। वह सन्तान इस पारिवारिक प्रेम को बढ़ाने वाली होती है। वह दम्पती के अन्तःकरण की आनन्द ग्रन्थि होती है-

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।।[4]

स्त्री के लिये उसका पति और पति के लिये उनकी पत्नी दोनों परमप्रिय मित्र हैं। यही सबसे बड़ा सम्बन्ध है। यह सारी इच्छाओं की पूर्णता सबसे बड़ी निधि है; यही साक्षात् जीवन भी है। अधिक क्या कहें, स्वयं जीवन ही है। प्रेम का प्रभाव माधव के लिए वर्णनातीत है। प्रेम की व्याख्या शब्दों में संभव नहीं है, जिसे मैंने इस जन्म में पहले कभी अनुभव नही किया, जिसने मेरे विवेक को हर लिया है तथा जिसने मुझे महामोहान्धकार से ढक लिया है, मेरे अन्तःकरण को जड़ीभूत कर रहा है, और संतप्त भी कर रहा है। ऐसे पवित्र प्रेम के धरातल पर भवभूति ने अपनी रचनाएँ अवतरित की थी। भवभूति प्रणय के उद्दाम क्षणों में भी प्रेम का आदर्श नहीं त्यागते; राम और सीता की तो बात ही क्या?, मालती और माधव जैसे रोमांसप्रिय पात्र भी प्रणय के उच्च आदर्शों पर चलते हैं। भवभूति के पावन प्रेम-दर्शन की एक दूसरी विशेषता है- अनन्य एवं एकनिष्ठ अनुराग। राम एवं सीता तो परम्परा से ही दाम्पत्य अनुराग की इस महनीयता के आदर्श माने जाते रहे हैं, अतः उत्तररामचरित में उस आदर्श की अनुपम अभिव्यक्ति का ही विशेष महत्व है, उसकी वस्तु की मूल रेखाएँ तो परम्परासम्मत ही रही हैं । इस दृष्टि से माधव एवं मालती का प्रणय-जीवन वस्तु एवं अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से कवि की मौलिक एवं भव्य सृष्टि है।

आदर्श दाम्पत्य जीवन

भवभूति के नाटकों में दाम्पत्य-प्रेम का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है, विशेष रूप से उत्तररामचरित में । उत्तररामचरित संस्कृत साहित्य का सर्वोत्तम पारिवारिक नाटक है। इस नाटक में महाकवि भवभूति ने पारिवारिक आदशों की स्थापना की है। उत्तररामचरित के प्रथम अंक में आदर्श प्रेम को बहुत सुन्दर व्याख्यायित किया है। संसार में सच्चा दाम्पत्य प्रेम बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। सर्वथा कल्याणकारी दाम्पत्य स्नेह के विषय में भवभूति की मान्यता है, कि वह किसी- किसी सौभाग्यशाली को ही नसीब होता है। उसकी यह विशेषता है, कि वह सुख-दुःख और सभी अवस्थाओं में एक सा रहता है। वह हृदय को अपूर्व विश्राम देता है, वृद्धावस्था में भी उसमें अनुराग की कमी नहीं होती। वह समय पाकर सभी प्रकार के संकोचों के समाप्त हो जाने से प्रगाढ़ एवं उत्कृष्ट प्रेम के रूप में स्थित रहता है-

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-द्विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते।।[5]

पति-पत्नी के आदर्श सम्बन्ध का सुन्दर वर्णन मालतीमाधव में द्रष्टव्य है-

प्रेयो मित्रम् बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः शेवधिजह्लवितं वा।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु।।[6]

भवभूति पवित्र प्रेम के उपासक हैं। वे सार्वदिक्, एकरस, अविच्छिन्न दाम्पत्य प्रेम में विश्वास रखते हैं। प्रेम का इतना उच्च्य आदर्श बहुत कम देखने को मिलेगा। भवभूति की दृष्टि में दम्पत्ति पारिवारिक जीवन की मूल धुरी हैं, और दाम्पत्य उस जीवन का मूल भाव है। शेष सारे भाव जीवन के खड्डमड्ड मार्ग में टूट सकते हैं, किन्तु यही एक भाव है, जो जीवन की सम-विषम अवस्थाओं में न केवल नहीं टूटता है, बल्कि उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ स्नेह के स्थिरांश में परिणत हो जाता है। उत्तररामचरित के राम एवं सीता इसी पारिवारिक परा भावना के जीवन्त रूप हैं। भवभूति की वेदनाव्यथित विधुरावस्था की अनुभूति की तीव्रता में उनके उल्लासमय दाम्पत्य जीवन की मधुरता ही मुख्य हेतु है। उनके आदर्श दाम्पत्य जीवन की मनोरम झाँकी उत्तररामचरित में दर्शनीय एवं स्पृहणीय है। सच्चरित्रता, निष्ठा और मर्यादापूर्ण जीवन जीने वाले तथा धर्म में गहरी आस्था रखने वाले भवभूति के मत में स्त्री भोगविलास की सामग्री नहीं, अपितु घर की लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिए अमृत शलाका की भाँति शान्ति प्रदायिनी है। वह जीवनसहचरी है और पवित्रता की मूर्ति है। सीता जी की प्रत्येक वस्तु उन्हें प्रिय है, यदि कोई वस्तु अप्रिय है तो वह है उनका वियोग। राम जी का कथन है-

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयो- रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः,किमस्या न प्रेयो? यदि परमसह्यस्तु विरहः।।[7]

इस प्रकार भवभूति ने सीताजी के प्रति राम के परम अनुराग को व्यक्त किया है। पारिवारिक आदर्श एवं परा एकायनता के उभयतटों के बीच अनन्य भाव से प्रवाहित होने वाली माधव एवं मालती के जीवन की यह एकीकृत संचेतना भवभूति के प्रेम-दर्शन का मंगलमय रूप है।[8] मालतीमाधव की मालती अपने भावुक प्रेम के सारे उद्दीपनों के बीच भी संयत एवं गम्भीर है । अपने बन्धुजनों की उपेक्षा का साहस न करने वाली, दुर्दान्त प्रणय की रोमानियत में अपने कौटुम्बिक आदर्शों एवं यथार्थो को नहीं भूलने वाली तथा दाम्पत्य को ही प्रेम सम्बन्धों की परिणति मानने वाली मालती भारतीय नारी चरित्र की प्रभविष्णुता एवं महिमा से मण्डित दीखती है। इस प्रकार मालती माधव जैसे पात्रों के प्रणयप्रसंग में भी भवभूति ने दाम्पत्य जीवन के आदर्शों को नहीं त्यागा है।

प्रजानुरंजन-

उत्तररामचरित में भवभूति ने राम के कुछ विशिष्ट गुणों को उदात्त भूमिका में अत्यन्त प्रभावोत्पादकता के साथ खड़ा किया है। इन गुणों में एक विशिष्ट गुण राम का लोकाराधक होना है। श्रीरामचन्द्र जी में प्रजा को हर तरह से प्रसन्न रखने का गुण भी बड़ा आदर्श था। वे अपनी प्रजा का पुत्र से भी बढ़कर वात्सल्य प्रेम से पालन करते थे। सदा-सर्वदा उनके हित में रत रहते थे। यही कारण था कि अयोध्यावासियों का उन पर अद्भुत प्रेम था। भगवान राम लोकप्रतिष्ठित मर्यादा की सुरक्षा में समग्र जीवन को समर्पित करने के कारण 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहलाए। राम की अदम्य लोकाराधन-भावना भवभूति के काव्य में दृष्टिगोचर होती है। राम वह आदर्श राजा है, जिनका प्रजानुरंजन ही एकमात्र महान व्रत है। प्रजा के सुख के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हैं। लोकानुरंजन के लिए राम अपनी प्राणप्रिया प्रेयसी पत्नी सीता का भी त्याग कर देते हैं-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[9]

राजा के लिए अपनी कीर्ति से बढ़कर कोई सम्पदा नहीं होती। अकीर्ति से बड़ा कोई दुःख नहीं होता। अपनी कुलकीर्ति के विस्तार के मार्ग में बाधकभूत बड़े से बड़े स्नेह-सम्बन्धों की भी बलि दी जा सकती है। इस कीर्ति का अपरिहार्य सम्बन्ध प्रजा या लोक के अनुरंजन से है, उसे शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से परितुष्ट रखने से है। उत्तररामचरित के प्रथम अंक में रामचंद्र जी का कथन है, कि किसी भी प्रकार से लोकाराधन करना श्रेष्ठ व्यक्तियों का कर्त्तव्य है। पिताजी ने मुझे और प्राणों को छोड़ते हुए इसी बात को सिद्ध किया हैं। वन जाने की आज्ञा देने में पूज्य पिताजी को अपने प्राण त्यागने पड़े। मैं भी प्राणप्रण से उनके समान ही प्रजा का अनुरञ्जन करूँगा-

सतां केनापि कार्येण, लोकस्याराधनं व्रतम्। तत्प्रतीतं हि तातेन, मां च प्राणांश्च मुञ्चता।।[10]

सकरुण होकर भी राम लोकरञ्जन के लिए ही शम्बूक पर प्रहार में हिचकते हुए दाहिने हाथ को कोसते हैं- 'रे दक्षिण हस्त ! ब्राह्मण-बालक को जलाने के लिए शूद्र मुनि पर तलवार का प्रहार कर। इस विषय में हिचक क्यों करता है? अरे ! तू तो परिपूर्ण गर्भ से खिन्न प्रियतमा सीता का परित्याग करने में पटु राम का हाथ है। अतः तुझमें करुणा कहाँ से आयी? निर्दय व्यक्ति का अङ्ग होने के कारण तू भी करुणाहीन होकर 'शूद्र तापस' पर प्रहार कर। राम के इस कथन में उनकी आत्मग्लानि स्पष्ट है। सीता-निर्वासन राम की उस अप्रतिम सहिष्णुता, त्यागशीलता, विशालहृदयता एवं धर्मपरायणता का द्योतक है, जो केवल राम में ही हैं; अतः इस परिप्रेक्ष्य में, सीता का त्याग राम के पुरुषोत्तमत्व का ही संपोषक एवं उसकी अतुलनीयता का ही उज्ज्वल चरण है। राम के लिए आरम्भ में वसिष्ठ का 'युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्याः' (1/21) आदेश राम के द्वारा बड़े तर्कवितर्क और मन को दबाकर पालन किया जाता है, किन्तु अन्त में **'नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वां धर्मचारिणीम्। हिरण्मय्याः प्रति—तेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे।'** जैसा अरुन्धती का मङ्गलमय आदेश बड़े उल्लास से स्वीकार किया जाता है । कर्तव्यपरायणता का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है, जहाँ अष्टावक्र राम के प्रति वसिष्ठ मुनि का सन्देश सुनाते हुए कहते है कि- हम यहाँ जामाता के यज्ञ के कारण रुक गये हैं, तुम अब तक बालक ही हो तथा राज्य भी नवीन ही है। (इस प्रकार बहुत से विघ्न हो सकते हैं) अतः तुम प्रजा का अनुरञ्जन करने में सावधान रहना। (इस भाँति प्रजानुरञ्जन से) जो यश फैलेगा वही तुम लोगों परम धन होगा।

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा-स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-स्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।।[11]

भगवान राम गुरु के उपदेश को शिरोधार्य करते हुए कहते है, कि प्रजानुरंजन के लिए मैं प्राणप्रिया जानकी को छोड़ने तक में समर्थ हूँ। यह कथन गुरु की आज्ञा को बिना विचारे पालन करना तथा गुरु के प्रति द्रढ़ भक्ति और निष्ठा का सूचक है। इस प्रकार भवभूति की रचनाओं में अनेक प्रसंगों के द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम का प्रजानुरंजन तथा कर्तव्यपरायणता द्योतित हुई है।

करुणा

प्राणीमात्र के प्रति करुणा तथा संवेदना एक विशिष्ट मानवीय मूल्य है जिसको महाकवि ने अपनी रचनाओं में यथोचित स्थान दिया है। भवभूति करुण रस के प्रधान कवि है। संस्कृत नाटकों की परम्परा के अनुसार नाटक में शृंगार और वीर रस ही मुख्य होना चाहिए, किन्तु भवभूति ने इस परम्परा से पृथक् करुणरस प्रधान नाटक लिखकर करुणा को मुख्य स्थान दिया है। भवभूति के राम की अन्तर्वेदना ही करुण रस का पृष्ठाधार है। भवभूति भावुक हृदय की तीव्रतम अनुभूतियों एवं संवेगों के विशिष्ट कवि है। छायांक अंक में

कवि ने चमत्कार दिखलाया है। एक ओर राम अपने वनवास के प्रियमित्र पंचवटी के परिचित स्थानों को देखकर सीता के लिये विलाप करते-करते मूर्छित हो जाते हैं, दूसरी ओर छाया सीता राम के इस प्रेममय स्मरण के कारण अपने वनवास के कठिन दुःखों को भी लात मारकर अपने जीवन को धन्य समझती हैं। राम इस छाया-सीता के स्पर्श का अनुभव तो अवश्य करते हैं, परन्तु आँखों से देख नहीं पाते। यहाँ कवि ने खूब ही 'काव्य-न्याय' दिखलाया है।

तृतीयांक में राम के वेदनापरक प्रणयोद्गार सीता हरण के बाद के प्रसङ्ग में प्रकट होते हैं। श्रीराम परम वीर, धीर और सहिष्णु होते हुए भी उस समय एक साधारण विरहोन्मत्त पागल की भाँति पशु-पक्षी, वृक्ष-लता और पर्वतों से सीता जी का पता पूछते है और नाना प्रकार के विलाप करते हुए एक वन से दूसरे वन में भटकते फिरते हैं। कहीं-कहीं तो शोक से विह्वल और मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं, एवं 'हा सीते! हा सीते! पुकार उठते हैं। उस समय का वर्णन बड़ा ही करुणापूर्ण और हृदयविदारक है। सीता के विरह में ज़ब राम रोते है, तो पत्थर भी रोने लगते है, वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है-

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना, तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरित-रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।[12]

करुण रस की इसी पराकाष्ठा को लक्ष्य कर कोई अन्य कवि ऐसा चमत्कार उत्पन्न नहीं कर सका।

शील

शील जीवन-वाटिका का सबसे रसीला और दुर्लभ फल, धर्म का सार-सर्वस्व, व्यवहार का बेजोड़ वरदान, वाणी का अनमोल बोल, जो सत्य को पूर्णता प्रदान करता है, कहा भी है- शीलं परं भूषणम्। भगवान राम शील और सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। श्रीराम शील की अनुपम निधि हैं। विनम्रता उनके स्वभाव में है। उत्तररामचरित और महावीरचरित में राम का उदात्त व्यक्तित्व पदे पदे परिलक्षित है। कंचुकी रामचंद्र जी को बाल्यकाल से ही रामभद्र बुलाते है, राज्याभिषेक होने पर 'रामभद्र' बुलाने पर सहसा शंकित होकर 'महाराज' से सम्बोधित करते है। रामजी की विनम्रता देखिए- मुस्कराहट के साथ कहते है आर्य! पूज्य पिताजी के सेवक (वयोवृद्ध) आपका मेरे लिये 'रामभद्र' यह सम्बोधन करना ही अच्छा लगता है, 'महाराज' कहना नहीं। अतः अभ्यस्त 'रामभद्र' ही कहिए -**''आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य, तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।''** (उत्तररामचरितम्, तृतीयांक)। इसके अतिरिक्त महाकवि ने मालती और माधव का गंभीर और शीलवान चरित्र अंकित किया है। सीता जी आदर्श पतिव्रता, शील, सदाचार आदि गुणों से सम्पन्न, पावन साध्वी नारी के रूप में वर्णित है। सीता अलौकिक धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं। राम द्वारा लोकाराधन हेतु किया गया निर्दोष सीता का परित्याग सीता के लिए अत्यन्त असह्य है, क्योंकि जनापवाद के कारण अपमानित करके निर्वासित कर देना सीता के पातिव्रत्य को ही अपमानित करना है। ऐसी विकट परिस्थिति में भी वह धैर्य पूर्वक जीवन को धारण करती है, पूर्णगर्भा सीता गंगा के जल प्रवाह में दो सन्तानों को जन्म देकर रघुकुल की धरोहर की रक्षा का दायित्व निभाकर धैर्य एवं संयम का परिचय देती है, वही दूसरी ओर श्रीराम का एक पत्नीव्रत भी बड़ा ही आदर्शपूर्ण है। श्रीराम ने स्वप्न में भी कभी जानकी जी के सिवा दूसरी स्त्री का वरण नहीं किया। सीता को वनवास देने के बाद यज्ञ में स्त्री की आवश्यकता होने पर भी उन्होंने सहधर्मचारिणी के रूप में सीता की ही स्वर्णमयी मूर्ति से काम चलाया। यदि वे चाहते तो कम-से-कम उस समय तो दूसरा विवाह कर ही सकते थे। उससे संसार में भी उनकी कोई अपकीर्ति नहीं होती। परंतु भगवान् तो मर्यादा पुरुषोत्तम ठहरे। उनको तो यह

बात चरितार्थ करके दिखानी थी कि जिस प्रकार स्त्री के लिये पातिव्रत्य का विधान है, उसी तरह पुरुष के लिये भी एकपत्नीव्रत परमावश्यक है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भोग भोगने के लिये नहीं, अपितु धर्माचरण के लिये है।

भवभूति की रचनाओं में जीवन के मूल्य गहराई से प्रतिष्ठित हैं, जो हमें धार्मिकता, नैतिकता, और मानवीयता के महत्व को समझने में मदद करते हैं। 'उत्तररामचरित' नाटक में भवभूति ने भगवान राम के धर्मपरायण चरित्र को दर्शाया है। राम के चरित वर्णन में न्याय, धर्म, और नैतिकता के मूल्यों का प्रतिष्ठापन किया गया है। इसमें उन्होंने वचनबद्धता, प्रेम, और अपराध के प्रति क्षमा जैसे महत्वपूर्ण मूल्यों को भी दिखाया है। ''मालतीमाधव" में भवभूति ने प्रेम और समर्पण के मूल्यों को व्यक्त किया है। माधव और मालती जैसे पात्रों के माध्यम से उन्होंने प्रेम की अद्वितीयता, विश्वास और समर्पण को दिखाया है। इससे हमें प्रेम के महत्व का अनुभव होता है कि प्रेम और समर्पण के बिना जीवन असंभव होता है। भवभूति वास्तववादी ही नहीं, मानवतावादी कवि हैं; इसीलिए वे राम या सीता के दैवीय कार्यकलापों का न केवल मानवीय आदर्शों से संस्कार करते हैं, प्रत्युत् उन्हें मानव के कर्मसंकुल जीवन के उद्वेग, संघर्ष एवं आशा-निराशा के लोकसुलभ यथार्थवादी स्वर प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त महाकवि की रचनाओं में चन्द्रकेतु (वीरता) सुमन्त्र (वात्सल्य, स्वामीभक्ति) आदि के चरितवर्णन में यथाप्रसंग अनेक मानवीय मूल्य (गुण) प्रसृत हैं। मानवेतर पात्रों- जैसे वासन्ती, तमसा, भागीरथी, वसुन्धरा आदि की सर्जना हुई है, उन पात्रों का लक्ष्य भी मानवीय मूल्यों की ही स्थापना है; वे दिव्य होकर भी लौकिक जीवन की सिद्धि एवं प्रकर्ष के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

सन्दर्भ -

1. *हितोपदेश, मित्रलाभ प्रस्ताविका- 25*
2. *उत्तररामचरित- 6/12*
3. *उत्तररामचरित- 6/5*
4. *उत्तररामचरित- 3/17*
5. *उत्तररामचरित- 1/39*
6. *मालतीमाधव- 6/18*
7. *उत्तररामचरित- 1/38*
8. *भवभूति और उनकी नाट्यकला, पृ. 211*
9. *उत्तररामचरित- 1/12*
10. *उत्तररामचरित- 1/48*
11. *उत्तररामचरित- 1/11*
12. *उत्तररामचरित- 1/28*

33

शिष्टाचार पद्धति के प्रणेता

रामहेत गौतम

भारतीय समाज अनुकरण से चलता है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक आदर्श होता है। वह उसके जैसा बनना चाहता है। क्षेत्र, भाषा, रंग, रूप, कद, शारीरिक बनावट, लिंग, वर्ण, जाति, पंथ, धर्म तथा कर्म के हिसाब से आदर्श निर्धारित कर लिए जाते हैं। स्वाध्याय और तप में निरत वाल्मीकि मुनि भी एक आदर्श व्यक्तित्व खोजने के क्रम में नारद से पूछते हैं कि-

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्। धर्मज्ञश्च—कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो–दृढव्रतः।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः। विद्वान्कः कः समर्थश्चकश्चौकप्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः। कस्यबिभ्यतिदेवाश्चजातरोषस्य संयुगे।।[1]

आचार्य मम्मट भी काव्यप्रयोजनों में से व्यवहारविदे की वृत्ति में कहते हैं कि रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवदित्युपदेशः।[2] इस प्रकार हम समझ पाते हैं कि कोई भी रचनाकार केवल ग्रन्थ नहीं लिखता, वह समाज को लिखता है। जिसे पढ़कर, सुनकर अथवा देखकर सामाजिक अपने जीवन की दशा और दिशा निर्धारित करता है। महाकवि भवभूति के ग्रन्थ भी इसी तरह के हैं। इनमें भवभूति समय के समाज के लिए आदर्श व्यक्तित्व हैं जो उस समय के सामाजिक चरित्र को निर्मित कर रहे थे और आज भी उसी भाँति प्रासंगिक हैं। अतः मैंने उनकी इन रचनाओं को अपने शोध का विषय बनाया है। प्रमुख घटनाओं के वर्णन व उनकी प्रासंगिकता पर विमर्श करते हुए अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने विषयक उद्यम आरम्भ करते हुए मैं सबसे पहले परशुराम के कुपित होने पर राम के द्वारा अपने विचार अभिव्यक्ति का प्रसंग लेता हूँ। इस प्रसंग में राम कहते हैं कि-

नन्वेत एव शिष्टाचारपद्धतेः प्रणेतारः। तत्कथमयं विद्वान्प्रमाद्यति।[3]

अर्थात् यही लोग तो शिष्टाचार पद्धति के निर्माता हैं, फिर वे विद्वान् होकर क्यों गलती कर रहे हैं।

राम का यह कथन स्वयंवर के अवसर पर परशुराम द्वारा क्रुद्ध होकर विघ्न उत्पन्न करने के अवसर का है। आज के सन्दर्भों में देखा जाये तो भावनात्मक रूप से शीघ्रता से आहत होने वाले लोग सबकुछ तहस-नहस करने पर उतारू हो जाते हैं। इस अवसर पर समझदारी से काम लेने की जरूरत होती है।
महावीर चरितम् में राम कहते हैं कि - **किमेकदेशेन महाज्ञाननिधेर्माहात्म्यमपहियते।**[4] अधूरी बात कहकर किसी का चारित्रिक हनन क्यों किया जाता है। महाकवि भवभूति राम के मुख से यह कहलवा कर अवगत कराना

चाहते हैं कि किसी के वारे में बोला गया अधूरा सच समाज को भ्रमित करता है। लोगों को इससे बचना चाहिए। अन्यथा समाज में विद्वेष फैलता है। जो कि किसी के भी हित में नहीं है।

भारतीय समाज में शिक्षा का गौरव हमेशा रहा है। शिक्षित प्रज्ञावान् होते हैं तथा वाणी भी उनके अधीन होती है। उत्तररामचरितम् 1.2 में सूत्रधार कहता है कि-

यं ब्रह्माणामियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।।

अर्थात् अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह षट्कर्म में निरत जिस (भवभूति) को यह प्रसिद्ध वाग्देवता अधीनता-सी अनुसरण करती है, उसके द्वारा रचे हुए उत्तररामचरित नाटक का अभिनय किया जायेगा।

यहाँ पर वाणी को विद्वान् की अनुगामिनी कहा गया है। यह सत्य भी है। अतः विद्वान् सामाजिकों को शिक्षित होने पर जोर देते हैं। बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर कहते हैं कि शिक्षा शेरनी का दूध है जो पियेगा वही दहाड़ेगा। सावित्री बाई फुले ने शिक्षा के अभाव को गुलामी का एक कारण माना है तथा शिक्षा से वंचितों को शिक्षित करने पर जोर देते हुए कहती हैं कि

एकच शत्रु असेआपला, काढूपिटूनमिळुनितयाला।
सांगतेपहा दृष्ट शत्रुचे, नाव नीट रे ऐकतयाचे।।

अज्ञान-

बदलते समाज को समझना व समाज को सही दिशा देना मनीषियों का प्राथमिक कार्य रहा है। उसके लिए उन्हें समाज के रूढ़िवादियों का विरोध भी सहन करना पड़ा लेकिन पीछे नहीं हटे।

सूत्रधार के द्वारा भवभूति का कथन प्रस्तुत किया जाता है कि- जो कोई हमारी(भवभूति की) इस कृति(मालतीमाधवम्) की अवज्ञा (अवहेलना) करते हैं उन अल्पज्ञों के लिए यह उद्यम नहीं है।, वल्कि एक समय ऐसा भी आयेगा जब मेरे जैसा कोई विद्वान् पैदा होगा। उन्हीं के लिए है यह। यहि कोई कहे कि जो जन्मा नहीं तो उसका जन्म कैसे? अथवा जो पैदा ही नहीं हुआ वह उपलब्ध कैसे हो सकता है? तो कहना है कि काल की इयत्ता(सीमा) नहीं है, कभी हमारे जैसे विद्वान् के पैदा होने की संभावना है। अधिक क्या कहें- दुनिया गहरी है, अतः जिसका न होना हमें प्रतीत होता है वह कहीं हो भी सकता है।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां, जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेस्ति मम तु कोपि समानधर्मा, कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।।[5]

इससे ज्ञात होता है कि मानवीय विकास के साथ बदलते सामाजिक परिवेश के अनुकूल वैचारिक बदलाव लाना और उसे स्वीकार करना विद्वानों का साहसिक कार्य है। बदलाव विरोध तो सहता ही है लेकिन समय के साथ स्वीकार्य भी होता जाता है। अतः मनीषियों को लोकहित में अपनी लेखनी जारी रखनी चाहिए।

महाकवि भवभूति का व्यक्तित्व क्रान्तिकारी, प्रगामी और नई चेतना की दृष्टि से समन्वित रहा है। भवभूति ने करुण रस को प्रधान बनाकर नवीनता की स्वीकार्यता को स्थापित किया है। परम्पराओं से असहमति के स्वर के बीज भवभूति की रचनाओं में दृष्टिगत होते हैं।

भवभूति के समय में भी सामाजिकों के मध्य मतभेद रहते थे। जिन्हें दूर कर सामाजिक एकीकरण के उद्यम मनीषियों द्वारा किये जाते रहते होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। भवभूति अपने नाटक में रघुवंशियों और मैथिलों के मध्य रिश्तेदारी कराने का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

एताश्चतुर्भ्यो रघुनन्दनेभ्यो निर्ममे गृहेराजसुताश्चतस्नः।
वशिष्ठवद्गौतमवच्चभूत्वादत्ताः प्रतीष्टाश्चसमं मयैव।।[6]

अर्थात् जनक के घर में विद्यमान चारों कन्याएं, रघुनन्दन चतुष्टय के लिए हैं। ये गौतम बनकर दी तथा वशिष्ठ बनकर लीं हैं। ये दोनों कार्य हमने एक साथ ही किये हैं।

इसलिए सभी ब्रह्मर्षियों को आमन्त्रित कर दशरथ जी के साथ मिथिला पधारें, राजा के यज्ञ के समाप्त होते ही कुमारों का गोदान करके विवाह सम्पन्न करा दिया जायेगा।

इस संवाद के माध्यम से भवभूति के समय की राजनैतिक अस्थिरता के दौर में कान्यकुब्जेश्वर (भवभूति के आश्रयदाता) का कश्मीर नरेश ललितादित्य से पराजय की स्थिति में संघर्षरत मगध व कोशल के आपसी संघर्ष को समाप्त करने का संकेत देकर राष्ट्र के एकीकरण में अपनी भूमिका निभाई हो ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इस उदाहरण से यह भी संदेश प्राप्त हो जाता है कि समाज व राष्ट्र को आपसी संघर्ष से बचाने में विद्वानों को अपनी सूझबूझ का प्रयोग करना ही चाहिये। लोकहित बुद्धिमानों का दायित्व है। अतः उत्तररामचरितम् में अष्टावक्र जी के मुख से भवभूति जी कहलवाते हैं कि

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जनेस्यास्तस्माद्यशोयत्परमं धनं वः।।[7]

अर्थात् हम जमाता के यज्ञ के निमित्त रुके हुए हैं। नयी-नयी राज्य व्यवस्था है और तुम बालक हो। अतः परामर्श है कि प्रजा के हित में लग जाओ यही आप लोगों(शासकों) का उत्कृष्ट धन है।

सामाजिक दबाव जीवन की एक सच्चाई है। इससे बचने आसान नहीं है। इसके साथ ही हमें अपना जीवन जीना होता है। इसको व्यक्त करते हुए भवभूति लिखते हैं कि-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वाजानकीमपि। आराधनायलोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[8]

अर्थात् प्रजा के अनुरञ्जन के लिए प्रेम, दया, सुख अथवा सीता को भी छोड़ते हुए मुझे कोई पीड़ा नहीं है। यह विद्रोही स्वर लोकदबाव में निष्प्रभावी होकर रह गया है। शम्बूक पर तलवार उठाते समय भी कवि का यह स्वर फूट पड़ता है।

रे हस्त दक्षिणा मृतस्य शिक्षोर्द्विजस्य, जीवातवे विसृज शूद्रामुनौ—पाणाम्।
रामस्यगात्रमसिनिर्भरगर्भखिन्न-सीता विवासनपटोः करुणा कुतस्ते।।[9]

अर्थात् हे हाथ! तू मृत ब्राह्मण बालक को जीवित करने के लिए शूद्रमुनि पर तलवार उठा। अरे तू तो गर्भकाल की अन्तिम अवस्था वाली सीता का परित्याग करने में निष्ठुर राम का अंग है तुझे दया कैसी?

इस विवरण के विमर्श से स्पष्ट होता है कि सामाजिक दबाव को सह सकना आसान काम नहीं है। न चाहते हुए भी अनीति घटित हो जाती है। कवि इस प्रसंग से भावी समाज को अवगत कराते हैं। आज का समाज भी ऐसे जीवनानुभवों से दो-चार होता रहता है। सामाजिकों को चाहिए कि अपने नेताओं को ऐसी दुविधा में न डाले। आज स्त्रीविमर्श व दलित विमर्श के दौर में राम को कठघरे में खड़ा किया जाता है। अतः बुद्धिजीवियों को चाहिए कि वे विना किसी भेद के एक मानवमात्र होकर मानवमात्र के बारे में सोचकर निर्णय लें तभी ऐसे प्रश्नों से बचा जा सकता है। सामाजिकों के मध्य पनपती ईर्ष्या-द्वेष आदि को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए महाकवि भवभूति लिखते हैं कि-

आर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि न फलप्राप्तिः प्रभोः प्रत्युत
द्रुह्यन्दाशरथिविरुद्धचरितोयुक्तस्तथा कन्यया।
उत्कर्ष च परस्यमानयशसोर्विस्रंसनंचात्मनः
स्त्रीरत्नं च जगत्पतिर्दशमुखोदृप्तः कथं मृष्यते।।[10]

याचना करने से भी कुछ न हुआ, प्रत्युत शत्रु राम को वह कन्या (सीता) दे दी गई। दूसरे का उत्कर्ष, अपने मान-यश का ह्रास और स्त्रीरत्न की उपेक्षा रावण कैसे कर सकता है।

रावण के इस कथन के द्वारा सामाजिकों की एक स्वाभाविक मनोवृत्ति को उद्घाटित किया गया है। समाज में आपसी द्वेष का कारण ईर्ष्या, हानि, तिरस्कार आदि हैं।

ऐसी मनोवृत्ति आपसी संघर्ष का कारण बनता है, इस संघर्ष में स्त्रियाँ पिसती हैं। राम-रावण के मध्य हुए संघर्ष में शूर्पणखा, मंदोदरी, सुलोचना, सीता, कैकेयी आदि स्त्रियों को अनायास ही तिरस्कृत व अपमानित होना पड़ा। भवभूति लिखते हैं कि लोकापवाद अच्छी खासी जिन्दगी बर्बाद कर देता है, और यह सब सामाजिकों में शिक्षा का अभाव के कारण होता है। लोकापवाद से व्यथित होकर राम कह उठते हैं कि-

इक्ष्वाकुवंशोभिमतः प्रजानां जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्धयति दूरवृत्तम्।।[11]

इक्ष्वाकुवंश प्रजाओं का प्रिय है, किन्तु दुर्भाग्य से लोकापवाद के कारण परग्रहवास उत्पन्न हो गया। शुद्धिकाल में जो विचित्र घटा उसे कौन जानता है। वह तो बहुत दूर घटा। समाज बिना विवेक किये सुनी-सुनाई बातों को चर्चा का विषय बना लेता है। यह समाज का एक अंधकार युक्त पहलू है। इसका कारण अशिक्षा व तर्कशक्ति का अभाव है। शिक्षा के प्रसार व लोकों को तार्किक बनाकर ही इस अंधेरे को कम किया जा सकता है। समझदार व्यक्ति अपनी गलती स्वीकार कर ले तो पीड़ा कम हो जाती है साथ ही रिश्तों में पुनः मधुरता लौट आती है। भवभूति के राम ने ऐसा ही किया है-

कष्टंजनः कुलधनैरनुरञ्जनीयस्तन्नोयदुक्तमशिवं न हितत्क्षमंते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।।[12]

कुलधन (यश) वालों के द्वारा जनता को भी खुश करना ही पड़ता है। यह खेद की बात है कि मेरे द्वारा बोली गई अनुचित बात निश्चय ही तुम्हारे योग्य नहीं है। क्योंकि सुगन्धित पुष्प का शिरोधार्य हो स्वाभाविक है लेकिन चरणों में रोंदा जाय यह स्वाभाविक नहीं है।

सामाजिकों के मध्य कितनी भी तनातनी क्यों न हो उसे भी अपनी बात रखने के तरीके को सभ्य व सौम्य बनाये रखे रहने पर सामने वाला कुपित व्यक्ति का क्रोध धीरे-धीरे कम होकर कुछ विचार करने पर बाध्य कर देता है। जब वह विचार करता है तो सत्य को स्वीकार करता ही है। यदि आप सत्य हुए तो आपको भी स्वीकार कर लेता है, यह यथार्थ राम और परशुराम के संवाद के माध्यम से महाकवि भवभूति ने व्यक्ति किया है-

राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशीं समुद्वहन्।
अप्रतर्क्यगुणरामणीयकः सर्वथैवहृदयंगमोसिमे।।[13]

अर्थात् हे राम जितनी सुन्दर सूरत है उतना ही सुन्दर तुम्हारा हृदय भी है। तुम्हारे गुणरमणीयता भी तर्क से परे होने से हमारे हृदय में बस गये हैं। जामदग्न्य का राम के प्रति यह वचन आज के समाज में भी

प्रासंगिक है। इससे व्यवहार ज्ञान प्राप्त होता है। अगर हमारी वाणी सुन्दर नहीं है तो सूरत सुन्दर है तो हम समाज के किसी भी काम के नहीं हैं।

उत्पत्तिर्देवयजना–ब्रह्मवादीनृपः पिता। सुप्रसन्नोज्ज्वलामूर्तिरस्यां स्नेहं करोति मे।।[14]

अर्थात् सुन्दर मूर्ति, ब्रह्मज्ञानी राजा पिता, यज्ञभूमि से उत्पत्ति, यह सब मुझे इस पर स्नेह करने को प्रेरित कर रहा है। यह प्रसंग नायक व नायिकाओं की अलौकिकता को सूचित करता है। समाज में जो भी उत्कृष्ट व अनुकरणी व्यक्ति हुआ उसे जनसामान्य भिन्न, उत्कृष्ट व्यक्त करने के लिए उनकी उत्पत्ति भी जनसामान्य से भिन्न ही वर्णित की जाती रही है। महाकवि भवभूति ने भी उस परम्परा का निर्वहन किया है। भवभूति के समय में स्त्रियों के प्रति बदलते दृष्टिकोण को निम्नलिखित संवाद में महसूस किया जा सकता है-

रामः – जानासि वत्स दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिंयावत्?

लक्ष्मणः – यावदार्यायाहुताशने विशुद्धिः।

रामः – शान्तं पापम्।

उत्पत्तिपरिपूतायाःकिमस्याःपावनान्तरैः। तीर्थोदकं च वह्निञ्चनान्यतःशुद्धिमर्हतः।।

देवि! देवयजनसंभवे, प्रसीद। एष ते जीवितावधिःप्रवादः।

कष्टंजनः कुलधनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं न हितत्क्षमंते।

नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।।[15]

इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि भवभूति के समय में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा था। सीता के चरित पर अविश्वास एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में स्थापित हो चुके राम के नायकत्व को दुष्प्रभावित कर रहा था। अतः भवभूति ने अपने नायक के मुख से अपनी गलती स्वीकार करवाकर पश्चाताप करवाकर कहलवाया है कि स्त्री शिरोधार्य होती है पैर की जूती नहीं। यह भवभूति के द्वारा एक बड़ा सामाजिक संदेश है, जो आज के समाज को स्त्री के गौरव बनाये रखने में मदद करता है। आज का स्त्रीवादी विमर्श इससे पुष्ट होता है। जाने पुनरपिप्रसन्न गम्भीरासुवनराजिषु विहरिष्यामि- सीता के मुख से तथा वत्स अचिरंसंपादनी- योस्यादोहद इति--राम के मुख से कहलवाकर भवभूति ने अपने नायक के व्यक्तित्व की रक्षा की है।

भवभूति मैत्री को वर्णित करते हुए लिखते हैं -

प्रियस्य सुहृदोयत्रममतत्रैवसम्भवः। भूयादमुष्यभूयोपि भूयासममुसञ्चरः।।[16] मकरन्द विलाप करते हुए कहता है कि- प्रिय मित्र माधव का जहाँ जन्म हो मेरा भी जन्म वहाँ हो और मैं परलोक में भी उसका अनुचर रहूँ। यहाँ मैत्री भाव का चरम चित्रित है। यह भाव समाज को एकजुट रखने के लिए अत्यावश्यक है।

वन्द्यात्वमेव जगतः स्पृहणीयसिद्धिरेवंविधैर्विलसितैरतिबोधसत्त्वैः।[17] अर्थात् जीमूतवाहन आदि बुद्धविशेष को भी अतिक्रान्त करने वाले अपने व्यापारों से श्लाघनीय सिद्धियों वाली तुम्हीं इस लोक की वन्दनीया हो। सौदामिनी के प्रति कामन्दकी का यह कथन उस समय के समाज में स्त्रियों की स्थिति का सूचक है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय महायानी बौद्ध पंथ में भिक्खुणियों का सम्मानजनक स्थान था।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि महाकवि भवभूति अपने पात्रों को सामाजिकों का मार्गदर्शन करने वाले आदर्श के रूप में स्थापित करते हैं। आदर्श रूप में स्थापित हो चुके लोगों को अपने व्यक्ति को सर्वस्वीकार्य बनाये रखना चाहिए। उन्हें भेदबुद्धि से विरत रहते हुए विवेकी मानवमात्र होकर रहना चाहिए, क्योंकि वे शिष्टाचार पद्धति के प्रणेता हो चुके होते हैं।

सन्दर्भ -

1 वाल्मीकीयरामायणम्- 1.2-4

2 काव्यप्रकाश प्रथमोल्लास-2

3 महावीरचरितम्- 2.20 के बाद राम का कथन।

4 महावीरचरितम् 2.19 से पूर्व राम का कथन।

5 मालतीमाधवम् -1.8

6 महावीरचरितम् -1.58

7 उत्तररामचरितम् -1.11

8 उत्तररामचरितम् - 1.12

9 उत्तररामचरितम् - 2.10

10 महावीरचरितम् -2.9

11 उत्तररामचरितम् - 1.44

12 उत्तररामचरितम् -1.14

13 महावीरचरितम् - 2.37

14 महावीरचरितम् -1.29

15 उत्तररामचरिते 1.13-14

16 मालतीमाधवम्- 9.41

17 मालतीमाधवम् -10.21 पूर्वार्द्ध

34

प्राचीन भारतीय शिक्षा : भवभूति के विशेष सन्दर्भ में

पूनम यादव

सभ्यता, संस्कृति, समाज, देश की उन्नति और चिर पुरातन एवं नित्य नूतन समावेशी परम्परा के पार्श्व में शिक्षा की भूमिका को देखा जा सकता है। जिस स्थान और जिस काल में शिक्षित समाज के द्वारा अपने दायित्वों का सम्यक् निर्वहन किया गया, वह देश आदर्श एवं अनुकरणीय बना, साथ ही वह काल भी सदैवउल्लेखनीय रहा। 'शिक्षा' एक व्यापक अवधारणा सम्पन्न शब्द है, जिसमें बहुआयामी संदर्शों का विकास होता है, जिससे एक सम्पूर्ण मनुष्य की निर्मिति होती है, जो युग विशेष में 'रामवद्वर्तितव्यम्' के सदृश युगबोध का संवाहक बनता है। शिक्षा से मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के सभी पक्षों के श्रेयात्मक मार्ग की भूमिका का निर्धारण होता है, जो जीवन में कर्तव्यबोध, सुसंगत साधन एवं उद्देश्यों के क्रियान्वयन के रूप में प्रतिफलित होते हैं। इसी सन्दर्भ में तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षा वल्ली का यह अंश उल्लेखनीय है -

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।[1]

अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, आचार्य की आज्ञा से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो और सन्तान परम्परा का छेदन मत करो। सत्य, धर्म, कर्म, स्वाध्याय, प्रवचन, देवकार्य एवं पितृकार्य आदि से प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता, पिता एवं आचार्य के साथ देवता के समान आचरण करना चाहिए। लोक में जो अनिन्दित कार्य हैं, उन कार्यों को ही करना चाहिए, इनसे भिन्न कार्य (लोक में निन्दित) नहीं करने चाहिए। शिक्षा संभवतः जीवन को सुगमता से जीने के साथ-साथ परम्परा के संवहन में शृंखला का कार्य करती है, मनुष्य के क्रियाकलापों की सार्थकता का निर्धारण करती है, आने वाली पीढ़ी के लिए एक अनुकरणीय मार्ग प्रशस्त करती है। सम्पूर्ण सर्वांगीण, समदर्शी एवं संदर्शपूर्ण व्यक्तित्व शिक्षा का परिणाम है, जहाँ अध्यात्मिकता और भौतिकता एवं ज्ञान और क्रिया में समन्वय और समायोजन परिलक्षित होता है। ऐसी ही पृष्ठभूमि में भारतीय शिक्षा ने अनेक युग प्रवर्तक एवं आदर्श व्यक्तित्वों को जन्म दिया, जो लोक के द्वारा अनुवर्तनीय हैं, जिनकी समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है -

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।[2]

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष द्वारा आचरित आचरण एवं प्रमाणित प्रमाण का अन्य पुरुष भी उसी रूप में अनुसरण करते हैं। भारतीय शास्त्र एवं साहित्य में उल्लिखित शिक्षा का प्रयोजन उद्देश्यपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति है। वर्तमान समाज में व्याप्त विसंगतियों के कारण मनुष्य का मूल्यबोध अस्पष्ट सा परिलक्षित होता है। मनुष्य भौतिक सम्पन्नता को शिक्षा के प्रतिफल के रूप में देखने लगा है, जहाँ मनुष्य भौतिक रूप से तो सम्पन्न हो रहा है, किन्तु उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यबोधपरक संदर्श प्रभावित हो रहे हैं। व्यक्ति समाज अथवा समूह में न रहकर एकाकी जीवन को प्राथमिकता देने लगा है। जिस समाज में जिस प्रकार की शैक्षिक व्यवस्था होगी, वह उसी दिशा में अग्रसर होगा। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात् करने पर यह परिलक्षित होता है कि शिक्षा का सम्बन्ध निश्चित समयावधि में निश्चित ग्रन्थ अथवा निश्चित ग्रन्थ का एक भाग के रटने से है, सीमित समयावधि में आयोजित परीक्षा में उत्तीर्ण होने अथवा प्रथम स्थान प्राप्त करने से है, शिक्षा का उद्देश्य प्रायः आजीविका प्राप्ति, पुरस्कार प्राप्ति एवं भौतिक सम्पन्नता हो गया है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में प्रायः शिक्षकों में परस्पर उपेक्षा एवं स्पर्धा का भाव दृष्टिगत होता है, छात्रों में स्वगुरु के प्रति अश्रद्धा एवं उपेक्षा की भावना दृष्टिगत होती है, छात्र एवं शिक्षक दोनों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्य के प्रति अनुन्मुखता परिलक्षित होती है। अतः वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा शिक्षार्थी में रटने के स्थान पर स्वयं देखकर प्रयोग करने की प्रवृत्ति का विकास हो सके, जिज्ञासु प्रवृत्ति का विकास हो सके, सर्जनात्मकता का विकास हो सके, अध्ययन के प्रति उत्साहित हो सके, स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास हो सके, श्रवण, भाषण, पठन एवं लेखन कौशल का विकास हो सके, एक ही समस्या के विभिन्न प्रकार से समाधान कर सके, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध हो सके, विपरीत परिस्थितियों में भी कार्यकुशलता का विकास हो सके, कुशल नेतृत्त्व एवं स्वयं के निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो सके, सभी के प्रति समत्व की भावना, आध्यात्मिक चिन्तन, समाज एवं संस्कृति के प्रति सम्मान की भावना का विकास हो सके। महाकवि भवभूति विरचित नाटकों में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की उपर्युक्त समस्याओं के अपेक्षित समाधान देखे जा सकते हैं।

महाकवि भवभूति आठवीं शताब्दी के संस्कृत नाटककार हैं। इनके द्वारा स्वकृतियों (उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम् एवं मालतीमाधवम् आदि) में तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था(शिक्षण संस्थान, शिक्षण संस्थानों में परस्पर समन्वय, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, गुरु-शिष्य परम्परा एवं उनका पारस्परिक सम्बन्ध, शिक्षण संस्थान एवं समाज, स्त्री शिक्षा आदि) का विस्तृत उल्लेख किया गया है जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को समुचित दिशा प्रदान कर उसे सार्थक और समृद्ध बना सकती है।

भवभूति के रूपकों में उल्लिखित शिक्षा-

गुरु-शिष्य परम्परा-

भवभूति के अनुसार तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में गुरु विभिन्न प्रकार से शिक्षा प्राप्त कर अपने शिष्य को प्रदान करते थे, वे शिष्य वह शिक्षा अपने शिष्य को प्रदान करते थे। इस प्रकार तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में गुरु-शिष्य परम्परा विद्यमान थी। इनके द्वारा उतररामचरितम् में उल्लेख किया गया है कि कृशाश्व ऋषि ने अपने तपोबल से जृम्भक अस्त्र की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने यह शिक्षा अपने शिष्य विश्वामित्र को प्रदान की तथा विश्वामित्र ऋषि ने राम को यह शिक्षा प्रदान की। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा जनक को ब्रह्मविद्या, वाल्मीकि द्वारा लव-कुश को समग्र शास्त्रीय एवं व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की। भवभूति के अनुसार तत्कालीन

गुरु एवं शिष्य दोनों में परस्पर पिता-पुत्र के सदृश सम्बन्ध था अर्थात् गुरु अपने शिष्यों का स्वपुत्रों के समान संरक्षक एवं पालक होता था और शिष्य भी अपने गुरु को स्वपिता के सदृश प्रेम करते थे। उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक में कौसल्या द्वारा माता- पिता के विषय में प्रश्न करने पर लव अपने गुरु वाल्मीकि को ही अपना पिता बताते हैं-

कौसल्या- जात, अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम्?

लव - भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः।[3]

शिक्षण संस्थान - भवभूति के ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल में भारत में ऋषि-महर्षियों के आश्रम शिक्षण केन्द्र के रूप में कार्यरत थे। उत्तररामचरितम् नाटक में इनके द्वारा महर्षि अगस्त्य का आश्रम[4], महर्षि वाल्मीकि का आश्रम[5], भरतमुनि का आश्रम[6], आदि आश्रमों का उल्लेख किया गया है। उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी वहीं रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। वहां गुरु पिता के रूप में उनका संरक्षक होता था।

शिक्षण संस्थान में विद्यार्थी द्वारा अनुकरणीय नियम-

गुरुकुल में रहने एवं शिक्षा प्राप्ति हेतु ऋषि-महर्षियों द्वारा विभिन्न नियम निर्धारित किए गए थे, जो शिक्षार्थी के लिए आवश्यक रूप से अनुकरणीय थे। विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संयमित जीवन व्यतीत करते थे। उनके लिए जटा, मेखला, दण्ड, मृगचर्म आदि धारण करते थे।[7] इससे तत्कालीन छात्रों में त्याग, धैर्य, संतोष, दान, परस्पर प्रेम, सौहार्द, परिश्रम एवं संग्रह की अपेक्षा मूलभूत एवं सीमित संसाधनों में जीवन जीने की भावना का विकास होता था।

शिक्षण संस्थान में अनध्याय का दिवस-

आश्रम में एक दिवस ऐसा होता था, जिसमें अध्ययन-अध्यापन आदि कार्य नहीं किए जाते थे। इस सन्दर्भ में उत्तररामचरितम् में सौधातकि का दण्डायन(महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में शिष्य) के प्रति कथन है कि हम दोनों अन्य विद्यार्थियों के साथ मिलकर खेलते हुए अनध्याय अर्थात् अवकाश के महोत्सव को मनाएं- **आवामपि वटुभिः सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सवं खेलन्तो मानयावः।**[8] इससे विद्यार्थियों में समूह में प्रेम से रहने की भावना का विकास होता था। उत्तररामचरितम् के अनुसार इस दिन समस्त प्रजा के सामने किसी कृति का अभिनय भी किया जाता था। वह कृति आश्रमवासी ऋषि-मुनियों द्वारा समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने तथा समाज को नई दिशा प्रदान करने हेतु लिखी जाती थी। जैसा कि सप्तम अंक में वाल्मीकि की कृति का अप्सराओं द्वारा अभिनय किया गया, जिसकी रचना सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करने एवं राम का लव-कुश के साथ समागम कराने हेतु की गयी थी-

लक्ष्मणः- भोः, अद्य खलु भगवता वाल्मीकिना सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः प्रजाः सहास्माभिराहूय कृत्स्न एव सदेवासुरतिर्यङ्निकायः सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण संनिधापितः। आदिष्टश्चाहमार्येण- 'वत्स लक्ष्मण, भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्म। गङ्गातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियतां समाजसंनिवेशः' इति।[9]

पाठ्यक्रम-भवभूति के अनुसार तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत विशिष्ट पाठ्यक्रम का निर्धारण किया गया था। गुरु द्वारा विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इनके अनुसार विद्यार्थी के उपनयन संस्कार से पूर्व आन्वीक्षिकी(न्यायशास्त्र), वार्ता(अर्थशास्त्र) एवं दण्डनीति(राजनीतिशास्त्र) की शिक्षा दी जाती थी। तदनन्तर वेदत्रयी[10] (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद), उपवेद[11] (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद), वेदांग

(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त), मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग आदि दर्शन, ब्रह्मविद्या[12], रामायण[13], नाट्यकला (अभिनय), चित्रकला आदि का अध्ययन कराया जाता था।

शिक्षण पद्धति- भवभूति के अनुसार सभी छात्रों (तीव्र बुद्धि एवं मन्द बुद्धि) को समान रूप से शिक्षा प्रदान करते थे। इस सन्दर्भ में उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक में आत्रेयी का कथन है कि अति व्युत्पन्न बुद्धि वाले इन दोनों (लव-कुश) के साथ हम लोगों का पढ़ सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि गुरु व्युत्पन्न/विद्वान् शिष्य के समान ही मन्द बुद्धि शिष्य को विद्या देते हैं, वह उन दोनों शिष्यों के ज्ञान में न तो सामर्थ्य की वृद्धि करते हैं और न ही सामर्थ्य को नष्ट करते हैं, किन्तु विद्या के फल में बहुत अधिक अन्तर होता है, जैसे स्वच्छ मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होती है, मिट्टी आदि पदार्थ नहीं-

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।।[14]

स्त्री शिक्षा- भवभूति के अनुसार तत्कालीन स्त्रियाँ वेद और वेदान्त आदि दर्शनों का अध्ययन करती थी तथा ब्रह्मविद्या की उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक में वनदेवता द्वारा आत्रेयी के दण्डकारण्य में आने का प्रयोजन पूछने पर आत्रेयी का कथन है कि इस दण्डकारण्य में अगस्त्य आदि ब्रह्मवेता ऋषियों से वेदान्त विद्या का अध्ययन करने हेतु वाल्मीकि ऋषि के पास से आयी हूँ-

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।।[15]

प्राचीनकाल में अध्ययन में बाधा उपस्थित होने पर स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रवास भी करती थीं। द्वितीय अंक में वनदेवता द्वारा आत्रेयी से प्रवास का कारण पूछने पर आत्रेयी का कथन है कि मैं वाल्मीकि आश्रम में अध्ययनरत थी, किन्तु वहां अध्ययन में विघ्न उपस्थित हो गया है, अतः मैंने दीर्घ प्रवास स्वीकार किया है-

वनदेवता - यदा तावदन्येऽपि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते। तत्कोऽयमार्यायाः प्रवासः?

आत्रेयी - तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः।[16] भवभूतिकाल में स्त्रियों द्वारा नाट्यशास्त्र की शिक्षा भी प्राप्त की जाती थी उत्तररामचरितम् नाटक के चतुर्थ अंक में अप्सराओं द्वारा अभिनय किये जाने का उल्लेख किया गया है –

लवः - स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।[17] उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भारतीय शिक्षा के विषय में कहा जा सकता है कि प्राचीनकालीन भारत में शिक्षा को संस्कृति का अंग स्वीकार किया गया, ऋषियों द्वारा शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के बाह्य विकास की अपेक्षा आन्तरिक जगत् के सृजन एवं विकास में प्रवृत्ति माना गया। तात्कालिक शिक्षा जीवन में उपयोगी एवं अनुप्रयोगात्मक थी। शिक्षण हेतु ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता था, जिसके द्वारा जीवन को अनुशासित एवं मर्यादित किया जा सके। शिक्षण एवं शिक्षा प्राप्ति हेतु निश्चित समयावधि निर्धारित नहीं की गयी थी। यह सर्वांगीण विकास(सामाजिक, सांस्कृतिक, शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक व कौशल विकास) हेतु अनवरत रूप से चलने वाली प्रक्रिया थी। शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिकता और भौतिकता के मध्य समन्वय स्थापित करना था। शिक्षा कौशल विकास के माध्यम से सार्थक एवं समर्थ व्यक्तित्व का निर्माण करती है, जिससे लोक कल्याण में अपने सम्यक् संदर्श के

साथ मनुष्य अपनी भूमिका का निर्वाह कर सके, शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के सांस्कृतिक उत्कर्ष के साथ चेतना विकसित करना भी है, जिससे लोकानुवर्तनीय परंपरा का निर्वाह हो सके, शिक्षा मानसिक दृढ़ता प्रदान करती है, जिससे किसी भी समस्या अथवा चुनौती का सामना किया जा सके। आज के परिवेश में जहाँ जीवन मूल्यों का ह्रास होता दिख रहा है, सामाजिक एवं व्यावहारिक असंतुलन बढ़ रहा है, शिक्षा का उद्देश्य आजीविका तक रह गया है, मानव मशीन की तरह व्यवहार करने लगे हैं, मानवीय संवेदनाओं का अवमूल्यन हो रहा है, ऐसे में प्राचीन शिक्षा पद्धति को एक उचित विकल्प के रूप में देखा जा सकता है।

सन्दर्भ -

1. *तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/1-2*
2. *भगवद्गीता 3/21*
3. *उत्तररामचरितम्, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 316*
4. *वही, द्वितीय एवं तृतीय अंक*
5. *वही, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम अंक*
6. *वही, चतुर्थ अंक*
7. *पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः। उत्तररामचरितम् 4/20*
8. *वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 272*
9. *वही, सप्तम अंक, पृष्ठ 459*
10. *तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः। तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ। उत्तररामचरितम्, द्वितीय अंक, पृष्ठ 105*
    यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
    ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।। मालतीमाधवम्, 1/10
11. *इतराः 'आयुर्वेदो धनुर्वेदस्तथा गान्धर्वनामकः' इत्यथर्रूद्य वीरराघव कृत टीका, कपिलदेव द्विवेदी द्वारा उत्तररामचरितम् की भूमिका में उद्धृत*
12. *(उत्तररामचरितम्, 2/3)*
13. *अरुन्धती- आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।*
    जनकः - (विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद्ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किंनोयान्यान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि?
    लवः - नायं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः । उत्तररामचरितम्, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 319)
14. *वही, 2/4*
15. *वही, 2/3*
16. *वही, द्वितीय अंक, पृष्ठ 1/2*
17. *वही, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 320*

35

भवभूति के रूपकों का सूक्तिसौन्दर्य

नौनिहाल गौतम

महाकवि भवभूति नाट्यकर्ताओं की परम्परा में कालिदास के समकक्ष माने जाते हैं। संस्कृत की महनीय नाट्य परम्परा में उनके रूपकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन रूपकों की प्रसिद्धि और सौन्दर्य-वृद्धि में सूक्तियों की सार्थक भूमिका है। महाकवि ने स्वयं सुवचनों के महत्त्व को निरूपित किया है-

'म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।'[1]

महाकवि भवभूति के रूपकों में प्रेम का आदर्श रूप चित्रित किया गया है। तत्संबंधी सूक्तियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। दम्पती के प्रेम को निरूपित करने में भवभूति अग्रगण्य हैं। उनका मानना है कि दम्पती के बीच सुख-दुःख में और हर स्थिति में एकत्व बना रहता है। दाम्पत्य में हृदय को विश्राम मिलता है। बुढ़ापा भी दोनों के बीच की मधुरता को कम नहीं कर पाता। समय के साथ दोनों के बीच दुराव-छिपाव रहित विश्वास पनपता है। दाम्पत्य प्रेम के सार पर स्थित होता है। द्रष्टव्य-

'अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राथ्र्यते।।'[2]

एक प्रियजन कुछ न करता हुआ भी अपनी उपस्थिति के सुख से दूसरे के दुःखों को दूर कर देता है। वह कुछ अनिर्वचनीय द्रव्य हुआ करता है। (उत्तररामचरितम् 2.19) प्रेमियों का हृदय ही परस्पर के प्रेम की प्रगाढ़ता को जान सकता है। (उत्तररामचरितम् 6.32) प्रेमियों के लिए प्रियजन का विरह अत्यन्त दुःसह होता है। (उत्तररामचरितम् 1.38) प्रियजन के नष्ट होने पर तो उनके लिए सारा संसार सूना हो जाता है। (उत्तररामचरितम् 6.30) पारिवारिक जनों के परस्पर प्रेम को भी भवभूति चित्रित करते हैं। सन्तान के प्रति प्रेम अनुपम होता है। वे संतान को दम्पती की आनन्दग्रन्थि कहते हैं। (उत्तररामचरितम् 3.17) वे कहते हैं कि संतान स्नेह का प्रकर्ष है-'प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य'(उत्तररामचरितम् 3.17 के बाद) इनके अतिरिक्त सज्जनों के मूल्यों को निरूपित करने वाली सूक्तियाँ हैं। जैसे-सज्जनों से मेल पुण्य से ही हो पाता है-**'सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।'**[3]

लोक का आराधन सज्जनों का व्रत ही होता है-**'सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम् ।'**[4]

सत्सङ्ग से हो जाने वाली मृत्यु भी तारने वाली होती है-**'सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।'**[5]

गुणों की प्रतिष्ठा को महाकवि भवभूति स्वीकार करते हैं-**'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः'**[6] वे गुणी जनों को उच्च स्थान प्रदान करने की बात करते हैं-**'नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ।'**[7] इनके अतिरिक्त उत्तररामचरितम् में कर्तव्य पालन आदि से संबंधित सूक्तियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं।

मालतीमाधवम् में भवितव्यता(मालतीमाधवम्, 1.26), अकारणस्नेह (1.27), कुलजानुराग (पृ. 55), मन्मथविकार (2.4), प्रियस्मृतिगोचरता (5.25), बान्धवादिसमागमजनितसौख्य(8.14), आशातन्तु (9.26), अनुकार (पृ. 352), लाघ्यजनस्थिति (9.51), और भाग्य (मालतीमाधवम्,10.13) विषयक सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। मनोरथपूरक गुणों को निरूपित करते हुए महाकवि भवभूति कहते हैं कि शास्त्रों का अच्छा ज्ञान, स्वाभाविक बोध, वाणी में प्रगल्भता, अभ्यास से प्राप्त हुए माधुर्यादिगुणों से सम्पन्न वाणी, कार्यसम्पन्नता के लिए उचित अवसर का ज्ञान और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का होना- ये गुण लोगों के मनोरथपूर्ण करने वाले होते हैं। तद्यथा-

'शास्त्रे प्रतिष्ठा सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोधः प्रतिभानवत्त्वमेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु।।'[8]

भवभूति विरचित महावीरचरितम् में ब्रह्म-शक्ति का महत्त्व निरूपित किया गया है। कवि कहते हैं कि जिस राष्ट्र की रक्षा करने वाला विद्वान् ब्राह्मण पुरोहित हो वह राष्ट्र नष्ट नहीं होता है-

'न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोपः पुरोहितः।।'[9]

ब्रह्म और क्षत्र तेज के साथ का सत्प्रभाव-

'अमोघमस्त्रं क्षत्रस्य ब्राह्मणानामनुग्रहः।
दुरासदं च तत्तेजः क्षत्रं यद् ब्रह्मसंयुतम्।।'[10]

उत्सवों की सरसता की अनिवार्यता- 'नोत्सवाः परावधीरणावैरस्यमर्हन्ति। (पृ. 74), नृशंसता की निन्दा- 'नृशंसता हि नाम पुरुषदोषः। (पृ. 101), अप्राकृत तेज की प्रासंगिकता- 'प्राकृतानि तेजांस्यप्राकृते ज्योतिषि शाम्यन्ति। (पृ. 117), व्यसन- 'लघ्वपि व्यसनपदमभियुक्तस्य कृच्छ्रसाध्यं भवति। (पृ. 151), वृद्धजनों का दायित्व-गुरुभिरेव शिशवो धर्मलोपात्पालयितव्याः। (पृ. 191), और उनकी बुद्धि की प्रशंसा- 'वृद्धबुद्धिरनागतं पश्यति। (पृ. 244), स्मृतिलोप- 'विषयबाहुल्यं कालविप्रकर्षश्च स्मृतिं प्रमुष्णाति। (पृ. 199), लोकोत्तर जनों की स्थिरता- 'न खलु लोकोत्तरकर्माणस्त्वादृशाः कृच्छ्रेषु प्रमुह्यन्ति। (पृ. 208), पूज्यों का वचनपालन- 'को हि पूज्यस्य गुरोर्वचनं न बहु मन्यते?(पृ. 239), और अनुचर भाव की निन्दा- 'साचिव्यं नाम महते संतापाय। (पृ. 245) विषयक सूक्तियाँ महावीरचरितम् में प्राप्त होती हैं। इसी नाटक में मैत्रीव्रत को निरूपित करते हुए महाकवि कहते हैं-

'प्राणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहो व्याजवर्जनम्।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम्।।'[11]

महाकवि भवभूति के रूपकों में सर्वाधिक सूक्तियाँ उत्तररामचरितम् में प्राप्त होती हैं। इन रूपकों में विद्यमान सूक्तियों में मुख्य रूप से सात्विक प्रेम और आदर्श प्रस्तुत करने वाली सूक्तियाँ हैं। ये सूक्तियाँ महाकवि भवभूति की स्थापनाएँ हैं। इनमें भावों की गम्भीरता और विचारों की उदात्तता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

सन्दर्भ -

1. *उत्तररामचरितम् 1.36*
2. *तदेव, 1.39*
3. *तदेव, 2.1*
4. *तदेव, 1.41*
5. *तदेव, 2.11*
6. *तदेव, 4.11*
7. *तदेव, 1.14*
8. *मालतीमाधवम्, 3.11*
9. *महावीरचरितम्, 3.18*
10. *तदेव, 2.5*
11. *तदेव, 5.59*

सन्दर्भग्रन्थ -

1. *महावीरचरितम्, भवभूतिः, श्रीरामचन्द्र मिश्रः, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रणम्, 2005 ई.।*
2. *मालतीमाधवम्, भवभूतिः, डॉ. गंगासागर रायः, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, प्र.सं., 2002 ई.।*
3. *उत्तररामचरितम्, भवभूतिः, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद, 2007ई.।*

36

भवभूति के रूपकों में शकुन-अपशकुन विचार

जहाँआरा

प्राचीनकाल के लोग शास्त्रों में लिखे आदेशों का प्रायः उल्लंघन नहीं किया करते थे। धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर भिन्न-भिन्न विधि-विधानों का करना आवश्यक समझा, क्योंकि उनके पालन न करने से अनेक विपत्तियों के आने की सम्भावना थी। अतः शुभ तथा अशुभ फलों को देने वाले इन्हीं शकुनों का पहले जन्म हुआ। इन शकुनों पर अटूट आस्था ने लोक-विश्वास का रूप धारण कर लिया। शकुनों को सफलता का संकेत और अपशकुन को असफलता का संकेत माना जाता था। संस्कृत में शकुन पक्षी विशेष को कहते हैं।[1] शब्दकल्पद्रुम नामक कोश में शकुन के अर्थ के विषय में लिखा गया है कि जिससे किसी वस्तु के शुभ-अशुभ होने का ज्ञान होता है, उसे शकुन कहते हैं। शक्नोति शुभाशुभम् अनेनेति शकुनम्।[2] पाश्चात्य विद्वान् नोल्सन ने शकुन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ऐसी आकस्मिक घटना को जिसे भविष्य का द्योतक समझा जाता है शकुन कहते हैं। भविष्य के संबंध में अनायास प्राप्त संदेश का नाम शकुन है।[3] अमेरिकी लेखिका श्रीमती मेरिया लीच ने अपनी सुप्रसिद्ध 'फोकलर डिक्शनरी' में शकुन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ऐसी घटना जो भविष्य की सूचिका है उसको शकुन कहते हैं।[4] यही शकुन आजकल लोक विश्वास तथा अन्धपरम्पराओं के नाम से जाना जाता है। संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनका समय सातवीं सदी का अन्त तथा आठवीं सदी का प्रारम्भ है। इनकी कृतियाँ हैं- महावीरचरित नाटक, उत्तररामचरित नाटक और मालतीमाधव प्रकरण। इनके रूपकों में भी भावी शुभ-अशुभ के सूचक रूप में कतिपय शकुन-अपशकुनों का वर्णन मिलता है। किन्तु इनके सत्यापन का कोई तार्किक पक्ष न होने के कारण ये तत्कालीन समय के अन्धविश्वासों की ही अभिव्यक्ति करते प्रतीत होते हैं। वर्तमान में भी कुछ ऐसी ही स्थिती है। इन शकुन और अपशकुनों के प्रति सामान्यजनों की कितनी गहरी आस्था थी, वह भवभूति के रूपकों में उपलब्ध उल्लेखों के माध्यम से परिलक्षित होती है। देखा जाए तो भारतीय प्राचीन साहित्य वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में जिन शकुनों की उपलब्धि होती है उन्हें निम्नांकितवर्गो में विभक्त किया जा सकता है- 1. ग्रह-उपग्रहों तथा नक्षत्रों से प्राप्त शकुन। 2. प्राकृतिक पदार्थों या तत्त्वों (Element of nature) से प्राप्त शकुन। 3. पशु-पक्षियों से प्राप्त शकुन। 4. शरीर के विभिन्न अवयवों के शकुन। 5. स्वप्नों से प्राप्त शकुन।

भवभूति के रूपकों में भी उल्लिखित यत्र-तत्र शुभ-अशुभ निमित्तों का विवरण मिल जाता है जो इस प्रकार है- **शरीर के विभिन्न अवयवों के शकुन-** नागानन्द नाटक में तापस शुभ संकेतों के माध्यम से राजा के चक्रवर्ती पद की प्राप्ति का अनुमान लगाता है-

उष्णीषः स्फुट एव मूर्द्धनि विभात्यूर्णेयमन्तभ्रुवोश्चक्षुस्तामरसानुकारि हरिगा वक्षः स्थलं स्पर्द्धते।
चक्राङ्कञ्च तथा पदद्वयमिदं मन्ये तथा कोऽप्ययं, नो विद्याधरचक्रवर्त्तिपदवीमप्राप्य विश्राम्यति।।[5]

माथे पर पगड़ी का चिन्ह दिखाई दे रहा है। भौंहों के बीच भौंरी है। रक्तकमल की तरह आँखे लाल हैं। छाती सिंह से होड़ करती है। दोनों पैरों में चक्र के चिन्ह हैं- इनसे मैं समझता हूँ कि यह महापुरुष विद्याधरों के चक्रवर्ती पद के बिना पाये रहेगा नहीं। अङ्गस्फुरण-रूपकों में पुरुषों के दक्षिणाक्षिस्पन्दन तथा स्त्रियों के वामाक्षिस्पन्दन को शुभ सूचक माना गया है। भवभूति के रूपकों में भी यत्र-तत्र अंग-स्पन्दन का वर्णन हुआ है। यथा-नागानन्द नाटक में जीमूतकेतु की बाँयी आँख फड़कने पर वह इसे अशुभ सूचक मानता है। वह अशङ्का से विवश होकर कहता है। मम पुत्रकः कुशली।[6] मेरा पुत्र कुशल तो है। इसी नाटक के प्रथम अंक में जीमूतवाहन की दाई आँख फड़कती है, वह कहता है कि मुझे तो कहीं किसी फल की चाह नहीं दिख रही, मुनियों का वचन झूठा नहीं जाता देखें क्या होता है? विदूषक जीमूतवाहन से कहता है, यह निकट भविष्य में अवश्य होने वाली प्रिय बात[7] की सूचना दे रही हैं। मालतीमाधव में मालती की दाहिनी आँख फड़कती है। फलस्वरूप बलि के लिए कपालकुण्डला उसका अपहरण करती है।[8] कपालकुण्डला के द्वारा मालती के अपहरण के पश्चात् माधव का वामनेत्र फड़कता है।[9] ऐसे ही इस प्रकरण ग्रन्थ के प्रारम्भ में कामन्दकी मालती और माधव का पाणिग्रहण रूप मंगल कार्य सम्पन्न होने की सम्भावना है। हर्ष के साथ अपनी बाँई आँख के फड़कने का अभिनय करती है।[10]

स्वप्नों से प्राप्त शकुन-

स्वप्न मानव के जागरण अवस्था का ऐसा विचारगत रूपान्तर है जो सुप्तावस्था में अनुभव के रूप में प्रतीत होने लगता है। मनुष्य जिस कार्य को दिनभर करता है या जिसके कारण अत्यधिक प्रसन्न या दुःखी होता है, उसी से सम्बन्धित घटनाएँ उसको सुप्तावस्था में कभी-कभी अनुभव होती हैं। ऐसी इनकी मान्यता होती है कि स्वप्न कभी शुभ सूचक तथा कभी अशुभ सूचक होते हैं। आलोच्य रूपकों के अवलोकन से हमें ज्ञात होता है कि उस समय भी स्वप्नों के शुभाशुभ फलों में लोगों का प्रगाढ़ विश्वास था। उनसे इन्हें कभी-कभी इन्हीं के कारण भावी घटनाओं के बारे में आशा एवं आशंका होती थी- नागानन्द नाटक में मलयवती चेटी से कहती है- स्वप्न में मेरे वीणा बजाने से, भगवती ने मेरी इस असाधारण भक्ति से सन्तुष्ट होकर मुझे विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा से पाणिग्रहण का आशीर्वाद दिया है।[11] मालतीमाधव में कपालकुण्डला जब बलि के लिए मालती का अपहरण कर वध्य चिन्हों से युक्त उसे बलि के स्थल पर ले जाती है, मालती रोती हुई उससे कहती है- स्वप्नावसरमात्रदर्शनाहं ते संवृत्ता।[12] मेरे स्वजन अब मुझे स्वप्न में ही देख पायेंगे। उत्तररामचरित नाटक के प्रथम अङ्क में सीता भी बुरे स्वप्न की बात करते हुए कहती है कि- हा धिक्, हा धिक्, दुःस्वप्ने विप्रलब्धा हमार्यपुत्रमाकन्दामि।[13] बुरे स्वप्न से ठगी हुई मैं आर्यपुत्र को पुकार रही हूँ।

ग्रह-उपग्रह नक्षत्रों से प्राप्त शकुन-

मालतीमाधव में कामन्दकी धूमकेतु को सदोष दर्शन वाला मानती हुई मालती के लिए सम्बद्ध हो ऐसा विचार करती है।[14] इस प्रकरण के तृतीय अंक में अवलोकिता बुद्धरक्षिता से कहती है कि आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है, इस कारण माता के साथ मालती शिवमन्दिर जाएगी। वहां ऐसा करने से सौभागयवर्द्धन (मंगल सूचक) होता है।[15]

प्राकृतिक पदार्थों या तत्त्वों से प्राप्त शकुन-

नागानन्द नाटक के प्रथम अंक में वृक्ष पर भौरों की गूजांर, फलभार से झूके शाखारूपी शिरों से वृक्षों का प्रणाम करना, और फूलों की वर्षा करते हुये पूजा का उपहार सौंपना जीमूतवाहन इसे अपने लिये शुभ संकेत

मानता है।[16] इसके अतिरिक्त मालतीमाधव प्रकरण में हम देखते हैं कि सन्ध्याकाल का सूचक उच्च स्वर में सुनायी पड़ने वाले शङ्ख को शुभ संकेत माना गया है।[17] इस प्रकार देखें तो भवभूति के रूपकों में शकुन-अपशकुन के कतिपय उदाहरण ही मिलते हैं किन्तु इन उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि भवभूति के समय में लोग विशिष्ट लक्षणों या परिवर्तनों द्वारा भावी शुभ या अशुभ का आभास देखकर पहले ही लोग सावधान हो जाते थे। ऐसा नहीं है कि वर्तमान समय में शकुन-अपशकुन की धारणा लोगों के मन में व्याप्त नहीं है आज भी यह लुप्त अवस्था में कहीं न कहीं यत्र-तत्र दिखाई पड़ ही जाती है।

सन्दर्भ सूची -

1. *संस्कृत हिन्दी कोश, शिवराम आप्टे, पृ.-996*
2. *शब्दकल्पद्रुम, पंचम काण्ड-पृ-2*
3. *An omen is an event which is supposed to indicate destiny, the chief feature being the gratuitions nature of the happening, it is a message about the future which we do not seek for. T. sharper knowlson, the origin of popular superstitions and custom, p. 162*
4. *A phenomenon or incident regarded as a prophetic sign, डिक्शनरी आफ फोक्लर, माइथोलॉजी एण्ड लीजेण्ड्स, भाग-2, पृ.821*
5. *नागानन्द 1/18*
6. *वही-5/पृ.209*
7. *वही-1/पृ. 21*
8. *मालतीमाधव-8/पृ.307*
9. *वही, 8/12*
10. *वही, 1/पृ.16*
11. *नागानन्द, 1/पृ.38*
12. *मालतीमाधव, 2/पृ.93*
13. *उत्तररामचरित, 1/पृ.79*
14. *मालतीमाधव, 2/पृ.93*
15. *वही, 3/पृ.104*
16. *नागानन्द,1/12*
17. *मालतीमाधव, 32/पृ.99*

लेखक परिचय

प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	-	अध्यक्ष, संस्कृत एवं हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.
प्रो. अच्युतानन्द दाश	-	पूर्व आचार्य - संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.
डॉ. रेनू कोछड़ शर्मा	-	सहायक आचार्या- (वैदिक अध्ययन) संस्कृत पालि प्राकृत एवं प्राच्यभाषा विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), प्रयागराज (उ.प्र.)
प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी	-	21, लैण्डमार्क सिटी, नियर बीएचईएल, संगम सोसायटी, भोपाल, 462047
डॉ. चन्द्रकिशोर शास्त्री	-	सहायक आचार्य- संस्कृत विभाग, ब्रह्मावर्त पी.जी. कॉलेज, मन्धना, कानपुर (उ.प्र.)
डॉ. अमित सिंह	-	सहायक-आचार्य, हिन्दी-विभाग, जामिया मिल्लिया, इस्लामिया, नई दिल्ली
डॉ. मुकेश कुमार	-	सहायक प्राध्यापक- सतीशचन्द्र धवन राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना
अंकिता यादव	-	शोध छात्रा- संस्कृत विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय मुफ्तीगंज सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
डॉ. सञ्जय कुमार	-	सहायक-आचार्य, संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र
अंकित सिंह यादव	-	शोधार्थी- संस्कृत विभाग जामिया मिल्लिया, इस्लामिया, नई दिल्ली
डॉ. चन्दनलाल गुप्ता	-	असिस्टेंट प्रोफेसर- संस्कृत पोस्ट ग्रेजुएट गवर्नमेंट कॉलेज फॉर गर्ल्स, सेक्टर- 11, चण्डीगढ़
प्रो. रामजी उपाध्याय	-	पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
डॉ. सुकदेव वाजपेयी	-	अध्यक्ष-संस्कृत विभाग, स्वामी विवेकानन्द विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

डॉ. रश्मि यादव	-	सहायक आचार्या- संस्कृत पालि प्राकृत भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. कृष्णा जैन	-	विभागाध्यक्ष संस्कृत के. आर. जी. कॉलेज, ग्वालियर (म.प्र.)
डॉ. आशीष कुमार	-	सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग नंदलाल सिंह महाविद्यालय जैतपुर, दाउदपुर (जयप्रकाश विश्वविद्यालय की अंगीकृत इकाई) सारण बिहार
डॉ. अरविन्द कुमार	-	असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
डॉ. शशिकुमार सिंह	-	सहायक आचार्य, संस्कृत-विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.
डॉ. अमरेश यादव	-	पूर्व शोधच्छात्र - साहित्य विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय गंगानाथ झा परिसर, प्रयागराज उ.प्र.
डॉ. नन्दिता आर्या	-	असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थलीपीठ
डॉ. योगेश शर्मा	-	एसोसिएट प्रोफेसर, कलाकोश संभाग इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली
अनुश्रुति दुबे	-	अनुसन्धात्री, संस्कृत विभाग जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान
डॉ. राघवेन्द्र शर्मा	-	अध्यक्ष साहित्य विभाग शास. दू. श्री. वै. स्नातकोत्तर संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ)
डॉ. किरण आर्या	-	सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र.
डॉ. आशा सिंह रावत	-	असिस्टेंट प्रोफसेर -संस्कृत शा. के.आर. जी.पी.जी. स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
डॉ. पवन कुमार पाण्डेय	-	सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष-संस्कृत विभाग, नागरिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंघई जौनपुर उ.प्र.
डॉ. आशुतोष द्विवेदी	-	सहायक आचार्य स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)
डॉ. शैलेन्द्र कुमार साहू	-	असिस्टेंट प्रोफेसर-साहित्य विभाग स.वि.ध.वि. संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

डॉ. संदीप कुमार यादव	-	सहायक आचार्य - संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
डॉ. नीरज कुमार	-	संस्कृत अध्यापक श्री महावीर इण्टर कॉलेज सामी, जालौन (उ.प्र.)
डॉ. आनन्द कुमार	-	असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत राजकीय महिला महाविद्यालय राबर्ट्सगंज सोनभद्र, उ.प्र.
डॉ. बाबूलाल मीना	-	प्रोफेसर स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान
डॉ. दिनेश शर्मा भारद्वाज	-	सहाकाचार्य, साहित्य विभाग राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, क्यार्टू जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश
डॉ. रामहेत गौतम	-	सहायक आचार्य, संस्कृत-विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.
पूनम यादव	-	प्रोजेक्ट एसोसिएट, कलाकोश विभाग इन्द्रिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली
डॉ. नौनिहाल गौतम	-	सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)
डॉ. जहाँआरा	-	अतिथि प्राध्यापिका जामिया मिल्लिया, इस्लामिया, नई दिल्ली

ISSN : 2229-5550
UGC Care List Journal, S.N.17

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढ घनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।
(उत्तररामचतिरम् 3-1)

राम का करुण रस (अर्थात् सीता वियोग जन्य शोक) पुटपाक के समान व्यक्त तो नहीं है किन्तु अन्तर्निहित गंभीर वेदना से युक्त है।

प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर (म. प्र.) पिनकोड - 470003